शेठ नारायणदास और शेठ जेठानंद आसनमल
पुष्टिमार्गीय ग्रंथमाला-रत्न-१९

श्रीमदवल्लभाचार्य विरचित

षोडशग्रन्थ

गोस्वामी श्रीनृसिंहलालजी महाराज कृत
व्रजभाषा टीका सहित

प्रकाशक :—
नगरठठ्ठा निवासी सद्गत शेठ नारायणदास
और शेठ जेठानंद आसनमल ट्रस्टफंडस्के ट्रस्टीओ

ठि. २३६ कालबादेवी रोड, मुंबई २

शके : १८८२ संवत : २०१७
वसंत पंचमी

प्रथम आवृत्ति] [प्रत : १०००

न्योच्छावर रु. २=२५ न. पै.

श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीयमुनाष्टककी संक्षेपसूं भावार्थटीका लिखी हे ॥

श्लोकः—नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा मुरारिपदपंकजस्फुरदमंदरेणूत्कटाम् । तटस्थ-नवकाननप्रकटमोदपुष्पांबुना सुरासुरसुपूजित-स्मरपितुः श्रियं विभ्रतीम् ॥१॥

टीका—श्रीयमुनाजीकूं में नमन करूं हूं. श्रीयमुनाजी केसें हें सो निरूपणकरतहें. सब सिद्धीनके कारणहें तामें भगवद्भा-वकी वृद्धि करेहें, भगवानको संबंध होयवेमें जो जो प्रतिबंध होय तिन सबनकूं मिटायकें भगवानको अनुभव करिवेमें जितनी शुद्धिकि आवश्यकताहे तितनी शुद्धि करे हें, विनाहिश्रम भगवानको संबंधकरावेहें, भगवानको प्रियपनो सिद्ध करेहें, कलिकी निवृत्ति करे एसी भगवदीयनकी बड़ाई धारणकरेहें, नवीन (प्रभुसेवोपयोगी) देह संपादनकरेहें इत्यादिक अष्टविध ऐश्वर्यकी सिद्धि हे ओर प्रभुकी लीलाको दर्शन करावेहें, प्रभुकी लीलाके आनंदको अनुभव करावेहें, सर्वात्मभावकी सिद्धि करेहें, भगवानके वियोगमेंहू भगवानके आवेशवारो देह सिद्धकरेहें, जिनकी लौकिक सब विषयनमें दृष्टि न होय

ओर भीतर दृष्टि होय तिनकूं प्रभुकी लीलाके दर्शनकी सिद्धि करावे हैं, प्रभुको विरह होय तब जेसो सर्वात्मभाव चहियें तेसो सर्वात्मभाव सिद्ध करे हैं, इत्यादिक अनेक सिद्धि हैं इन सब सिद्धिनके कारण श्रीयमुनाजी हैं, मुरारि जो श्रीकृष्ण तिनके चरणारविंदकी रज, जलक्षेपसूं अधिक जामें स्फुरायमान हैं, प्रभुके बहोत नाम हैं तिनमें मुरारि नाम लिखिवेको अभिप्राय एसो हे जो जेसें भौमासुरने सोरह हजार राजकन्यानकूं रोकी हती तिनकूं भगवानकी प्राप्ति होयवेमें प्रतिबंधरूप जलके दोषात्मक मुरदैत्य हतो ताकूं मारिकें भगवाननें सबनकूं अंगीकार किनी तेसेंहि प्रभुकी प्राप्तिमें प्रतिबंधरूप जो दोष होय ताकूं मिटायकें प्रभु आप भक्तनकों अंगीकार करे हैं, एसे प्रभुके चरणारविंदकी रज श्रीयमुनाजीमें स्फुरायमान हैं ये जतायवेके लिये मुरारिनाम कह्यो हे, तटमें जो नये वन हैं तिनको सुगंध जिनके पुष्पनमें प्रकट हो रह्यो हे ताकूं सुगंधयुक्तजलकरिकें सुरभाव ओर असुरभाववारे भक्तनकूं प्रभुको स्मरण[1] होय एसी शोभाकूं धारणकरे हैं, तामें दैन्यभाववारे भक्त हैं सो सुरभाववारें ओर मानभाववारे भक्त हैं सो आसुरभाववारे हैं एसे दोउप्रकारके भक्त, भगवानकी प्राप्तिके लिये श्रीयमुनाजीको पूजन करत हैं ॥ १ ॥

अब श्रीयमुनाजीके आविर्भावको प्रकार कहत हैं.

---

१ छांदोग्य उपनिषदमें स्मरको अर्थ स्मरण लिख्यो हे तेसें यहांहू समजनो.

श्लोकः—कलिंदगिरिमस्तके पतदमंदपूरोज्वला
विलासगमनोल्लसत्प्रकटगंडशैलोन्नता । सघो-
षगतिदंतुरा समधिरूढदोलोत्तमा मुकुंदरति-
वर्द्धिनी जयति पद्मबंधोः सुता ॥ २ ॥

टीका-सूर्यमंडलमें जो नारायण हैं तिनके आनंदात्मक हृदयसूं द्रवीभूत रसात्मक प्रकट होयकें सूर्यमंडलतें कलिंदपर्वतकी उपर गिरे हैं तहां कालिंदीकूं अपनेमें मिलावे हैं ओर अत्यंत उंचेतें गिरवेसूं फेन बहोत होय हैं तासूं पूर बहोत आवे हे ताकरिकें उज्वल हे, उंचे नीचे पर्वतनपें चडनों उतरनों हैं सो विलासगतिरूप हे तामें सुशोभित ओर प्रवाहको वेग पाषाणकूं उंचे फेंके हे तासूं वे पाषाण प्रकट दीखे हे ताकरिकें श्रीयमुना-जीको प्रवाह उंचो दीखवेहें आवे हे, शब्दसहित प्रवाहकी गतिसूं विकासयुक्त दीखे हैं अथवा सब व्रजवासी जहां जाय हैं वहां व्रजकूं संग लेकें जाय हैं ऐसे व्रजसहितव्रजवासीनकी गतिकरिकें विकासयुक्त हैं, हिंडोलामें नहिं विराजे हैं तथापि उंचे नीचे स्थलपें जो प्रवाह चले हे ताकरिकें उत्तम हिंडोलामें विराजते होय एसें जानपरतहैं, यहां उत्तमदोला कहेवेको अभिप्राय यह हे जो दोलाको स्वभाव आयवे जायवेको हैं ओर श्रीयमुनाजीको प्रवाह भगवानके दर्शनको आतुरता होय तेसें सन्मुखही जायहैं तासूं उत्तम दोलामें अधिरूढ हैं ऐसें

कह्यो है, मुकुंद जो मोक्षदेवेवारे श्रीकृष्ण तिनकी प्रीति भक्तनमें बढावे हैं ओर कमलके बंधुरूपसूर्यकी पुत्री हे एसे श्रीयमुनाजी सबनतें बडाईसूं बिराजित हैं ॥ २ ॥

श्रीयमुनाजी भूमिमें पधारें तापिछेके धर्मको निरूपण कहत हैं.

श्लोक :—भुवं भुवनपावनीमधिगतामनेकस्वनैः प्रिया-
मिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः। तरंग-
भुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुकानितंबतटसुंदरीं
नमन कृष्णतूर्यप्रियाम् ॥३॥

टीका—श्रीयमुनाजी पृथ्वीपर पधारे हैं सो भक्तनकूं भगवद्भाव संपादन करिकें अन्यभावसूं रहित करे हैं ओर भगवत्सेवामें योग्य शरीरकी शुद्धि करे हैं एसें लोककूं पवित्र करे हैं. श्रीगोपीजन सब जेसें श्रीयमुनाजीको सेवन करें हैं तेसें अनेक शब्दवारे शुक, मयूर ओर हंसप्रभृति सब पक्षीन करिकेंहू श्रीयमुनाजी सेवित हैं. तरंग, तीरपें आवे हैं तब पसरी जाय हैं ताविरियां वालुका प्रकाशित होय हैं सो वालुका नहीं हे किंतु तरंगहें सो श्रीयमुनाजीके श्रीहस्त हे तिनमें जो कंकण धारण कियें हैं तिन कंकणनमें मुक्ताफल लगें हैं सो प्रकाशित दीखे हैं ओर उंचे तट हैं सो नितंबरूप हैं तिनमें तरंगके बलसूं वालुका लगें हैं सो श्रीहस्त नितंबमें लगाये होय एसें शोभे हैं

तिनमें वालुका प्रकाशे हैं सो कंकणनके मुक्ताफल हैं. भक्तनके चार यूथ मुख्य हैं तिनमें चतुर्थयूथमें मुख्य श्रीयमुनाजी हैं एसेकूं नमन सिवाय ओर जोव कहा करि सके? तासूं श्रीआचार्यजी सब सेवकनकूं आज्ञा करें हैं जो एसे श्रीयमुनाजीकूं तुम सब नमन करो ॥ ३ ॥

श्रीयमुनाजीमें भगवानके समान धर्म हैं एसें जतायवेके लिये दोउको समान धर्मपनो निरूपण करत हैं.

श्लोकः—अनंतगुणभूषिते शिवविरंचिदेवस्तुते घनाघननिभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे। विशुद्धमथुरातटे सकलगोपगोपीवृते कृपाजलधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय ॥४॥

टीका—यामें षट्धर्मयुक्त सप्तम धर्मको निरूपण हे एसें जतायवेके लिये सात विशेषण हैं तामें भगवानमें विशेषण लगावनें तब सप्तमी त्रिभक्तिको अर्थ करनो ओर श्रीयमुनाजीमें लगावनें तब सब विशेषणनमें संबोधनको अर्थ करनो. श्रीठाकुरजी असंख्यगुणनकरिकें अलंकृत हैं ओर श्रीयमुनाजी रासोत्सवादिकनमें अनंतरूप धरिवेवारे भगवानके गुणनकरिकें अलंकृत हैं. शिव ओर ब्रह्माप्रभृति सब देव भगवानकी तथा यमुनाजीकी स्तुति करें हैं. मंदमंदवर्षायुक्त श्यामघनजेसी शोभायुक्त दोऊ हैं ध्रुव ओर पराशरकूं सदा सबप्रकारको इच्छित

---

१ यह ऐश्वर्यको निरूपण हे. २ यह वीर्यको निरूपण हे. ३ यह यशका निरूपण हे.

देवेवारे भगवान् तथा श्रीयमुनाजी हैं, श्रीठाकोरजीके निकटमें अत्यंत शुद्ध श्रीमथुराजी हे ओर श्रीयमुनाजीके तटपें श्रीमथुराजी हे, श्रीठाकुरजी, समग्र गोप ओर श्रीगोपीजनन-करिकें आवृत हे ओर श्रीयमुनाजीके तीरपें पहेलें गोपगोपीनकों श्रीठाकुरजीके संबंधको अनुभव भयो हे तासूं समग्र गोप ओर श्रीगोपीजननकरिकें श्रीयमुनाजीहू आवृत हें श्रीठाकुरजी कृपारूप समुद्रके आश्रयको सुंदर स्थान हें इतने कृपारूप समुद्र श्रीठाकुरजीको आश्रय करिकें रहे हे ओर श्रीयमुनाजी कृपाके समुद्ररूप श्रीठाकुरजीको आश्रय करिकें रहे हें एसे षट्धर्मयुक्त हे श्रीयमुनाजी ! आप, अपार करुणासागर श्रीठाकोरजीमें मिले हो सो आपमें जो मिले सो आपके बअसूंही श्रीठाकुरजीमें मिलें हें, तासूं एसे षट्धर्मयुक्त ओर कृपाको समुद्र जामें रहे हें एसे श्रीठाकुरजीमें मेरो मन भाव-करिकें आनंदको अनुभव केसें करे ? सो आप विचारो अथवा भगवत्स्वरूपके अनुभवको मेरे मनमें जो सुख होय ताकी भावना अपके मनमें करो इतने आपके मनमें ये विचार होयगो तब ये सुख मिलेगो, ॥४॥

अब भगवदीयनकीहू बडाई करिवेवारें श्रीयमु-नाजीहें तिनकी बडाई कहिवेकूं कोन समर्थ

---

१ यह श्रीको निरूपण हे. २ यह ज्ञानको निरूपण हे. ३ यह वैराग्यको निरूपण हे. ४ यह धर्मीको निरूपण हे.

हे ? सो निरूपण करत हैं,

श्लोकः—यया चरणपङ्कजा मुररिपोः प्रियंभावुका
समागमनतोऽभवत्सकलसिद्धिदा सेवताम् ।
तया सदृशतामियात्कमलजा सपत्नीव यद्ध-
रिप्रियकलिंदया मनसि मे सदा स्थीयताम्॥५॥

टीका—गंगाजी भगवानके चरणकमलतें प्रकट भई हे तासूं भक्तिमार्गीय और निर्दोषगुणपूर्ण हे सोहू जो श्रीयमुनाजी संग (प्रयागमें) मिले हे तामेंसूं मुररिपु जो भक्तनके प्रतिबंध दूर करिवेवारे हरि भगवान् हैं तिनकों अत्यंत प्रिय भई हे ओर सेवनकरिवेवारेनकूं समग्र सिद्धि देवेवारी भई हे, एसे श्रीयमुनाजीकी बराबरीकूं कोऊ प्राप्त होय हे कहा ? कदाचित् प्राप्त होय तो श्रीलक्ष्मीजी होय, क्यों जो श्रीलक्ष्मीजीहू भगवानकी स्त्री हैं तासूं श्रीयमुनाजीकी सपत्नी (सोति) होय हैं यहां श्रीलक्ष्मीजी श्रीयमुनाजीकी सपत्नी (सोति) हैं एसें कह्यों हैं ताको अभिप्राय एसो हे जो जाकी जो सपत्नी (सोति) होय सो ताके स्वभावसूं विरुद्ध स्वभाववारी होय हे तेसें श्रीलक्ष्मीजी श्रीयमुनाजीके स्वभावतें विरुद्ध स्वभाववारी हे एसो सूचन कियो हे, तासूं कहे हैं जो भक्तनके दुःख तथा पापकूं हरिवेवारे भगवानके भक्तनके कलिनके दोषनकूं खंडन करिवेवारे श्रीयमुनाजो हैं तिनकी मेरे मनमें स्थिति होय

इतने श्रीलक्ष्मीजी भक्तनकों अनुकूल नहीं हैं ओर श्रीयमुनाजी भक्तनकों अनुकूल हैं ॥५॥

ऐसें भक्तनकों अनुकूल श्रीयमुनाजी, भगवानकूं अत्यंत प्रिय हैं तिनकों नमन सिवाय ओर कछु होयसके नहीं ऐसे अभिप्रायसूं कहत हैं.

श्लोकः—नमोऽस्तु यमुने ! सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं न जातु यमयातना भवति ते पयःपानतः। यमोऽपि भगिनीसुतान्कथमु हंति दुष्टानपि प्रियो भवति सेवनात्तव हरेर्यथा गोपिकाः ॥६॥

टीका—भगवानको माहात्म्य तो सबशास्त्रनमें अति प्रसिद्ध हे तासूं भगवानकूं नमन होयसकें हे ओर श्रीयमुनाजीको माहात्म्य तो लीलासृष्टिमें प्रवेश भये पिछें तेसो भाव प्राप्त होय तब जान्यो जाय ता पिछें नमन होय, तासूं नमन होयवेकी प्रार्थना करत हैं जो हे श्रीयमुनाजी ! आपकूं सदा नमन होऊं, आपके पयःपानसूं कोऊ बिरियां यमयातना होय नहिं यह आपको चरित्र अति अद्भुत हे. जेसें भगवान् अद्भुत कर्मवारे हैं सो काम, भय, द्वेष प्रभृति जो भगवानकूं मिलवेके साधन नहिं हैं, किंतु उत्तम गतिके प्रतिबंधक हैं, तथापि श्रीगोपीजन कामतें, कंस भयतें ओर शिशुपालादिक द्वेषतें

भगवानकूं प्राप्त भये हैं तहां कामादिक असाधन हैं तिनकूं भगवाननें साधनरूप किये हैं तेसें तृषाकी निवृत्तिके लिये श्रीयमुनाजीको पयःपान करे सो कछू उत्तमगति मिलवेको अथवा यमयातना मिटवेको साधन भयो नहिं तथापि यमयातना मिटे हे ये श्रीयमुनाजीको अद्भुत चरित्र हे श्रीयमुनाजीके 'पयःपानतें' यमयातना मिटे हे तामें युक्ति कहत हैं जो यमहू बहिनिके पुत्र कदाचित् दुष्ट होय तोहू तिनकूं दंड केसें देय ? क्यों जो बहिनिको पुत्र तो सर्वदा मान्य हे. ओर यम उत्पन्न भये पिछें वाके दोषकी निवृत्तिके लिये श्रीयमुनाजी प्रकट भयें हैं तासूं यमकूं अतिमान्य हैं. ओर पयःशब्दको अर्थ दूध तथा जल दोउ प्रकारको होय हे, तासूं श्रीयमुनाजीको पयःपान करिवेवारे तिनके पुत्रभये ओर यमके भानेज भये तिनकूं यम दंड केसें देय ? एसें दोषनिवारक अद्भुत चरित्रको निरूपण करिकें फलसंपादक अद्भुत चरित्रको निरूपण करें हैं जो जेसें श्रीगोपीजन हरिकूं प्रिय भये हैं तेसें तुम्हारे सेवनतें जीव हरिकूं प्रिय होय हैं; लोकमेंहू अन्यके सेवनसूं अन्य प्रसन्न होय एसो देख्यो नहिं हे ओर यहां तो श्रीयमुनाजीके सेवनसूं प्रभु प्रसन्न होय हैं, जेसें कात्यायनीव्रतके प्रसंगमें कुमारिकानकूं श्रीयमुनाजीके सेवनतें प्रभु प्रसन्न भयें हैं यह श्रीयमुनाजीको अद्भुत चरित्र हे ॥ ६ ॥

देहको अवश्य धर्म यह हे जो जेसो कर्म करे तेसो दूसरो देह

प्राप्त होय एसो आवश्यक दैहिकधर्ममेंहू जहां तुह्मारो
संबंध भयो इतने पिछें मुक्तितें अधिक भक्तिकी
प्राप्ति होय हे तहां यमयातनाको अभाव
होय तामें कहा शंका हे यह निरूपण
कहत हैं.

श्लोकः—ममास्तु तव सन्निधौ तनुनवत्वमेतावता
न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुंदप्रिये ।
अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनी परं संग-
मातवैव भुवि कीर्त्तिता न तु कदापि
पुष्टिस्थितैः ॥ ७ ॥

टीका—मोकूं तुम्हारे सन्निधानमें लीलोपयोगी नवीन देहसंपत्ति होय. लौकिक देह मिटिकें अलौकिक देह भयेसूंहि मुररिपु (भगवान्)में प्रीति अत्यंत दुर्लभ नहीं हे कदाचित् प्रतिबंधक होयँगे तोहू तुम्हारे संबंधतें भगवान आपतेंही दूर करि घरमेंहि मोक्षसुख प्राप्त होय तेसें चतुर्विध पुरुषार्थके सुखको अनुभव होयगो यह जतायवेके लिये मुररिपुपद कह्यो हे तथा मुकुंदप्रिये! एसो संबोधन दियो हे ओर तुम्हारे सन्निधानमें अलौकिक देहकी प्राप्ति होयवेको कह्यो हे तासू जहां दुष्टनके सन्निधानतें श्रीयमुनाजीको तिरोभाव हे तहां अलौकिक देहकी प्राप्ति नहिं होय एसो सूचन कियो हे तुह्मारे

सन्निधानमेंहि जहां अलौकिकदेहकी प्राप्ति होय तहां यम-यातनाको अभाव होयवेमें शंका कहाहे ? एसें जतायो हे; तासूं जबताँई आधुनिक शरीरकी निवृत्ति होय तबताँई, जेसें माता बालककूं लाड करतीविरियां बालककी प्रशंसा (स्तुति) करे हे सो गुणवर्णन नहिं हे तेसें तुह्मारी यह स्तुतिहू लालन-रूप होय. जिनकी बहोत बडाई हे एसी गंगाजीको कीर्त्तन, जो निःसाधनअनुग्रहमार्गवारे पृथ्वीपर करेंहें सो तुह्मारेहि संगमतें करेंहें क्योंजो गीताजीमे विभूतिके अध्यायमें गंगाजी भगवानकी विभूति हे एसें लिख्यो हें ताको ज्ञान न होय अथवा जो विभूतिके उपासक होय सो तो कदाचित विभूति-रूप गंगाजीकी स्तुति करे परंतु पुष्टिमार्गीयभक्ततो पूर्ण-पुरुषोत्तमके उपासक हें सो विभूतिरूप केवल गंगाजीकी स्तुति करेहि नहिं. तुम्हारे (श्रीयमुनाजीके) संगततेंही गंगाजीकी स्तुति करें हें. ॥७॥

सबनकूं वंदनकरिवेयोग्य गंगाजीकी स्तुति हू तुह्मारे संबंधतें होयहे तहां तुह्मारी स्तुति करिवेकूं कोन समर्थ हे ? एसे अभिप्रायसूं कहत हें,

श्लोकः—स्तुति तव करोति कः कमलजासपत्नि !
प्रिये ! हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः ।
इयं तव कथाऽधिका सकलगोपिकासंगम-
स्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः संगमः ॥८॥

टीका–लक्ष्मीजीके सपत्नि (सौति) हरिकों प्रिय हे श्रीयमुनाजी ! आपकी स्तुति कोन करसके ? कोऊ कर सके नहिं. क्यों जो आप लक्ष्मीजीके समानसौभाग्यवारें हो तथापि हरिकों विशेष प्रिय हो और मुख्यतासूं हरिको सेवन करिकें ताकी अनुकूलतासूं जब गौणभावसूं लक्ष्मीजीको सेवन करे तब मोक्षपर्यंत सुख मिलेहे केवल (विभूतिरूप) लक्ष्मीजी तो धनादिसंपत्तिद्वारा विषयासक्ति करायकें मोक्षको विघात करे हे. और तुम्हारी तो यह कथा अधिक हे जो आप मोक्ष सुखको अनुभव करावो हो और समग्र श्रीगोपीजननके संगमकरिकें स्मरसंबंधी श्रम होय हे ताकरिकें जो स्वेदजलके बिंदु सकल शरीरमेंतें उत्पन्न होय हे तिनको संगत जिनको हे ताको संबंध भक्तनकूं कराओ हो. एसें तुम्हारी (श्रीयमुनाजीकी) कथा अधिक हे; तासूं लक्ष्मीजीकीस्तुति होय परंतु आपको स्तुति कोन कर सके ? ॥ ८ ॥

एसें श्रीयमुनाजीकी स्तुति करिकें यास्तोत्रको पाठ करिवेको फल कहतहें.

श्लोकः–तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते! सदा
समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुंदे रतिः ।
तया सकलसिद्धयो मुररिपुश्च संतुष्यति
स्वभावविजयो भवेद्वदति वल्लभः श्रीहरेः॥९॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं श्रीयमुनाष्टकं संपूर्णं ॥

टीका–हे सूर्यपुत्रि श्रीयमुनाजी ? तुम्हारे या अष्टकको आनंदकरिकें जों सदा पाठ करे हे ताके समस्त दुरितको क्षय होय, मोक्षदेवेवारे भगवानमें निश्चय प्रीति होय, ताकरिकें पहिलें बताई हैं सो सब सिद्धि प्राप्त होय, प्रतिबंध निवृत्त-करिवेवारे प्रभु प्रसन्न होय, अंतःकरणकोवासनासहित स्वभाव फिरजाय ओर भगवानको स्वभाव हे जो व्रजभक्तनकों देवेको आनंद ओरकूं नहिं देयँहे सो स्वभाव फिरजाय हे; इतनें यास्तोत्रको पाठ करिवेवारेकूं यह आनंदको दान करत हैं; एसें, भक्तनके दुःख तथा पापकूं हरिवेवारे प्रभुकों प्रिय श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहत हैं. यद्यपि श्रीयमुनाजीके अन्यस्तोत्र हैं तथापि यास्तोत्रके पाठसूंही सब फल मिलें हैं अन्यस्तोत्रके पाठसूं नहिं मिलेहैं, क्यों जो अन्यस्तोत्रमें एसो स्वरूपनिरूपण नहिं हे. तेसें आनंदकरिकें सदा पाठ करे तब फल मिले, क्योंजो अर्थको ज्ञान होय तब आनंद प्राप्त होय ओर सदा पाठ करे तब आसुरावेश न होय. तेसें श्रीयमुनाजीके स्तोत्रसूंही यह फल मिलेहैं आरके स्तोत्रसूं नहिं मिलेहैं, क्यों जो भगवाननें अष्टविध ऐश्वर्य श्रीयमुनाजीकों दियोहे; तासूं श्रीयमुनाजीके या अष्टकको अर्थानुसंधानपूर्वक आनंदसूं सदा पाठ करे तो सब फल प्राप्त होय. ॥ ९ ॥

इति श्रीयमुनाष्टककी टीका व्रजभाषामें गोस्वामि-श्रीनृसिंहलालजीमहाराजकृत संपूर्ण भई ॥

इति श्रीयमुनाष्टकं समाप्तम् ॥

श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीबालबोधकी व्रजभाषामें भावार्थटीका लिखी है ॥

दूसरे मतमें धर्म. अर्थ, काम ओर मोक्ष ये चारो पुरुषार्थ ही फलरूप से एसें कहें हैं; तासूं जीवनकी प्रवृत्ति पुरुषार्थ सिद्धकरिवेमें होयहे; परंतु भक्तिमें जो बडाई हे सो जीव नहिं जानें हें सो जतायवेकेलिये पुरूषार्थके स्वरूपनिरूपणपूर्वक अपने सिद्धांतरूप मंगलाचरण कहत हें.

श्लोकः—नत्वा हरिं सदानंदं सर्वसिद्धांतसंग्रहम् ॥
बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम् ॥१॥

टीका—भक्तनके दुःख तथा पापकूं हरिलेवारे सदानंद-(श्रीकृष्ण) भगवानकूं नमन करिकें बालकनकों आछीतरेहसूं बोध होयवेकेलिये सबप्रमाणनसूं निश्चित कियोभयो सर्व-सिद्धांतको संग्रह कहूंगो. भगवान् हरि हें तासूं दुःखकी निवृत्ति करें हैं ओर सदानंद हैं तासूं सुखकी प्राप्ति करें हैं तिनकूं श्रीआचार्यजीनें नमन करिके एसें जतायो जो जीवनकूं दुःखकी निवृत्ति तथा सुखकी प्राप्तिकी इच्छा होय तो दीनता-पूर्वक भगवानकों नमन करनों सो करिकें सर्वसिद्धांतको संग्रह कहूंगो एसें कह्यो हे इतने पुरुषार्थको प्रतिपादन करिवे-

वारें जो शास्त्र हैं तिनको जामें सिद्धांत हे एसो ग्रंथ कहूं हूं. ये ग्रंथ बालकूं बोध करिवेकेलिये हे इतने आपनो हित कहा तथा अहित कहा ? एसें नहिं जानें हैं ओर भाव शुद्ध हे तासूं दयाके पात्र हैं सो बालक कहेजाय हैं तिनकों दूसरे फलसाधनविषयक उपाय ग्रहणकरिवेको भ्रम मिटायकें जेसो अधिकार ताप्रमाण भक्तिमें अथवा शरणागतिमें प्रवेश होयवेको सामर्थ्य होय एसो बोध उत्पन्न करिवेकेलिये यह ग्रंथ हे ॥१॥

एसें प्रकार ओर फलको संबंध बतायकें पहिलेसूं पुरुषार्थनके विषय संदेह मिटायवेकेलिये संक्षेपसूं तिनको निश्चय कहत हैं-

श्लोकः-धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम्।
जीवेश्वरविचारेण द्विधा ते हि विचारिताः ॥२॥

टीका- धर्म. अर्थ, काम ओर मोक्ष एसे नामके चार्यो अर्थ बुद्धिमाननके हैं (इतनें साधारणकूं प्राप्त होय एसें नहिं हैं) सो वेहि अर्थ जीवविचारित ओर ईश्वरविचारित एसें दोय-प्रकारके हैं. तिनमें वेदादिकनमें करिवेकी[1] अथवा नहिंकरिवेकी[2] आज्ञा हे सो धर्म कह्योजाय, माला, चंदन, स्त्री, पुत्र, देह, प्राण, आभरण, गृह, धनप्रभृति सब अर्थ कहेजाय, शब्द,

---

१ स्वर्गकी कामनावारो ज्योतिष्टोमयज्ञसूं यजन करे इत्यादिक करिवेकी आज्ञा हे. २ ब्राह्मण मारिवेयोग्यनहिं हे इत्यादिक नहिंकरिवेकी आज्ञा हे.

स्पर्श, रूप, रस, गंधप्रभृति विषयनमें इंद्रियनकी अनुकूलतासूं प्रवृत्ति होय सो काम ओर अहंताममतात्मकसंसारकी निवृत्ति होयकें अपने स्वरूपमें जो स्थिति सो मोक्ष ये चारो नामसूंहि अर्थ कहेजाय हैं; वस्तुतासूं तो भक्तिहि मुख्यपुरुषार्थ हे तासूंहि मूलमें पुरुषार्थ हैं एसें नहिं कहतें अर्थ हैं एसेंहि कह्यो हे. ओर इनपुरुषार्थको जीवनने विचार कियो हे तथा ईश्वरने विचार कियो हे एसें दोयप्रकारसूं ये विचारित हैं ॥ २ ॥

एसें पुरुषार्थनके दोय प्रकार प्रतिपादनकरिकें ईश्वर-विचारित पुरुषार्थनको स्वरूप कहत हैं.

श्लोकः—अलौकिकास्तु वेदोक्ताः साध्यसाधनसंयुताः ॥
लौकिका ऋषिभिः प्रोक्तास्तथैवेश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥

टीका—साध्य ओर साधनकरिकें युक्त अलौकिक पुरुषार्थ तो वेदमें कहें हें. जेसें अमुकसाधनकरिकें अमुकयज्ञादिक धर्म सिद्ध होयहे, अमुकसाधनकरिकें अमुक अर्थ सिद्ध होयहे, अमुकसाधनकरिकें अमुक काम सिद्ध होयहे ओर अमुकसाधन-करिकें मोक्ष सिद्ध होय हे एसें वेदमें निरूपण कियो हे ओर वेद ईश्वरप्रोक्त हे तासूं वेदमें कहेहें सो लौकिक (जीव-विचारित) पुरुषार्थ हें. यद्यपि सब ऋषि वेदकूं जानिवेवारें हें तथापि तेसेंहि निरूपणकरिवेकी ईश्वरकी आज्ञा हे; तासूं भिन्न निरूपण कियो हे ॥ ३ ॥

श्लोकः-लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यतः स्थिताः।
धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात्॥४॥
त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते ॥

टीका-अलौकिक पुरुषार्थ तौ वेदसूं स्थित हैं तिनको विचार करिवेकी आवश्यकता नहिंहे क्यों जो जिनकों अलौकिक पुरुषार्थ सिद्धकरिवेकी इच्छा होय वे वेदमें लिखे-प्रमाण करें परंतु ये होयसके एसे नहिंहैं ये जतायवेकेलिये स्थित हैं एसें कह्योहे इतने प्रचलित नहिंहैं ? तासूं लौकिक-पुरुषार्थकूं तो कहूंगो. तिनमें धर्मशास्त्र धर्मकूं सिद्धकरिवेवारें हैं, नीतिशास्त्र अर्थकूं सिद्धकरिवारें हैं और कामशास्त्र कामकूं सिद्धकरिवारें हैं ये धर्म, अर्थ और काम तीनों त्रिवर्ग कहें जायें हैं सो शुद्धभाववारे अनन्यभक्तनकों तो प्रभुहि सिद्ध करेंहैं ओर साधारणभक्तनकों सिद्ध करें तो इतनेहीमें अटकजाय तासूं तिनमें श्रमको प्रभु नाश करेंहैं, तासूं तिनको निर्णय (यहां) नहिंकह्योजाय हे ॥ ४ ॥

एसें त्रिवर्गकी व्यवस्थाको सूचनकरिकें
मोक्षरूप फल एक हे किंवा अनेक हे? एसें
जानिवेकी इच्छा होय तहां कहतहें.

श्लोकः-मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परतः स्वतः।
द्विधा द्वे द्वे स्वतस्तत्र सांख्ययोगौ प्रकीर्त्तितौ॥
त्यागात्यागविभागेन सांख्ये त्यागः प्रकीर्त्तितः ॥६॥

टीका–लौकिकमोक्षमें दोय शास्त्र परतः मोक्ष सिद्ध-करिवेवारे हैं ओर दोय शास्त्र स्वतः मोक्ष सिद्धकरिवेवारे हैं एसें स्मार्तमोक्षविषयक चारों शास्त्र हैं. जामें शास्त्रमें कहीरीति-प्रमाण साधनकरिवेतें जीव कृतार्थ होय सो स्वतःमोक्षसाधक शास्त्र ओर जामें शास्त्रमें कहीरीतिप्रमाण साधनकरिवेतें कोउके प्रसादसूं जीव कृतार्थ होय सो परतःमोक्षसाधक शास्त्र हैं; तामें स्वतः(जीवके स्वाधीन) मोक्षमें त्याग ओर अत्यागके भेदसूं सांख्य ओर योगशास्त्र कहेंहैं इतने त्याग करिवेसूं मोक्ष सिद्ध होय ऐसो प्रतिपादन करिवेवारो एक शास्त्र हे तामें सांख्यशास्त्रमें त्याग कह्यो हे; इतने नित्यानित्यवस्तुको विवेक होय तब वैराग्य भयेसूं त्याग करे तब मोक्ष होय; एसें त्यागकरिकें मोक्ष जिवके स्वाधीन हैं एसो बतायवेवारो सांख्यशास्त्र हे ॥५॥६॥

देहाधिक संघात विद्यमान हे तब त्यागमात्रतें केसे मुक्ति होय ? एसी शंकाकरिकें मुक्तिको प्रकार कहतहें.

श्लोकः–अहंताममतानाशे सर्वथा निरहंकृतौ ॥
स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते ॥७॥

टीका-अहंताममताको नाश भयेतें सर्वथा अहंकारशून्य होयवेसूं जब जीव अपने स्वरूपमें रहे तब सो जीव कृतार्थ कह्योजाय हे इतने स्थूल शरीर तथा लिंगशरीरकी अहंता ओर इनके परिकर जो गुहादिक तथा प्राण इन्द्रिय प्रभृति हैं तिनमें

ममताको त्याग होय तब बुद्धितत्त्वमें जो प्रतिबिंब रह्यो हे तामें अभिमान मिटजाय तब कर्त्तापनो तथा भोक्तापनोहू मिटजाय तब जीव अपने स्वरूपमेंही प्रकाशमान होय सो जीव मुक्त भयो एसें सांख्याचार्यनने कह्यो हे. ॥ ७ ॥

गौतमादिकनके मतमें जेसें वेदविरुद्ध अंश हे तेसें सांख्यमेंहु वेदविरुद्ध अंश हे तब सांख्यमें जो मोक्षको प्रतिपादन कियो हे तामें शिष्टनकों आदर केसें हे ? ओर गौतमादिकेननें जो मोक्षको प्रतिपादन कियो हे तामें शिष्टनकों अनादर क्यों हे ? एसें जानिवेकी इच्छा होय तहां कहत हें.

श्लोकः—तदर्थं प्रक्रिया काचित् पुराणेऽपि निरूपिता ॥ ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता फलमेकमबाध्यतः ॥ ८ ॥

टीका—अन्यथारूपको त्यागकरिकें अपने स्वरूपसूं जो स्थिति हे सा मुक्ति हे एसे मोक्षके लिये कोऊ प्रक्रियाको पुराणमेंहू निरूपण कियो हे ओर पुराण वेदके अर्थकी वृद्धिकरिकें स्पष्ट निर्णय करिवेवारो हे ताके अनुकूल सांख्यको मोक्ष तासूं तामें शिष्टनकों आदर हे ओर गौतमादिकनने मोक्षको प्रतिपादन कियो हे सो पुराणसूं अनुकूल नही हे तासूं तामें शिष्टनको आदर नही हे. यद्यपि ऋषीननें बहोतप्रकारकी सांख्यकी प्रक्रिया कही हे तथापि निरीश्वर-

सांख्यसिवाय ओर सबनमें आत्मव्यतिरिक्तसबनको त्याग करनो ये अंतरंग साधन एक हे तथा अपने स्वरूपमें स्थितिरूप मोक्षफलहू एक हे तासूं बाह्यसांख्यसिवाय सब सांख्य शिष्टनकों आदर करवेयोग्य हे. अथवा पुराणोक्त सांख्यमें आत्मदर्शनरूप प्रथम एक फल होय हे ओर पीछें ज्ञानद्वारा मोक्षरूप दूसरो फल होय हे; तामें ऋषीनने जो विचार कियो हे वाको आत्मदर्शनरूप एक फल होय हे सोहू निरीश्वर-सांख्यसिवायके सांख्यको फल हे. निरीश्वर सांख्यको फल तो नरकप्राप्तिरूपहि हे ॥ ८ ॥

एते स्वतः (स्वाधीन) मोक्षके साधक एक
शास्त्रको निरूपण करिकें दूसरे
शास्त्रको निरूपण करत हे.

श्लोकः—अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि ॥ यमादयस्तु कर्त्तव्याः सिद्धे योगे कृतार्थता ॥ ९ ॥

टीका—त्याग नहि करनो एसो साधन करनो होय तो तामें योगमार्ग हे. इतनें चित्तवृत्तिको निरोध कारकें आत्माको बोधक मार्ग हे सो पूराणसूं अनुकूल हे; तामें त्यागहू मनसूं हि हे. यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, ध्यान. धारणा ओर समाधिरूप साधन तो करने तब योग सिद्ध भयेसूं आत्माके स्वरूपमें स्थितिरूप मोक्ष सिद्ध होय ॥ ९ ॥

पसें स्वतः (जीवके स्वाधीन) मोक्षमें दूसरे शास्त्रको निर्णय कियो, अब परतः (पराधीन) मोक्षके दोय शास्त्रको निर्णय करिवेकेलिये तामें मोक्षको जो स्वरूप हे ताके निरूपणपूर्वक बिस्तार बतावत हें.

श्लोकः—पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते । ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्रूपेण सुसेव्यते ॥ १० ॥

टीका—पराश्रयकरिकें मोक्षतो शिव तथा विष्णुके आश्रयसूं होय हे सोहू दोयप्रकारको निरूपित कियोजायहे. यद्यपि गुणावतारनमें ब्रह्माहू हें ओर गुणाभिमानिपनेसूं तीनो समान हें तथापि सरस्वतीके शापादिकसूं ब्रह्माको पूज्यनो मिटगयो हे तासूं वेदके जानिवेपनेकूं अथवा परब्रह्म जानिवेपनेकूं अथवा ब्राह्मणकी जातिके अभिमानवारी देवतापनेकूं प्राप्त भयें हें तिनकी सेवा ब्राह्मणरूपसूं होय हे. इतने वेदादिक जानिवेके लिये किंवा ब्रह्मज्ञानके लिये किंवा ब्रह्मतेजकी प्राप्तिके लिये ब्रह्माजीकी सेवा ब्राह्मणस्वरूपसूं होय हे मोक्षके लिये ब्रह्माजीको सेवन नही हे क्यों जो ब्रह्माजीको कार्य सृष्टि करिवेको हे ओर मोक्ष हे सो सृष्टिकार्यसूं विरुद्ध हे; तासूं ब्रह्माजी मोक्षकूं नहिं देयँ हें ॥ १० ॥

ब्रह्माजी मोक्षकूं नही देतहें तामें प्रमाण कहतहें.

श्लोकः—ते सर्वार्था न चाद्येन शास्त्रं किञ्चिदुदीरितम् ।
अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ ।।११।
वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्त्तको ।

टीका—ये (धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप) सब अर्थ ब्रह्माजीसूं प्राप्त नहि होय. अर्थात् दोय तीन अर्थ प्राप्त होय. अथवा ब्रह्माजीकूं सेववेवारे सबअर्थवारें नहिं होयहें. किंतु यद्किञ्चित् अर्थवारें होयँ हें ओर विननें वैखानसमंत्ररूप शास्त्र कछुक कह्यो हे; तासूं शिव ओर विष्णु जगतको हितकरिवेवारें हें ओर वस्तुको पालन विष्णुको अवश्य कर्त्तव्यहे तथा वस्तुको संहार शिवजीकों अवश्य कर्त्तव्य हे. तेसें चतुर्वर्गविषयक शास्त्रके प्रवर्त्तक ये दोऊ हैं; तामें जेसो जाको अधिकार हे ताप्रमाण प्रवृत्ति होय एसे शास्त्र करिवेवारे दोऊ हें ।।११।।

शीवजीके शास्त्रमें शिवजीको सर्वात्मकपनो कह्योहे ओर विष्णुके शास्त्रमें विष्णुको सर्वात्मकपनो कह्योहे तब विष्णुको पालनरूप एक कार्य हे ओर शिवजीको संहाररूप एक कार्य हे एसें केसें संभवे ? एसी शंका होय तहां कहत हें.

श्लोकः—ब्रह्मव तादृशं यस्मात्सर्वात्मकतयोदितौ ।१२।

टीका—अथर्वशिरश्वेताश्वतर प्रभृति उपनिषदनमें शिवरूपसूं ओर महानारायणोपनिषद्नारायणोपनिषत्प्रभृतिउपनिषदनमें विष्णुरूपसूं ब्रह्मकोहि प्रतिपादन हे तिनसूं अविरुद्धतासूं पाशुपत

तथा पंचरात्रादिकनमें, जासूं सर्वात्मकपनेसूं दोऊको निरूपण हे तासूं ब्रह्म तेसो हे ॥१२॥

श्लोकः—निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता ।
भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि ।१३।
भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः ॥

टीका—शिवजीके (पशुपतादिक) शास्त्रमें शिवजी, निर्दोष-पूर्णगुण हैं एसें निरूपण कियोहे ओर विष्णुके (पंचरात्रादिक) शास्त्रमें विष्णु निर्दोषपूर्णगुण हैं एसें निरूपण कियोहे सोहू शिवरूपसूं तथा विष्णुरूपसूं परब्रह्मकोहि निरूपण हे गुणावतारनके जभिप्रायसूं नहिं हे; तासूंहि महाभारतमें मोक्षधर्ममें कह्योहे जो सांख्य, योग, पंचरात्र, वेद तथा पाशुपत ये पांचोको निष्ठा अंते नारायण प्रभु हैं; परंतु या अभिप्रायकूं नहिं जानिवेवारे अज्ञानी हैं तासूं तिनमें जा जा देवताको प्रतिपादन हे सो सो देवताहि अंते निष्ठारूप हे एसें माने हैं तासूं विनकूं फलहू तिन तिन देवतानमें सायुज्यादिक होय हे परंतु भगवानको आनंद अथवा भजनानंद नहिं मिले हे. यह जीवविचारित लौकिक मोक्षको निरूपण कियो तामें शिव तथा विष्णुके भजनको फल एक हे किंवा भिन्नभिन्न हे एसें जानिवेकी इच्छा होय तहां कहत हैं जो भोग तथा मोक्ष देवेमें यद्यपि दोऊ समर्थ हैं तथापि शिवजीके भजनतें भोग

ओर विष्णुके भजनतें मोक्ष मिले हैं; एसें विशेष निश्चय हे. सो श्रीभागवतदशमस्कंधके ८८ में अध्यायमें कह्यो हे जो शिवजी शक्तियुक्त हें ओर गुणनकरिके आवृत हें तासूं शिवजीके भजनतें गुणनकी विभूतीनको भोग मिले हे ओर हरि साक्षात् निर्गुण मायातें पर हें तिनके भजनतें निर्गुण होय अर्थात् मोक्ष मिले हे; तासूं श्रुतीनमें तथा पुराणादिकनमें कोउ कोउस्थलमें शिवजी मोक्ष देय हें तथा विष्णु भोग देय हें एसें लिख्यो हे सो एसो सामर्थ्य बतायवेके लिये हे देवेके अभिप्रायसूं नहिं हे ॥१३॥

शिवजी भोग देयँ हें ओर विष्णु मोक्ष देयँ
हें तामें बालकनकेहु समझिवेमें आवे
एसी युक्ति कहत हें.

श्लोकः—लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुंक्ते तन्न यच्छति कर्हिचित् ॥ १४ ॥

टीका—लोकमेंहू एसी रीति हे जो स्वामी होय सो अपने भोगवेकी जो वस्तु होय सो ओरकूं नहिं देयँ हे तेसें शिवजी सदा वैराग्ययुक्त रहिकें मोक्षकूं भोगवे हें ओर विष्णु सर्वदा लक्ष्मीजीके संग भोग भोगवे हें तासूं शिवजीकूं भोग्य मोक्ष हे सो ओरकूं देयँ नहिं ओर विष्णुकूं भोग्य भोग हे सो ओरकूं देयँ नहिं ये लौकिक युक्ति बताई परंतु वास्तविक अभिप्राय ऐसो हे जो शिवजि घोरशक्तिसहित फिरें हें तथा

विनके उपासक तामस होयहैं तासूं शिवजी मोक्ष नहिं देयँ हैं ओर भगवद्भक्त निर्गुण हैं तिनकों लौकिक समृद्धि देवेतें विनको पात होय एसें जिनकूं जाने तिनकों भगवान् भोग नहिं देयँहैं. ओर जिनकों समृद्धिको मद होय नहिं एसें जाने तिनकों (श्रीदामाकी नाँई) भोगहू देयँहैं सो अगाडी आवेगो जो अतिप्रियकों देत हैं. अथवा वैष्णवजनकों मोक्षकी इच्छा तो है नहि तासूं वे विष्णुको भजन नहिं करेंगें ओर भगवत्सेवामें भोग सिद्ध होय एसी समृद्धिकी इच्छा है तासूं शिवजीको भजन करेंगें एसी शंका होय तहां कहत हैं जो लोकमेंहू प्रभु (सेवकके पति) श्रीकृष्ण. भक्तसंबंधी जो वस्तुको अंगीकार करेंहैं सो वस्तु कोउविरियां शिवजी नहिं देयहैं; क्यों जो भगवान् भक्तकामपूरकहैं ओर विनकी भक्ति कल्पवृक्षसदृशहे सो सबइच्छा पूर्ण करतहैं तेसें प्रभुकी भक्तिसूं जो प्राप्त होयहे ताकूं अलौकिकपनो हे ओर अलौकिककोहि प्रभु अंगीकार करेंहैं तासूं लोकमेंहू प्रभुकों अंगीकारकरिवेकी वस्तु अलौकिक हे सो शिवजी नहिं देत हैं प्रभुहि देत हैं ॥ १४ ॥

शिवजी मोचकूं नहिं देतें तो पाशुपत विष्णु, भोग नहिं देतें होय तो " पुत्र, धन, स्त्री, हार, मेहेल, घोडा, हाथी, भुख, स्वर्ग ओर मोक्ष हरिभक्तें दूर नही हे ' इत्यादिक वाक्यनमें भगवद्भक्तिें पेहिक पारलौकिक सब सुख मिलवेको

लिख्यो हे तामें बाध आवेगो एसी शंका
होय ताकी निवृत्तिके लिये कहत हैं.

श्लोकः—अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि ।
नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः ॥१५॥
प्रत्येकं साधनं चैतद्द्वितीयार्थे महान् श्रमः ।

टीका—शिवजीकूं जो अत्यंत प्रिय होय ताकूं शिवजी कोऊ समय मोक्ष देत हैं ओर विष्णुकूं जो अत्यंत प्रिय होय ताकूं विष्णु भोग देत हैं ये बातहू लोकसिद्ध हे तासूं शिव ओर विष्णुमें भोग तथा मोक्ष दोय देवेकी शक्ति हे क्यों जो तिनके भक्त होय ओर तिनको आश्रय करिके अति प्रिय जब होय तब शिवजी तथा विष्णु दोऊ वाभक्तको जेसो अधिकार होय ताके अनुसार भोग ओर मोक्ष देत हैं. अथवा शिवजी भोगकूंहि देते होय तब विष्णुके भक्तनकूंहू भोगके लिये शिवजीकी भक्ति तथा आश्रय करनो पडे ओर शिवजीके भक्तनकों मोक्षके लिये विष्णुको आश्रय करनो पडे; तासूं जो अत्यंत प्रिय होय ताकूं दोय पदार्थ दोऊ देत हैं. भगवद्भक्त न होय सो भोगकी इच्छा होय तो शिवजीको भजन करे तथा मोक्षकी इच्छा होय तो विष्णुको भजन करे ओर जो भगवद्भक्त होय ताकूं तो सब पदार्थ भगवानसूंहि सिद्ध होय तासूं प्रत्येककों अतिप्रियपनो होय तेसें तदीयपनो तथा तिनको आश्रय करनो येही साधन हे; वाही साधनसूं सब सिद्ध होय

परंतु शिवजीकों मोक्ष देवेमें तथा विष्णुकों भोग देवेमें बडो श्रम होय हे. अथवा शिवभजन भोगकूं सिद्ध करे हे ओर विष्णुभजन मोक्षकूं सिद्ध करे हे ये प्रत्येक साधन हे एसें लौकिक मोक्षकी व्यवस्था कही ओर अलौकिक मोक्ष भक्ति मार्गीय हे ताके लिये जो श्रम हे सो साधनसूं, फलसूं, तथा स्वरूपसूं अति उत्तम हे. ॥ १५ ॥

शिवजीकों मोक्ष देवेमें तथा विष्णुकों भोग
देवेमें बडो श्रम हे एसें कह्यो ताको
कारण कहत हें

श्लोकः ॥ जीवाः स्वभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा ॥१६॥

श्रवणादि ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिध्यति ।

टीका—जीव भगवानके अंश हें तासूं स्वरूपसूं दुष्ट नहिंहें परंतु स्वभावसूं दुष्ट भयें हें; वादोषकी निवृत्तिके लिये सर्वदा श्रवणादिक करनों ताकरिकें प्रेम होय ओर प्रेमसूं सब कार्य सिद्ध होय हे. इतने श्रुतिमें लिख्यो हे " जो स्वभावसूं देव, मनुष्य ओर असुर एसें तीनप्रकारके जीव हें " तेसें मत्स्यपुरायमें संकीर्ण, सात्विक, राजस ओर तामस एसें चारप्रकारके कल्प बतायकें " अग्नि तथा शिवको माहात्म्य तामसमें अधिक कह्यो हे, ब्रह्माको माहात्म्य राजसमें अधिक कह्यो हे, सरस्वती तथा पितृको माहात्म्य संकीर्णमें अधिक

कह्यो हे ओर सात्विकमें हरिको माहात्म्य अधिक कह्यो हे " एसें चार्योंके लक्षण बतायकें सांत्विकनमें मोक्षफल सहजमें होय हे एसें लिख्यो हे. तेसें विष्णुभक्तिकरिवेवारे सात्विक हैं ओर शिवभक्तिकरिवेवारे तामस हैं एसें वामनपुराणमें दशमाध्यायमें लिख्यो हे तासूं विष्णुभक्ति करिवेवारे सात्विक होयँ हैं तिनकों सत्वगुणकी निवृत्ति होयकें शीघ्रही गुणातीतपनो होयवेसूं मोक्ष होय तामें विष्णुकों श्रम न होय ओर भोग देवेमें तो जिनको शांत स्वभाव होय सो फिरावनो पडे तामेंहू भोगमें आसक्ति होयकें दोष उत्पन्न न होय एसो स्वभाव करिवेमेंहू विष्णुको श्रम होय तेसें शिवजीके भक्त तामस होय हैं तिनकों तो तमोगुणके, रजोगुणके ओर सत्वगुणके धर्म मिटावे तब गुणातीतपनो होय तब मोक्षहोय तामें शिवजीकों श्रम होय ओर तामसस्वभाववारेनकों भोग देवेमें भक्तनको स्वभाव फिरावनो नहिं पडेहे तासूं शिवजीकों श्रम न होय. तासूं जीवनके दोषकी निवृत्तिकेलिये श्रवणादिक सर्वदा करनों तासूं प्रेम होय ताकरिकें तदीयत्व ओर तदाश्रयत्व सिद्ध होय. अथवा जीव भगवानके दास हैं तिनकों भगवत्सेवा करनी ये स्वधर्म हे सो नहिं करत हैं तासूं दोषयुक्त भयें हैं वादोषकी निवृत्तिके लिये श्रवणादिक करनों तासूं भगवानमें प्रेम होय ओर प्रेमकरिकें सबकार्य सिद्ध होय हे ॥ १६ ॥

एसें सामर्थ्य तथा साधनकी व्यवस्था बतायकें
ताकरिकें जो सिद्ध भयो सो कहत हैं.

श्लोकः-मोक्षस्तु सुलभो विष्णोर्भोगश्च शिवतस्तस्था ॥
समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम् ॥१७॥

टीका-उपर द्वितीय अर्थमें श्रम बतायो हे तासूं मोक्ष तो विष्णुसूं सुलभ हे ओर भोग शिवसूं सुलभ हे और अतिप्रियत्व होयवेके लिये आत्माको समर्पण करे ताकरिकें निश्चित तदीयपनो होय, क्यों जो मेरो ओर मेरे ममताविषयक जिनने हैं तिनको. प्रभु इच्छाप्रमाण विनियोग करो एसी बुद्धि आत्मसमर्पणमें कारण हे सो जब होय तब तदीयपनो निश्चित होय ॥ १७ ॥

आत्मसमर्पण कियेतें तदीयपनो होय एसें कह्यो तब
आत्मसमर्पणन हि कियो होय ओर केवल आश्रयमात्र
होय तामें उपरबताई एसी बुद्धि जाकी भई
न होय तासूं तदीयपनोहू भयो न होय
ताकूं फलसिद्धि केसें होय? एसें
जानिवेकी ईच्छा होय तहां
कहत हैं.

श्लोकः-अतदीयतया चापि केवलश्चेत्समाश्रितः ॥
तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किंचित्समाचरेत् ॥
स्वधर्ममनुतिष्ठन्वै भारद्वैगुण्यमन्यथा ॥१९॥

टीका—तदीयपनो भयो न होय ओर केवल (प्रभु मेरे रक्षक हैं एसें अनुसंधानवारो) आश्रित होय तोहू अपने वर्णाश्रमके धर्मको आचरण करे ओर आश्रय तथा तदीयपनेकी बुद्धि होयबेकेलिये कछुक श्रवणादिक करे; क्यों जो वर्णाश्रमधर्म करे नहिं ताके अधर्मको दोष, तथा उपर बतायेप्रमाण जीव स्वभावतें दुष्ट हैं सो स्वभावकृत दोष मिलकें द्विगुण (दुगुणो) दोष होय तब ताको उद्धार करिवेवारे (प्रभु) कों श्रम अतिबडो होय. अथवा " वर्णाश्रमधर्म छोडिकें प्रभुके चरणको भजन करतो होय सो अपूर्ण रहे तोहू ताको अकल्याण न होय ओर भगवच्चरणको भजन करते न होय तिनकों वर्णाश्रके धर्मसूं कहा अर्थ प्राप्त होय हे ? कछु नही " एसें प्रथमस्कंधमें नारदजीको वाक्य हे तासूं वर्णाश्रमके धर्म करतें करतें हू आश्रय तथा तदीयपनेकी बुद्धिकेलिये श्रवणादिक करनों. तेसें करे नहिं ओर केवल वर्णाश्रमधर्म करे तो तासूं कछु फल न होय ओर आश्रय तथा तदीयपनेकी बुद्धिकेलिये श्रवणादिक करे नहिं इतने प्रभुहू उद्धार न करें एसें दुगुणो भारहोय. अथवा भक्तिमार्गमें श्रीआचार्यजीद्वारा प्रभुकी शरणगति करनी येही जीवको स्वधर्म हे सो स्वधर्म करे ओर आश्रय तथा तदीयपनेकी बुद्धिकेलिये श्रवणादिक करे तो फलसिद्धि होय ओर एसें न करे तो दुगुणो भार होय इतने श्रवणादिक साधन करे ताको फल न होय ओर

भक्तिमार्गीय धर्मको आचरण नहिं करिवेसूं प्रत्यवाय होय ॥ १९ ॥

एसें बालकनकों बोध होयवेकेलिये संक्षेपमें निरूपण करिकें उपसंहार करतहें.

श्लोकः—इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रमः पुनः ।
इतिश्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितो बालबोधः समाप्तः ।

टीका—एसें पूर्वोक्तप्रकारसूं अपने ओर दूसरेनके सिद्धांतके संग्रहरूप सब कह्योहे ताको ज्ञान होय तो पुरुषार्थनके स्वरूप समझिवेमें अन्यथाज्ञान फिर न होय इतने प्रथम जो अन्यथाज्ञान होय सो यामें लिखेप्रमाण समझे तो पीछें अन्यथाज्ञान न रहे. ॥

इति श्रीमद्गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराज-
विरचित बालबोधकी व्रजभाषामें
संक्षेपभावार्थटीका संपूर्ण भई ।

श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ सिद्धांतमुक्तावलीकी व्रजभाषामें संक्षेपसूं भावार्थटीका लिखी हे ॥

निबंधमें भगवानकी प्राप्तिकेलिये वैदिकमार्ग तथा भक्तिमार्गको निरूपण कियो हे ओर दशमस्कंधके श्रीसुबोधिनीजीमें स्वतंत्रभक्तिमार्गको निरूपण कियो हे. सो भगवत्प्राप्तिकेलिये तीनोमार्गनमेंसूं अमुककूं अमुकमार्ग मुख्य हे एसें बतायवेकेलिये हे किंवा तीनोनमें अमुकमार्ग मुख्य हे एसें बतायवेकेलिये हे ? एसो संदेह अपने भक्तनकूं होय. तेसें वाके प्रसंगमें सेवाको स्वरूप कहाहे ? ओर वाके अधिकारी कोंन हें ? इत्यादिकहू संदेह होय ताकी निवृत्तिके लिये यह (सिद्धांतमुक्तावली) ग्रंथ श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी करत हें.

श्लोकः—नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धांतविनिश्चयम् ।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता ॥१॥

टीका—भक्तनके दुःख तथा पापकूं हरिवेवारे प्रभूनकों नमन करिकें अपने सिद्धांतको विशेषकरिकें जो निश्चय कियो हे सो कहूंगो. यहां विशेषकरिकें निश्चय कियो हे एसें कह्यो हे ताको अभिप्राय एसो हे जो श्रीभागवतद्वितीयस्कंधमें कह्योहे जो " भगवाननें तीनविरियां वेद देखिकें यह निश्चय

कियो जो आत्मारूप भगवानमें प्रीति होय एसो साधन करनों येहि समग्रवेदको अभिप्राय हे. " सो निश्चय जतावत हैं जा श्रीकृष्णकी सेवा सदा करनी सो तनुजा, वित्तजा तथा मानसी एसें तीन प्रकारकी हे; तामें मानसी फलरूप मानी हे श्रीकृष्ण फलात्मक हे तिनकी सेवा सदा करनी एसें कह्यो हे; ताको अभिप्राय एसो हे जो सेवाकरिकें ओर फलकी इच्छा नहि राखनी सेवाही स्वतः फलरूप हे. सदा सेवाकरिवेको लिख्यो हे ताको अभिप्राय एसो हे जो अपनमें दासपनेको अनुसंधान करिकें, सेवा हे सो स्वतंत्र फलरूप हे ओर जीवनकों अवश्य कर्तव्य हे एसें समझकें सर्वकाल सेवा करनी ॥ १ ॥

सदा सेवा करनी एसें लिख्यो हे सो राजाकी अथवा गुरूनकी सेवा शरीरसूं मनुष्य करत हैं तेसेही प्रभूनकी सेवाहू शरीरसूंहि करिवेको सिद्ध होय हे सो सर्वकाल केसें बनें? एसी शंका होय तहां कहतहें.

श्लोकः—चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम् ॥२॥

टीका—श्रीकृष्णमें चित्त, प्रथम कछुक लग्न होय, पिछें श्रीकृष्णके आधीन होय ओर तापिछें श्रीकृष्णमें एकतानरूपकूं प्राप्त होय (इतने तल्लीन होय) सो सेवा कहियें, एसी सेवा सिद्धहोयवेके लिये तनुवित्तजा सेवा हे; अर्थात् श्रीकृष्णमें चित्तकी एकतानता होयवेकेलिये तनुजा (शरीरसूं) तथा

वित्तजा (धनसूं) सेवाहे. यहाँ तनुजा तथा वित्तजा एसें भिन्न भिन्न पद नहिं कहेतें तनुवित्तजा एसें समस्तपद कह्यो हे ताको अभिप्राय एसो हे जो अन्यकूं मूल्यरूप धन देकें सेवा करावे सो वित्तजा सेवा भई; परंतु ताकरिके राजस आयजाय तासूं मानसी सेवा सिद्ध न होय ओर मूल्यरूप धन लेकें शरीरसूं सेवा करे सो तनुजा सेवा भई; परंतु सोहू मानसी सेवाकूं सिद्ध नहिं करे हे. जेसें यज्ञमें जितने ब्राह्मणनको वरण होय तितकों यज्ञकों फल नहिं होय हे तेसें हि मूल्य लेकें सेवा करे ताकों तनुजासेवाको फल (मानसी) सिद्ध न होय, तासूं भगवानमें निष्काम स्नेह होय ओर शरीरसूं तथा धनसूं संगहि जो सेवा करे, ताकूं मानसी सिद्ध होय; तासूं अहंताममतात्मक संसारके दुःखकी निवृत्ति ओर अपनो आत्मा तथा ये प्रपंच सब अक्षरब्रह्मात्मक हे एसो ज्ञान होय. यद्यपि भगवत्सेवामें जाको अभिनिवेश हे ताकूं इनफलनकी इच्छा नहिं हे तथापि मानसी सेवाहि एसी हे जो संसारके दुःखकी निवृत्ति तथा सर्व अक्षरब्रह्मरूप हे एसो ज्ञान ये दोय याके अवांतर फल हे तिनकूं तो सिद्ध करेहि हे ॥ २ ॥

अक्षरब्रह्म हे सोहि परब्रह्म हे एसें कोउके मनमें आवे तासूं कहत हें.

श्लोकः—परं ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानंदकं बृहत् ।
द्विरूपं तद्धि सर्वं स्यादेकं तस्माद्विलक्षणम् ॥३॥

टीका–श्रीयशोदोत्संगलालित श्रीकृष्णहि परब्रह्म हे; क्यों जो आपतो पूर्णानंद हैं ओर अक्षरब्रह्मके आनंद गिनतीमें आवे हे सो तैतरीयउपनिषदमें आनंदकी गिनती करी हे तामें मनुष्यनके आनंदसूं लेकें अक्षरब्रह्मताँई सोगुने आनंद गिनेंहें सो अक्षरब्रह्मताँई गिने हे तापिछें मन ओर वाणीमें आवे नहिं एसो (अगणित) आनंद लिख्यो हे. तासूं श्रीकृष्णमें अगणित आनंदहे ओर अक्षरब्रह्ममें गिनतीमें आवे तितनो आनंद हे. सो अक्षरब्रह्म दोयरूपवारो हे तामें सर्व प्रपंचात्मक इतने जगतमे जितने नामरूप हैं सो अक्षरब्रह्मकोहि एकरूप हे ओर दूसरो रूप प्रपंचसूं विलक्षण हे; अर्थात् श्रुतिनमें जाको प्रतिपादन हे, ज्ञानी जाकी उपासना करें हैं, ज्ञानीनकी मुक्तिको जो स्थान हे ओर श्रीपुरुषोत्तमके रहिवेको जो स्थान हे सौ अक्षरब्रह्मको दूसरो स्वरूप हे ॥ ३ ॥

विरोध मिटायवेके अर्थ अपनो सिद्धांत कहिवेकूं
ओरनके मतनको स्वरूप बतावत हैं.

श्लोकः–अपरं तत्र पूर्वस्मिन् वादिनो बहुधा जगुः।
मायिकं सगुणं कार्यं स्वतंत्रं चेति नैकधा ॥४॥

टीका–अक्षरब्रह्म जगतके रूपसूं प्रकट भयो हे तामें बहोत वादीलोग वेदमतसूं भिन्न मत कहत हैं. रस्सीमें सर्पकी भ्रांति होय हे, अथवा शुक्तिका (सींप) में रजत (चाँदी) की भ्रांति होय हे तेसें निर्गुणब्रह्ममें जगतकी भ्रांति भई हे, अथवा

मायायुक्त ईश्वरनें जगत् बनायो हे, एसें मायावादी मानें हैं. ओर सांख्यमतवारे एसें मानें हैं जो सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण, इन तीन गुणनसूं जगत् भयो हे. सांख्यमत कहिवेसूं पतञ्जल (योगशास्त्र) मतहू यामें आयगयो ओर तर्कशास्त्रवारे एसें कहें हैं जो पृथिवी, जल, तेज तथा वायु, इन सबनके परमाणु (अत्यंत झीणे झीणे कण) को संयोग ईश्वरकी इच्छासूं इनमें क्रिया उत्पन्न होयकें होय हे तब आपसमें मिलवेसूं कार्यरूप ये जगत् भयो हे. तार्किकमत कहिवेसूं जो जगतमें सातही पदार्थ हैं एसो प्रतिपादन करें हैं जाके प्रवर्त्तक गौतम ऋषि हैं एसो न्यायमत तथा जगतमें सातही पदार्थ हैं एसो जो प्रतिपादन करें हैं जाके प्रवर्तक कणाद मुनि हैं एसो वैशेषिकमतहू यामें आयगयो. ओर कर्ममार्गवारे मीमांसक एसें कहे हैं जो ये जगत् जेसो दीखे हे तेसोहि जगत सर्वदासूंहि चल्योहि आवे हे याको कोउ कर्त्ता होइ नहिं. मूलमें चकार हे तासूं बौद्ध, आर्हत, लोकायतिकप्रभृतिनामिकमत तथा वाम शाक्तादि मत आयगये. एसें अनेकप्रकारसूं कहतहें. ॥४॥

परंतु ये मत वेदसूं भिन्न हे तासूं एसें वेदमतसूं भिन्नमतको निरूपण जो करेहें तिनको खंडनतो वेदके बलसूंहि होयजायहे तासूं जूदो खंडन करिवेको प्रयोजन नहिंहे एसे अभिप्रायसूं वेदके सिद्धांतरूप स्व. सिद्धांतको निरूपण करतहें.

श्लोकः—तदेवैतत्प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम् ।
द्विरूपं चापि गंगावज्ज्ञेयं सा जलरूपिणी ॥५॥
माहात्म्यसंयुता नृणां सेवतां भुक्तिमुक्तिदा ।
मर्यादामार्गविधिना तथा ब्रह्मापि बुद्ध्यताम् ॥६॥

टीका-जाको वेदमें प्रतिपादन हे सोहि अक्षरब्रह्म नामरूपात्मक जगतके प्रकारसूं होय हे अर्थात् प्रपंचसूं भिन्न जो अक्षरब्रह्मको स्वरूप उपर कह्योहे सोहि अक्षरब्रह्म याजगतके रूपसूं होयहें जेसें गंगाजीके जाधिभौतिक ओर आध्यात्मिक दोय रूप हे तामे जो वृष्टिसूं बढ़े हैं ओर धूपसूं घटेहे सो जलरूपहे सो गंगाजीको आधिभौतिकरूप हे ओर जों तीर्थरूप हे जाके महात्म्यको निरूपण हे सौ गंगाजीको आध्यात्मिकरूप हे जो मर्यादामार्गके विधिसूं सेवन करिवेवारेनकों भोग ओर मोक्ष देतहे, इतने तीर्थरूप जो आध्यात्मिक स्वरूप हें सो प्रवाहमेंहि रहतहे; तासूं प्रवाहमेंतें जल भरिकें दूसरे देशमें लेजाय सो जलमें तारतम्य नहिंहे. जलतों वोही हे तथापि वहां वाजलके स्नानादिकसूं तीर्थस्नानादिकको फल होय एसो कोउ ग्रंथमें दीखवेमें नहि आवेहे तेसें वाजलसूं तेसोहि फल होतो तो राजा तथा ओर द्रव्यपतिप्रभृतीनकों वहां जायवेको प्रयोजनहि नहिं रहतो; तासूं प्रवाहमेंहि तीर्थस्नानफल लिख्योहे सो तीर्थरूप गंगाजी

जलरूपसूं भिन्न हे. तेसें अक्षरब्रह्म जगद्रूपहे ओर अजगतसूं भिन्नहूहे. एसें जाननो ॥ ५ ॥ ६ ॥

अब आधिदैविक रूपको निरूपण करत हें.

श्लोकौः—तत्रैव देवता मूर्त्तिर्भक्त्या या दृष्यते क्वचित्॥ गंगायां च विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये ।७।
प्रत्यक्ष सा न सर्वेषां प्राकाम्यं स्यात्तया जले ॥
विहिताच्च फलात्तद्धि प्रतीत्यापि विशिष्यते ।८।

टीका—उपर गंगाजीको जो आधिभौतिक ओर आध्यात्मिक रूप कह्यो तामेंहि देवतारूप गंगाजी भिन्न हे सो मूर्त्ति हे इतने भीष्मपितामहकी माता जो भई हती ओर भगीरथराजकों जाको दर्शन भयो हतो सो गंगाजीकी आधिदैविक मूर्त्ति हे सो भक्तिकरिकें कोउ गंजाद्वारप्रभृति स्थलमें अथवा गृहादिकमें भक्तिकी बृद्धि होय तब दीखवेंमें आवतहे. सो देवतारूप गंगाजी प्रवाहसूं भिन्न नहिंहे एसी जाकी बुद्धिहे ताकों प्रवाहमेंहि देवतारूप गंगाजी प्रत्यक्ष होयहे ताकरिकें निषिद्धि नहि एसो बहोत व्यवहार वाजलमें होय हे एसें जगतमेंहि भगवानके स्वरूप तथा भगवद्भक्तमें विशेष स्नेह

---

१ गंगाजीके दृष्टांतसूं एसो सिद्ध भयो जो तीर्थरूपकी उपासनासूं जो फल होयहे सो जगतकी उपासनासूं नहि होयहे तेसें अक्षरब्रह्मको उपसनासूं जो फल होयहे सो जगतकी उपासनासूं नहि होयहे.

होय तब भगवानसूं भिन्न नहिं हे एसी जाकी बुद्धि भई होय ताकेलिये भगवान् प्रकट होयहे तब अपने इच्छित प्रभुको यह स्थान हे एसो ज्ञान होय तब सर्वस्थलमें भगवद्भाव स्फुरायमान होय हे; इतने तेसी भक्तिकरिकें गंगाजीको दर्शन भयो तापिछे स्वर्ग ओर मोक्षरूप फल शास्त्रमें कहेहे तासूंहू ओर प्रतीतिकरिकेंहू प्रवाहरूपको दर्शन वाकों विशेष जानिवेमें आवतहे. तेसें जगतमें भगवानको साक्षात्कार भये पिछें ज्ञानिकोफल मोक्षहे तासूंही (जगतमें) सर्वत्र भगवानको यह अधिष्ठानहे एसो ज्ञान विशेष हे एसे जानिवेमें आवत हे तब सर्वत्र अनिषिद्ध इच्छानुकूल व्यवहार होय हे ॥ ७ ॥ ८ ॥

श्लोकः—यथा जलं तथा सर्वं यथा शक्ता तथा बृहत् ॥
यथा देवी तथा कृष्णस्तत्राप्येतदिहोच्यते ॥ ९ ॥
जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवास्ततः ॥
देवतारूपवत्प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मत ॥ १० ॥

टीका—जेसें गंगाजीको प्रवाहरूप जलहे तेसें यह सब जगत् हे, जेसें (पाप मिटायवेमें तथा फल देवेमें) समर्थ तीर्थरूप गंगाजी हे तेसें अक्षरब्रह्महे ओर जेसें मूर्त्तिवारी गंगाजी देवी हे तेसें श्रीकृष्ण हे; इतने गंगाजीको दर्शन जिनकों भयो होय तिनकों जेसें जल; गंगाजीको स्थान हे एसो ज्ञान तासूं अनिषिद्ध इच्छानुसार व्यवहार होयहे ओर

तीर्थके दर्शनमें अन्यसूं अधिकपनेको ज्ञान होत हे तेसें भगवत्स्वरूप तथा गुरुप्रभृतिकरिकें जिनकों जगतमें भगवानके दर्शन भयें हैं, तिनको सबजगतमें प्राणिमात्रमें भगवद्भावकी स्फूर्ति होय हे ओर अक्षरब्रह्मवारेनकें ज्ञानीनके मोक्षसूं हू अधिक भगवद्भावपनेको ज्ञान होय ये फल होय हे. ओर जिनको गंगाजीको दर्शन नहि भयो हे ओर आप श्रद्धावारे हैं तिनकों जेसें जलमें श्रद्धासहित स्नानादिव्यवहार होय हे ओर तीर्थकरिकें जलमें अन्यसूं अधिकताको ज्ञानरूप फल क्रमसूं होय हे तेसेंहि जगतमें भगवानके दर्शन जिनकों नहि भये हें ओर आप श्रद्धावारे हैं तिनकों भगवानके स्वरूपादिकनमें श्रद्धापूर्वक सेवादिव्यवहार होय हे ओर अक्षरब्रह्ममें ज्ञानीनके मोक्षसूं अधिकपनेसूं भगवानके धामपनेको परोक्षज्ञान होय हे; तामें आधिदैविकके दृष्टांतके विचारमेंहू यासिद्धांतमें यह कह्योजाय हे जो जगत् तो त्रिगुणात्मक कह्यो हे क्यों जो तीनस्वभाववारो प्रकट भयो हे तासूं अक्षरब्रह्मके अंशरूप ब्रह्मा, विष्णु ओर शिव ये तीनो तीनगुणके नियामक भगवाननें किये हें सो कूर्मपुराणादिकनमें आधिदैविकपनेसूं कहे हें परंतु भगवाननेहि आधिदैविकजेसे किये हें तासूं भगवान् एकहि नियामक हें. त्रिगुणात्मक जगतके नियामक जेसें त्रिगुणाभिमानीब्रह्मादिकतीनोनकूं भगवानने किये हें तेसें अक्षरब्रह्ममें नियामक भगवान्हि हें एसें युक्तिकरिकें निश्चय कियो

हे ॥ ९ ॥ १० ॥

गंगाजीके दृष्टांतसूं एसो सिद्धभयो जो जलरूप तथा तीर्थरूपको मात्र नियामकपनो जेसें देवीरूप गंगाजीकूं हे परंतु भक्तनकों आपतें फल देवेपनो नहिं हे तेसेंहि श्रीकृष्णसूहू भयो तब विनकी सेवाको उपदेश क्यों करो हो ? एसें काहूको शंका होय तहां कहत हें.

श्लोकौः—कामचारस्तु लोकेऽस्मिन्ब्रह्मादिभ्यो न चान्यथा ।
परमानंदरूपे तु कृष्णे स्वात्मनि निश्चयः ॥११॥
अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम् ।
आत्मनि ब्रह्मरूपे तु छिद्रा व्योम्नीव चेतनाः ॥१२॥

टीका—यालोकमें इच्छानुकूल भोगादिकनकी प्राप्ति ब्रह्मादिकनसूं होयहे ब्रह्मादिकशिवाय नहिं होयहे तेसें इच्छानुकूलहिं मिलेहे इच्छासूं विरुद्ध नहिं मिलेहे ओर भक्तनकों तो अपने अर्थमें परमानंदरूप श्रीकृष्णमें निश्चय कामचार हे इतने भक्तनकों सब कामनाके समूहमेंतें निकसिकें केवल प्रभु विषयहि कामचार (इच्छानुकूल प्राप्ति तथा भोग) होय हे. अथवा भक्तनकों प्रभुनमें अत्यंत स्नेह होयहे तासूं भगवान्

अपने आत्मा हे एसी स्फुरणा होयवेसूं सब रीतसूं विनकी प्रार्थना करिवेमें शंका नहिं होय हे ॥११॥ तासूं सब ब्रह्मरूप हे एसे सिद्धांतसूं परब्रह्म श्रीकृष्णमें बुद्धि करनी. आकाशमें चालिनी प्रभृतिसूं छिद्रकी बुद्धि होयहे तेसें ब्रह्मरूप आत्मामें दोषवारी बुद्धि होयहे जासूं जीव अपने आत्माकूं ब्रह्मरूप नहिं जानेहें संसारी जानेहें आकाशमें छिद्र नहिंहे आकाश तो सर्वत्र व्याप्त समान हे परंतु चालिनीप्रभृति उपाधिसूं आकाशमें छिद्र हे एसी बुद्धि होयहे तेसें जीव अक्षरब्रह्मके अंशरूप अणु हे परंतु अविद्याके अंतरायसूं अपनो अक्षरब्रह्मात्मकपनो नहिं जानेहें तासूं अपनेमें क्षुद्रत्वादिक धर्म दीखवेमें आवतहें ब्रह्मधर्म नहिं दीखतहें ॥१२॥

एसें बंधको निरूपण करिकें अब मोक्षको निरूपण करतहें ।

श्लोकः—उपाधिनाशे विज्ञाने ब्रह्मात्मत्वावबोधने ।
गंगातीरस्थितो यद्वद्देवतां तत्र पश्यति ॥१३॥
तथा कृष्णं परं ब्रह्म स्वस्मिन् ज्ञानी प्रपश्यति ॥

टीका—जितने जीव हें तिनमेसूं जाजीवकों जाप्रकारसूं उद्धार करिवेकी प्रभूनकी इच्छा होय हे वाप्रकारके गुरूनके उपदेशादिकनसूं अविद्यारूप उपाधिको नाश होय तब नामरूप-सहित (जडजीवात्मक) सब जगत् अक्षरब्रह्मरूप हे एसो ज्ञान होय तब गंगाजीके तीरपें रहिवेवारो गंगाजीको भक्त

भक्तिकी अधिकतासूं जेसे प्रवाहमें मूर्तिरूप गंगाजीको दर्शन करे हे तेसें जगत् तथा अपने आत्माकूं अक्षरब्रह्मात्मक जानिवेवारो ज्ञानी अपनेमें परब्रह्मरूप श्रीकृष्णकूं देखे हे क्यों जो अक्षरब्रह्म हे सो पुरुषोत्तमको निवासस्थान हे तासूं निवासस्थानरूप अक्षरब्रह्मके ज्ञानसूं तामें रहिवेवारे पुरुषोत्तमको दर्शन सहजमें होय हे ॥१३॥

अब हीनाधिकारीनकी व्यवस्था कहत हें.

श्लोकः—संसारी यस्तु भजते स दूरस्थो यथा तथा ।
अपेक्षितजलादीनामभावात्तत्र दुःखभाक् ॥१४॥

टीका- संसारी इतने जाकी अहंताममता छूटी नहिं हे एसो संतो जो भजन करे हे सो जेसें गंगाजीतें दूर रह्यो होय ताकूं इच्छित जलप्रभृतिको अभाव होय तासूं दुःखहि भुगतेहे तेसें आप भक्तिमार्गमें रह्यो होय ताकूं साक्षात् स्वरूपसंबंधी अर्थकी अपेक्षा होय ओर मिले नहिं तब क्लेश भुगते हे तथापि याकी सेवाको प्रभूनने अंगीकार कियो होय तासूं भजनकूं छोडे नहिं. ओर प्रभूनने सेवाको अंगीकार कियो न होय तो वीचमें प्रतिबंध होय तोहू जो भजन कियो हे सो तो व्यर्थ होय नहिं तासूं जन्मांतरमें फल होय ॥१४॥

श्लोकः—तस्माच्छ्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः
सर्वलोकतः ।

आत्मानंदसमुद्रस्थं कृष्णमेव विचिंतयेत् ॥१५॥

टीका-अहंताममतात्मक संसारयुक्त भजन करत हे सो क्लेश भुगते हे एसें उपर कह्यो हे तासूं श्रीकृष्णको मार्ग जो पुष्टिमार्ग हे तामें जो रह्यो हे ओर सर्वलोकसूं विमुक्त हे सो आत्माके आनंदरूप समुद्रमें रहे एसे श्रीकृष्णकोहि चिंतन करे. इहां श्रीकृष्णकोहि चिंतन करिवेको लिख्यो हे ताको अभिप्राय एसो हे जो पुष्टिमार्गीय भक्तनको निरवधी आनंद जहां प्रकट होय हे तहां विहार करिवेवारेको चिंतन करनो इतने व्रजभक्तनमें विहार करिवेवारे श्रीकृष्णको चिंतन करिवेतें व्रजभक्तनकीसीनांई लौकिककर्मेतें मनोवृत्ति निकसिकें श्रीकृष्णमेंहि लगे ॥१५॥

श्लोकः-लोकार्थी चेद्भजेत्कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा ।
क्लिष्टोऽपि चेद्भजेत्कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा ॥१६॥

टीका-लौकिक अर्थकी इच्छा राखिकें जो भगवद्भजनमें प्रवृत्त होय हे सो सर्वथा क्लेश पावे हे[1]; इतने कछू लाभके लिये पूजादिकमें प्रवृत होय सो तो पाखंडी ओर देवलक कह्यो

१ उपर जो संसारी (अहंताममतायुक्त) की व्यवस्था लीखी हे सामेहू जो हिनाधीकारीहे ताकीं व्यवस्था याश्लोकमे हे.

जाय हे तासूं लाभपूजार्थयत्न शिवाय जामें निषेध नहिं हे एसी रीतसूं मेरो लौकिक सिद्ध होय एसी इच्छासूं जो भजनमें प्रवृत्त भयो होय सो लोकार्थी कह्यो जाय हे सो श्रीकृष्णको भजन करे तब वाकी उपर प्रभूनको अनुग्रह होय तासूं लौकिकमेंतें आसक्ति छुडायवेके लिये प्रभु उपेक्षा करे तब सब प्रकारसूं क्लेशकूं प्राप्त होय ओर क्लेशकूं प्राप्त तोहू श्रीकृष्णकूं जो भजे हे ताको भीतरको तथा बाहिरको लौकिक आग्रह नष्ट होय जाय. संसारी जो भजे हे ताकी व्यवस्था प्रथम लिखी हे तामें तीन भेद हे. एक तीन प्रकारके संसारकी निवृत्तिकी इच्छावारो, दूसरो लौकिक इच्छायुक्त सेवाको आग्रही; ओर तीसरो सेवाको अनाग्रही एसे तीननकें फल यहां ताँई कहे ॥१६॥

अपनो स्वरूप तथा भगवानको स्वरूप नहिं जानिवेवारे
भक्तहु पुष्टि ओर मर्यादाके भेदसूं दोय प्रकारके हे
विनदोऊनको चित्त चंचल न होयवेके
लिये कहत हें.

श्लोकः—ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गी तिष्ठेत्पूजोत्सवादिषु ॥१७॥

मर्यादास्थस्तु गंगायां श्रीभागवततत्परः ।
अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः ॥१८॥

टीका–अपने स्वरूपको तथा भगवानके स्वरूपको ज्ञान न होय तोहू पुष्टिमार्गीय भक्त हे सो श्रीभागवतमें तत्पर होयकें पूजा तथा उत्सवादिकनमें रहे इतने श्रीभागवत एकादश-स्कंधके उन्नीसमे अध्यायमें श्रीकृष्णने उद्धवजीकों अपने धर्म कहे हे जो मेरो स्मरण करे, ओर सब कार्य मेरे लिये करे, मेरी अमृतरूप कथामें श्रद्धा राखे इत्यादिक धर्म कहे हे तिनमें रहे ओर मर्यादामार्गीय भक्त हे सो तो भगवानके चरणरजके संबंधवारी गंगाजीमें श्रीभागवतमें तत्पर होयकें रहे इतने जहां परीक्षितकूं तथा विदुरजीकूं श्रीभागवततें सिद्धि भई हे तहां रहे ओर पुष्टिमार्गीय भक्तनकों रहिवेके देशको नियम नहिं हे जहां प्रभु अनुग्रह करिकें राखे तहां रहे इतने जहां रहिकें भगवद्भजनादिकमें आछी रीतसूं प्रवृत्ति रहे तामें प्रतिबंधादिक कछु न आवे तहां रहे. १७।१८

मर्यादामार्गीय ज्ञानी ओर भक्त होय तिनकी उपर प्रभु विशेष अनुग्रह करे तो मर्यादामार्गीय ज्ञानी तथा भक्त ये दोऊ पुष्टिमार्गकूं प्राप्त होयकें पुष्टिमार्गीय भक्तिकूं प्राप्त होय हें सो कहत हें.

श्लोकः–उभयोस्तु क्रमेणैव पूर्वोक्तैव फलिष्यति ।
ज्ञानाधिको भक्तिमार्ग एवं तस्मान्निरूपितः ॥१९॥

टीका–मर्यादामार्गीय ज्ञानी तथा मर्यादामार्गीय भक्त होय तिनको पुष्टिमार्गमें अंगीकार होयगो तो क्रमसूं मानसी

सेवाको फल मिलेगो ओर जो मर्यादामें अंगीकार होयगो तो सायुज्यमुक्ति मिलेगी. एसें भक्तिमार्ग हे सो श्रीपुरूषोत्तमकी प्राप्ति करिवेवारो हे तासूं ज्ञानमार्गसूं उत्तम हे सो गंगाजीके दृष्टांतसूं निरूपण कियो हे, इतने लोकमें कितनेक कहत हें जो भक्तिसूं ज्ञान मिले ओर ज्ञानसूं मुक्ति मिले परंतु आत्मा तथा अक्षरब्रह्मकी एकताको ज्ञान तथा सब जगत् अक्षरब्रह्मरूप हे एसे जाननो सो ज्ञान कह्यो जाय हे सो ज्ञान होय तोहू श्रीपुरुषोत्तमको संबंध तो अतिदूर रहे हे क्यों जो श्रीपुरुषोत्तम तो अक्षरातीत हे तासूंहि गीताजीके वारमें अध्यायमें लिख्यो हे जो अक्षरकी उपासनावारेनकों क्लेश अधिक हे ओर 'जो सवकर्मनको मेरेमें अर्पण करिकें मेरे परायण होयकें मेरी उपासना करत हें तिनको उद्धार में शीघ्रहि करूंहूं" एसें श्री कृष्णनें कह्यो हे तासूं ज्ञानसूं अधिक भक्ति मार्ग हे१९

गंगाजीको दृष्टांत दियो हे ताको दूसरो तात्पर्य कहत हें.

श्लोकः—भक्त्यभावे तु तीरस्थो यथा दुष्टैःस्वकर्मभि।
अन्यथाभावमापन्नस्तस्मात्स्थानाच्च नश्यति ॥२०॥

टीका—गंगाजीके तीरमें रह्यो होय ओर अपने दुष्टकर्मन-करिकें विपरीतभावकूं प्राप्त भयो होय सो जेसें वास्थानसूं नष्ट होय हे तेसें भक्तिको अभाव होय तो भगवानके संनिधानवारे देशमें रहत होय तोहु अपने दुष्टकर्मनकरिकें पापंडिपनेकूं प्राप्त भयो होय सो आरूढपतित होय हे; इतने जेसें कोऊ उंचे

स्थलपें चढिकें गिरे हे तेसें भक्तिमार्गमें आयो होय ओर भक्ति न होय तासूं दुष्ट कर्मनसूं पाषंडी होयकें वामार्गतें भ्रष्ट होय हे ॥२०॥

एसें भक्तिको अवश्यपनो निरूपणकरिकें उपसंहार करत हें.

श्लोकः--एवं स्वशास्त्रसर्वस्वं मया गुप्तं निरूपितम् ।
एतद्बुध्वा विमुच्येत पुरुषः सर्वसंशयात् ॥२१॥
इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता सिद्धांतमुक्तावली समाप्ता ॥

टीकाः--एसें अपने शास्त्रको सर्वस्व जो गुप्त हतो सो मेने निरूपित कियो हे. ये जो निरूपित कियो हे ताकूं जानिकें पुरुष सबसंशयनसूं मुक्त होय. ॥२१॥

याग्रंथमें इतनो सिद्धभयो जो तनुजा तथा वित्तजा सेवाहि प्रथम साधन हे सो यथार्थ बने तो प्रभुमें चित्त लीन होयजाय ऐसी मानसी सिद्ध होय तब प्रभुसंबंधीहि सब कामना होय तासूं सब ब्रह्मात्मक हे एसे ज्ञानसूं भगवानमें बुद्धि राखनी ये साधनकी प्रथम (मुख्य) कक्षा हे, यामें अधिकार न होय तो ये मर्यादापुष्ट हे ताकों अक्षरब्रह्मात्मक अपनो स्वरूप हे ओर अक्षरब्रह्ममें श्री कृष्ण विराजत हें एसो ज्ञान जेसें होय तेसो यत्न करनो ये साधनकी द्वितीय (मध्यम) कक्षा हे, यामेंहु जाको अधिकार नहिं हे सो शरीर, पुत्र, धनादिकनमें अभिमान-

वारो संसारी कह्योजाय हे एसो पुरुष सेवा करतो होय तामें भगवानको उपयोगी पदार्थ मिले नहिं तब दुःख पावे तब सेवाहु आछीरीतसूं न बने एसेकों संसारमेंतें आसक्ति छुटवेकेलिये लीलाविशिष्टभगवानको चिंतन करनो ये साधनकी तीसरी-(हीन) कक्षा हे. ओर जाकों लौकिककी इच्छा निवृत्त नहिं होय सो तनुजावित्तजा सेवा करतो होय तब वाकी परीक्षाकेलिये अथवा प्रारब्धभोगकेलिये प्रभु विलंब करे तब लौकिकतें क्लेश होय तोहु भगवत्सेवा छोडे नहिं तो लौकिकासक्ति छूट जाय. एसो जो पुष्टिमार्गीय होय तो श्रीभागवतके पाठ श्रवणादिकमें तत्पर होयकें इच्छानुकूलदेशमें रहिकें पूजोत्सवादिक करनो ओर एसो जो मर्यादामार्गीय होय तो गंगाजीके तीरमें रहिकें श्रीभागवतको श्रवण अथवा पाठ वारंवार करयोकरे ये साधनकी चोथी (अतिहीन) कक्षा हे. ओर जो तनुजावित्तजा सेवा करतो होय तामें भक्तिहु न होय सो पांचमों आरूढपतित कह्योजाय हे. सो वारंवार जन्मकू प्राप्त होयकें संसारको अभिनिवेश शिथिल होय तब मुक्त होय ओर संसारको अत्यंत अभिनिवेश होय तो मुक्तिहु न होय, तासूं संसारावेश छोडिकें भक्तिके लिये तनुजा तथा वित्तजासेवामें यत्न करनों ॥

इति श्रीमद्गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराजविरचिता
सिद्धांतमुक्तावलीभावार्थसंक्षेपटीका संपूर्णा ॥

श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ पुष्टिप्रवाहमर्यादाकी व्रजभाषामें संक्षेपसूं भावार्थटीका लिखी हे ॥

याजगतमें जितने जीव हैं तितने सब चिदंशरूपकरिकें तथा भगवदंशपनेसूं समान हैं तिनमें कितनेकनकों श्रीपुरुषोत्तमकी प्राप्ति होय हे, कितनेकनकों अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति होय हे, कितनेकनकों स्वर्गादिकनकी प्राप्ति होय हे और कितनेकनकों अंधतमकी प्राप्ति होय हे. एसे फलमें भेद क्यों होय हे ? ओर स्वभावमें भेद क्यों हे ? ओर कितनेकनके स्वभावतें विरुद्ध देह तथा क्रिया हे, कितनेकनके स्वभावानुकूल देह तथा क्रिया हे इत्यादिक भेद क्यों हे ? ऐसें संदेहवारेनको संदेह मिटायवेकेलिये विनके उपायभूत मार्ग तथा मार्गको सांकर्य निरूपणकरिवेकेलिये सबनको भेद जानिवेतें सब संदेहनकी निवृत्ति होयगी ऐसें विचारिकें तीनमार्गके भेदको निरूपण करत हें.

श्लोकः—पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक् पृथक् ।
जीवदेहक्रियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च ॥१॥
वक्ष्यामि सर्वसन्देहा न भविष्यंति यच्छ्रुतेः ।

भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः ।२।

टीका-पुष्टि, प्रवाह ओर मर्यादा ये तीनो जूदे जानिवेमें आवे एसे विनके धर्मकरिकें, जीवादिकनके भेदनसूं सृष्टिकी, परंपरा अविच्छिन्न चलीआवेहे ताकरिकें ओर विनकों फल मिले हे ताकरिकें भिन्न भिन्न समझिवेमें आवे तेसें कहूंगो जाके श्रवणतें सब संदेह न होयँगे. इतने विनके धर्म, जीवको स्वरूप तथा देह तथा क्रियाके भेद, तथा सृष्टि तथा विनके फलको ज्ञान होयगो तब सब संदेह निवृत्त होयँगें. यालोककी तथा परलोककी कामना छोडिकें प्रभुमें मन लगावनों सो भक्ति कहिजाय हे सो भक्ति प्रभुनके अनुग्रहसूं मिले हे तासूंहि पंचमस्कंधमें ऋषभदेवजीके चरित्रकी समाप्तिमें कह्योहे जो "मोक्षदेवेवारे भगवान, भजनकरिवेवारेनकों मुक्ति देयँहें परंतु काहुसमय भक्तियोग नहिं देयँ हें" तेसें श्रीदेवकीजीने स्तुति करी तब प्रभूनके माहात्म्यको ज्ञान हतो तासूं सब माहात्म्यको वर्णन कियोतापाछेसुदृढ स्नेह भयो तब माहात्म्यकूं भूलिकें कह्यो जो आपके लिये मेरी बुद्धिमें धैर्य नहि रहेहे में कंससूं डरपूहूं, एसें कह्योहे सो सुदृढ स्नेहको स्वरूप हे. तासूं प्रभूनको जब अनुग्रह होय तब एसी भक्ति मिलेहे वाअनुग्रहको नाम पुष्टि हे. जेसें कोऊने पाप कियो होय ताको निवारण (प्रायश्चित्त) कष्टसूं बने एसो होय परंतु ताके लिये विद्वाननकी सभा भरी होय सो अनुग्रहसूं सुगम प्रायश्चित्त कहे तो

होय सके हे, जेसें कर्ममार्गमेंहु अनुग्रहकी प्रार्थना होय हे सो फल सिद्ध होयवेके लियेहे तेसें सुकर साधनरूप भक्तिमार्ग. श्रीकृष्णभगवाननें उद्धवजीप्रति कह्योहे तासूं ताके मूलभूत पुष्टि हे एसो निश्चय हे ॥ १ ॥ २ ॥

पसें पुष्टिकी विद्यमानताको निरूपण करिकें प्रवाह तथा मर्यादाकी विद्यमानताको निरूपण करत हें.

श्लोक–'द्वौ भूतसर्गौ' वित्युक्तेः प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः।
वेदस्य विद्यमानत्वान्मर्यादाऽपि व्यवस्थिता॥३॥

टीका–गीताजीमें कह्योहे जो "दैव और आसुर ऐसें दोयप्रकारके भूतसर्गहे" तासूं दैव ओर आसुर एसे विभागसूं सृष्टिकी परंपरा अविछिन्न चलीआवेहे ताको नाम प्रवाह हे इतने नदीको प्रवाह जेसें आरंभसूं अंततांई चल्योजाय हे तेसें दैव और आसुर ये दोयप्रकारकी सृष्टिको प्रवाह प्रलयपर्यंत चल्योजाय नहीं तो श्रीकृष्णनें दोऊको विभाग कियोहे सो व्यर्थ होयजाय, तासूं प्रवाहहु रह्योहे ओर कर्म तथा ज्ञानादिकनके प्रकारको जो नियम हे ताको नाम मर्यादा हे सो पूर्वकांड तथा उत्तरकांडरूप वेद जगतमें विद्यमान हे तासूं कर्म तथा ज्ञानादिकनके प्रकारको नियम रह्योहे, तासूं मर्यादाहु रहीहे. यहां एसें समजनो जो भगवानके अनुग्रहप्रयुक्त भक्तिमार्ग जितनेहें तिनसबनको अंतर्भाव पुष्टिमार्गमेंहे तथा यालोक तथा परलोककी कामनावारे जो सृष्टिकी परं-

पराकों नही तोडेहें सो सब मार्ग प्रवाहमें अंतर्भूत हें और जितने मार्ग वेदकी मर्यादाको उल्लंघन नहिं करेहें तितने सब मार्ग मर्यादामें अंतर्भूत हें इतने जगतमें जितने मार्ग हें तिन-सबनको अंतर्भाव इनतीनमार्गनमें हे ॥ ३ ॥

ऊपर कहे एसे तीनो मार्ग विद्यमान हें एसें कहिवेसूं हु तीनों मार्गनको परस्पर भेद सिद्ध नहि होयगो क्योंजो "सब फल भगवानसूंहि होयहे" एसें व्याससूत्रादिकनसूं सिद्ध हें; तासूं दूसरे देवको भजन करिवेवारे प्रवाहमार्गीयहु फलप्राप्ति-केलिये प्रभूनकोही भजन करेहें; क्योंजो ब्रह्मवादकी रीतिसूं चैतन्यमें भेद नहिहें ओर फलतो प्रभूनसूंहि प्राप्त होयहे; तासूं प्रावाहिकहु भक्तहे एसें कहेनों चहियें ओर अनुग्रहप्रयुक्त सब भक्तिमार्ग पुष्टिमार्गमें अंतर्भूत हें एसें उपर कह्योहे सो अनुग्रह सबनकों समान हे; तासूं प्रवाहसूं पुष्टिमार्ग भिन्न नहि होयगो ओर मर्यादा तो वेदोक्त नियमसूं हे तासूं भिन्नहि हें इतने दोऊ मार्ग हे एसें कहेनों चहियें एसी कोऊ शंका करे तहां कहत हें.

श्लोकः-कश्चिदेव हि भक्तो हि "योमद्भक्त" इतीरणात्।
सर्वत्रोत्कर्षकथनात्पुष्टिरस्तीति निश्चयः ॥४॥

टीका-" संतोषवारो, हमेंशां प्रभुमें चित्त जानें जोडयो हे, मन जाके स्वाधीन हे, प्रभु अपने स्वामी हे एसो जाको

दृढ निश्चय हे ओर मेरेमें जाने मन तथा बुद्धि अर्पणकरीहे एसो जो मेरो भक्त हे सो मोकूं प्रियहे " एसें गीताजीमें कह्योहे तामें जो मेरो भक्त हे एसें कहिवेसूं कोईएक भक्त हे एसें जान्योजाय हे जो बहोत भक्त होय तो जो मेरो भक्त हे सो मोकूं प्रिय हे एसें नहिंकहते. ओर गीताजीमें " तपस्वी, ज्ञानी तथा कर्ममार्गीयनसूं योगीकूं अधिक लिखिकें सब योगिनमेंहु जो अंतःकरणपूर्वक श्रद्धायुक्त होयकें मोकूं भजेहे सो अत्यंतयुक्त मान्योहे " एसेंश्रीकृष्णने कह्यो हे. तेसें फिरहु पंचदशम अध्यायमें कह्योहे जो " आछी रीतिसूं मोहरहित जो पुरुष, में पुरुषोत्तम है ताकूं जानेहे सो सबजानिवेवारो हे सो सर्वभावकरिकें मोकूं भजे हें " एसें कह्योके सो सर्वभावसूं भजन पुष्टिमार्गमेंहि हे ओर एसे भजनकों सबस्थलनमें उत्तम कह्यो हे तासूं पुष्टि हे एसो निश्चय हे ॥ ४ ॥

सब मार्गमें जूदे जूदे प्रकारसूं भजन तो रह्योहि
हे, तासूं भजनको प्रकार भिन्न भिन्न हे परंतु
सब भक्तिमार्गहि हे एसें कोऊ कहे
तहां कहत हें.

श्लोकः—न सर्वोऽतः प्रवाहाद्धि भिन्नो वेदाच्चभेदतः।
"यदा यस्येति" वचनान्ना "हंवेदै" रितीरणात्।५।

टीका—उपरके श्लोकमें गीताजीको प्रमाण देकें बहोत भक्त नहिं हे परंतु कोईएक भक्त हे एसें निरूपण कियो हे

तासूं सब, भक्त नहिं हे; तब जामार्गमें ये भक्त हे सो पुष्टि-मार्गहु प्रवाहसूं भिन्न हे एसें अर्थात् सिद्ध होय हे तहां एसी शंका होय जो प्रवाहसूं पुष्टिमार्ग भिन्न हे एसें सिद्ध भयो परंतु पुष्टिमार्गप्रतिपादक जो जो वाक्य हैं सो सो वेद, स्मृति अथवा पुराणादिकनके हैं सो वेदविधिमेंहि आयजाय हे; तासूं मर्यादासूं पुष्टिमार्ग भिन्न नहिंहोयसके हे एसी शंकाकी निवृत्तिकेलिये कहत हैं जो " आत्मासूं जाकी भावना करी हे एसे भगवान जाके उपर अनुग्रह करत हैं सो लोकमें तथा वेदमें लागीरही एसी मतिकों छोडे हैं " एसें श्रीभागवतमें कह्यो हे. तेसें " वेदकरिकें, तपकरिकें, दानकरिकें और ज्ञानयज्ञकरिकेंहु मेरो दर्शन नहिं होयसके हे, ओर अनन्य-भक्तिकरिकें मेरो दर्शन होयसके हे " एसें गीताजीमें कह्यो हे इतने सब स्थलमें पुष्टिमार्गको प्रतिपादन हे तथापि जीवकृत विधिपूर्वक साधननमें पुष्टिमार्गको प्रवेश नहिं हे किंतु भगवानके अनुग्रहरूप हे तासूं वेदके नियमरूप मर्यादासूंहु पुष्टिमार्ग भिन्न हे ॥ ५ ॥

जामें भगवद्भक्ति होय नहिं एसे धर्म, कर्म तथा ज्ञानकी निंदा सर्वशास्त्रमें लिखी हे, परंतु भक्तिसहितकी निंदा नहिं हे तासूं गीताजीमें " निबंधायासुरी मता " इत्यादिक वाक्यनसूं प्रावाहिक जीवनकी निंदा लिखी हे सो भक्तिरहितकी हे भक्तिसहित प्रावाहिक तो दैवीमें गिनेजाय हें तासूं सबमार्ग

भक्तिमार्गके अंगभूत हें एसी मूलमेंहि शंका करिकें समाधान करत हैं.

श्लोकः—मार्गैकत्वेऽपि चेदन्त्यौ तनू भक्त्यागमौ मतौ।
न तद्युक्तं सूत्रतो हि भिन्नो युक्त्या हि वैदिकः।६।

टीका—भक्तिमार्ग एकहि हे ओर प्रवाह तथा मर्यादा, भक्ति के अंगरूप हे ओर भक्तिकी प्राप्तिके साधनरूप हे, एसें शास्त्रमें मान्यो हे एसें वादी कहे तहां कहत हें जो एसें कहेनों युक्त नहिं हे क्यों जो भक्तिमार्गमें प्राप्तहोयवेयोग्य श्रीपुरुषोत्तममें निष्ठावारेकूं अमृतपनो होय हे एसें श्रीभागवतादिकमें कह्यो हे" एसें भक्तिसूत्रमें लिख्यो हे तेसें जैमिनीयसूत्रमें हु लिख्यो हे जो ज्योतिष्टोमादिकयज्ञरूप कर्म, स्वर्गादिकफलकूं उत्पन्न करिकें निवृत्त होंय हे; तासूं सो कर्म, भक्तिके अंगभूत होयसके नहिं तेसे ज्ञानमार्गहु मोक्षरूपफलकूं प्राप्त करे हे भक्तिकूं प्राप्त नहिं करे हे एसे व्याससूत्रमें लिख्यो हें सो भक्तिके अंगभूत नहिं होयसके हे, तासूं वैदिकमार्ग भिन्न हे ओर अनुग्रहप्रेयुक्त मार्ग भिन्न हे तेसें दैवसर्गरूप प्रवाहहु मोक्षफल देवेवारो हे ओर आसुरसर्गरूप प्रवाह बंधनकरिवेवारो हे सो भक्तिके अंगरूप होयसके नहिं. तेसें प्रवाहमार्ग भक्तिके अंगरूप होय तो श्रीकृष्णभगवाननें दैवीसंपत्तिको भावकहिकें आसुरीसंपत्तिको भाव कह्यो हे सो

नहिं कहते तेसें गीताजीमें द्वादशाध्यायमें कह्यो हे जो अक्षरब्रह्मके उपासकनकों क्लेश अधिक हे ओर पूर्णपुरुषोत्तमके उपासनको उद्धार प्रभु शीघ्रहि करे हें तेसें श्रीभागवतदशमस्कंधमें कह्यो हे जो "श्रीयशोदानंदन श्रीकृष्ण भक्तिवारेनकों सुखसूं जेसें प्राप्त होय तेसें देहीनकों तथा आत्मारूपनाववारे ज्ञानीनकों सुखसूं प्राप्त नहि होय हे" इत्यादिक युक्तीनकरिकेंहु पुष्टिमार्गसूं प्रवाहमार्ग तथा मर्यादामार्ग भिन्न हे ॥ ६ ॥

पसें प्रवाह तथा मर्यादामार्गतें पुष्टिमार्ग
भिन्न हे सो सूत्र तथा युक्तिसूं सिद्ध
करिकें विनके जीव, देह तथा
कृतिके भेदको निरूपण करत हें.

श्लोकः—जीवदेहकृतीनां च भिन्नत्वं नित्यता श्रुतेः ।
यथा तद्वत्पुष्टिमार्गे द्वयोरपि निषेधतः ॥७॥
प्रमाणभेदाद्भिन्नो हि पुष्टिमार्गो निरूपितः ।

टीका—प्रवाहमार्गवारे जीव आसुर हें, विनके देह भगवद्भजनसूं प्रतिकूल हें, विनकी क्रिया स्वार्थकेलिये दूसरेकों दुःख देवेकी हे, ओर मर्यादामार्गीय जीव दैव हें, विनके देह वैदिकधर्म तथा भगवत्पूजादिक शास्त्रोक्तधर्ममें अनुकूल हें, विनकी कृति अग्निहोत्रादिकश्रौतस्मार्त्तकर्मकरिवेकी तथा ज्ञानादिकके अनुकूल त्यागादिककरिवेकी हे, ओर पुष्टिमार्गीय

जीव हैं सो दैव[1] हैं तथापि भगवानके अनुग्रहविशिष्ट हैं, विनके देह भगवत्सेवामें अनुकूल तथा भगवत्स्वरूपमेंहि आसक्त, विनकी कृति लोकिकवैदिकफलनको इच्छारहित होयकें भगवत्सेवाकरिवेकी तथा साक्षात्पूरूषोत्तमसंबंधि फलमिलवेकी हे. एसें तीनोनके जीव, देह तथा कृति जेसें भिन्नभिन्न हे तेसें श्रुतिके प्रमाणसूं ब्रह्मवादमें जीवनकी नित्यता हे, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैतमार्गमें अनित्यता हे ओर मायावादमें मायिकत्व हे. यद्यपि एसें अपनेअपने मतके अनुसार सबजीवनकूं सब समानहि माने हें तथापि " भगवानको कीर्तनकरिवेवारे जीव ध्रुव (नित्य) हें " एसें श्रुतिमें लिख्यो हे ओर जेसें भक्तिवारेनकों भगवान् सुखसूं प्राप्त होय हें, तेसें ओरदेहीनकों तथा ज्ञानीनकों प्राप्त नहि होय हे एसें श्रीभागवतमें लिख्यो हे; तासूं प्रवाही तथा ज्ञानीनको निषेधकरिकें जिनकों जिनकों सुखसूं प्राप्त होय हे एसें लिख्यो हे तासूं अनुग्रह विशिष्ट पुष्टिमार्गीय जीव भिन्न हें एसो सिद्ध होय हे एसें प्रमाणके भेदसूं पुष्टिमार्ग भिन्न निरूपितकियो हे वाहि रीतिसूं प्रवाह ओर मर्यादाकोहु भेद समजनो ॥ ७ ॥

अब प्रमाणबलकरिकें तथा साधनके भेदकरिकें तीनो मार्गनको भेद सिद्धकरिवेकेलिये उपर बताये एसे

---

१ मर्यादामार्गीय जीव्हु दैव हें परंतु विधिके आधीन हें ओर पुष्टिमार्गीय जीव हें सो भगवानके अनुग्रहके आधीन हे.

जीवादिकनके भेदयुक्त अविच्छिन्नसर्गको
जो भेद हे ताकरिकें पुष्टिको भेद
सिद्धकरिवेकेलिये सामान्यसूं
सर्गके भेदको निरूपण करत हें.

श्लोक—सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगक्रियायुतम् ॥८॥
इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः ।
वचसा वेदमार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः ॥९॥

टीका—स्वरूप, अंग ओर क्रियायुक्त सृष्टिको भेद कहूंगो इतने जीव, देह ओर कृतिकरिकें युक्त सर्गको भेद कहूंगो. जिनको सर्वदा एकीभाव हे एसे हरि जो भगवान् हें सो इच्छामात्रसूं मनकरिकें प्रवाहमार्गकूं, वचनकरिकें वेदमार्ग (मर्यादामार्ग)कूं ओर कायाकरिकें पुष्टिमार्गकूं सृजतभयेम इतनें एकादशस्कंधमें वैकारिक अहंकारके कार्यरूप मनसूं सृष्टि भई हे एसें लिख्यो हैं तेसें वेदमेंहु मनसूं सृष्टि भई हे एसें लिख्यो हे सो प्रवाहसृष्टि हे तामें मायाहु संग कारणभूत हे सो आसुररूपमायिकसृष्टि हे वासृष्टिके अभिप्रायसूं हि जगत् मायिक हे एसें कितनेक माने हें, वचनसूं मर्यादासृष्टि भई हे सो मांडूक्यउपनिषदमें लिख्यो हे जो " ॐकारसूं हि सबनकी उत्पत्ति हे. भूत, भविष्यत् ओर वर्तमान जो कछु हे सो सब ॐकारकोहि उपव्याख्यान हे, " तेसें एकादश-स्कंधमेंहु परा, पश्यंती, मध्यमा ओर वैखरी ये चारोप्रकारकी

वाणीकी उत्पत्ति लिखिकें तासूंहि जगतकी उत्पत्ति लिखी हे सो प्रभुकी वाणी वेदरूप हे ओर वेद हे सो साक्षात्नारायण हे तासूं वेदसूं सृष्टि भई हे सो मर्यादामार्गकी सृष्टि हे ओर पुरूषविधब्राह्मणकी श्रुतिमें " एक आत्माके दो विभाग किये तामेंसूं पति ओर पत्नी भये " एसें लिख्यो हे, तासूं आनंदात्मक स्वरूपसूंहि अनेकप्रकारके भये सो कायासूं सृष्टि भई हे सो पुष्टिसृष्टि हे. इतने प्रभूनकों वीररसको अनुभवकारिवेकी इच्छा भई तब अपनों अंश होय सो अपनी विरुद्ध होय नहिं तासूं मायामेंसूं आसुरीजीव उत्पन्न किये सो प्रवाहसृष्टि भई. तथा जीवनके दुःखकी निवृत्तिकेलिये वेदमार्ग प्रकट कियो तामें प्रीतिवारे जीवःअक्षरब्रह्मसूं भये सो मर्यादासृष्टि भई, ओर जीवनको भजनानंदको दानकरिवेकेलिये अपने आनंदात्मकस्वरूपसूं जीव उत्पन्न किये सो पुष्टिसृष्टि भई; अर्थात् प्रावाहिकसृष्टि प्रभुके मनतें मायासूं उत्पन्न भई हे[1] तथा मर्यादासृष्टि प्रभुके मनःपूर्वक वचनतें अक्षरब्रह्मसूं[2] भई हे ओर पुष्टिसृष्टि प्रभुके मन तथा वचनपूर्वक स्वरूपसूं भई हे. एसें तीनोप्रकारकी सृष्टि प्रभूनने करी हे. ॥ ८ ॥ ९ ॥

प्रावाहिकसृष्टिको उपादानकारण माया हे तथा मर्यादा-

---

१ सहज आसुर तथा आसुरावेशी एसे दोय प्रकारकें प्रावाहिक जीव हें तिनमें आसुरावेशी मुक्त होय हें ओरसहज आसुर हे सो अंधतममें जायहें.

२ संकर्षणहें सो वेदरूप हें और शब्दब्रह्म तथा अक्षरब्रह्म संकर्षणकोहि स्वरूपहे तासू अक्षरब्रह्मसू सृष्टि हे सो वेदसूंहि सृष्टि भई हे एसे समजनो.

सृष्टिको उपादानकारण अक्षरब्रह्म हे ओर पुष्टिसृष्टिको उपादानकारण प्रभुको स्वरूप हे, एसें तीनो सृष्टिको उपादानकारण भिन्नभिन्न हे तथापि जेसें ताम्र, रूप्य ओर सुवर्णरूप भिन्नभिन्न उपादानकारणसूं तीन घट भये होय परंतु जलल्यायवेरूप कार्य तो तीनो घटको समान होयहे और व्रीहि तथा यवके पुरोडाशसूं यज्ञ तथा फल समानहि होयहे तेसें तीनोसृष्टिकों फल समानहि होयगो एसी कोउ शंका करे तहां कहतहें.

श्लोक—मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च।
कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकधा।१०।

टीका—अविछिन्न सृष्टि चलीजाय एसी मूलइच्छासूं प्रावाहिकजीवनकों लौकिक फल होयहे तामें सहजआसुरजीव हें सो जन्ममरण लेतेंलेतें छेवट अंधतममें जायहें ओर आसुरावेशी हें सो कामनामें आसक्त होयकें धूममार्गमें यज्ञादिक करिकें आवागमन करतकरत आसुरावेश मिटजाय तब मुक्त होयहें तथा मर्यादामार्गीयजीवनकों वेदमें कह्योहे सो फल मिले हे तामें निष्काम यज्ञादिककरिवेवारेनकों आत्मसुख मिले हे ओर सकामकरिवेवारेनकों स्वर्गादिकलोकको सुख मिलेहे ओरपुष्टिमार्गीयजीवनकों प्रभूनके स्वरूपकरिकें फल मिलेहे इतने वेणुगीतमें श्रुतिरूपाश्रीगोपीजननें इंद्रियवारेनकों

भजनानंदरूप जो उत्तम फल कह्योहे सो फल मिलेहे एसें भिन्नभिन्न इच्छाहे तथा फलकोहू भेदहे तासूं एकप्रकारकी सृष्टि तथा एकप्रकारके मार्ग नहिंहे. मूलमें "नैकता" एसोहू पाठहे ताको अर्थ एसोहे जो सर्ग तथा मार्गनकी एकता नहिंहे. ॥ १० ॥

तीनो मार्गनके जीवनकों चिद्रूपपनो समान हे तथापि तीनोनके जूदे जूदे धर्म हे तासूं फलमें भेद है एसें सिद्ध करनो हे तामें प्रावाहिकजीवनको धर्म अत्यंत भिन्न हे तासूं प्रथम प्रावाहिकनको निरूपक करत हैं.

श्लोकः—" तानहं द्विषतो " वाक्याद्भिन्ना जीवाः प्रवाहिणः ।
अत एवेतरौ भिन्नौ सांतौ मोक्षप्रवेशतः ॥११॥

टीका—गीताजीमें कह्योहे जो द्वेषकरिवेवारे क्रूर वे प्रवाही हैं; मनुष्यनमें अधम, अशुभ तिनप्रवाहीनकों में संसारमें सर्वदा आसुरीयोनिमें डारूं हूं " एसें कह्योहे तासूं प्रावाहिक जीव मर्यादामार्गीयतथा पुष्टिमार्गीयजीवनसूं भिन्न हैं; इतनें भगवानको द्वेष करनो येहि जिनको धर्म हे सो आसुरीजीवहें तिनको अंतमें अधतममें प्रवेश हे. एक मूलरूप तथा अवताररूपको द्वेष, दूसरो विभूति प्रभृतीनको द्वेष ओर तीसरो जगद्रूपको द्वेष एसें तीनप्रकारको भगवानको द्वष हे, तामें मूलरूप तथा अवताररूपको

द्वेष करिवेवारेनकों बहोतकरिकें भगवान्हि मारेहें तासूं मुक्त होय हें, तथा विभूत्यादिकके द्वेषकरिवेवारे द्वेषको त्याग करे तब मुक्त होय, ये दोय आसुरावेशी हें. ओर जगद्रूपको द्वेषकरिवेवारे सहजआसुर हें सो कौउदिन मुक्त नहोय विनको अंधतममेंहि प्रवेश होय हे क्यों जो जगतके द्वेषकरिवेमें भगवद्भक्तनकोहू द्वेष होय हे; तासूंहि दशमस्कंधमें अक्रूरजीने धृरातष्ट्रकूं कह्यो हे जो " अधर्मकरिकें जाको पोषण करेहे सो पोषणकरवेवारेकों छोडतहें " ताको श्रीसुबोधिनीजीमें निर्णय कियोहे जो प्राण, स्त्री, पुत्रादिकको अधर्मसूं पोषण कियो होय सो सब, वाकों छोडदेत हें ओर केवल जीव अंधतममें जायहे एसेद्वेषकरिवेवारे प्रवाहिजीव हें. तासूंहि मर्यादामार्गीय तथा पुष्टिणार्गीय जीव हें सो भिन्नहें ओर मर्यादामार्गीय जीवनकों अक्षरब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्ष होय हे तथा पुष्टिमार्गीय जीवनकों पुरुषोत्तमभें प्रवेश होय हे तासूं ये अंतसहित हें; इतने विनदोऊनको जीवभाव निवृत्त होय हे. ॥ ११ ॥

एसें तीनोमार्गनके लक्षण तथा फलके
भेदको निरूपण कियो ताकरिकें
जो सिद्ध भयो सो कहत हें.

श्लोकः—तस्माज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः।
भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत् ॥१२॥

टीका—तासूं पुष्टिमार्गीय जीव हें सो दूसरे मार्गनके

जीवसूं भिन्न हैं वामें संयम नहिं हे इतने वाराहपुराणमें कह्यो हे जो "ब्रह्माजीकी सृष्टिसूं जूदी ये सृष्टि कोउ अन्यहि हे" एसो वाक्य हे तासूं पुष्टिमार्गीय जीव सबनसूं भिन्नहि हैं. जो पुष्टिमार्गीय जीव भिन्न न होय तो भगवद्रूपकी सेवाकेलिये पुष्टिमार्गीयकजीवन सृष्टिहु न होय. इतने "प्रभु अकेले आत्मरमणमेंहि हते तब बाहिर कोऊ नहिं हतो तासूं रमण नहिं करत भये क्यों जो अकेले हते तब रमण नहिं करत हते सो (रमणकरिवेके लिये) दूसरेकी इच्छाकरतभये" एसे श्रुतिमें कह्यो हैं; तासूं इच्छाकरकें सबजगद्रूप भये हैं; सो न होते; अर्थात् नामसेवा तो मर्यादासृष्टिहु करत हे परंतु रूपसेवा वासूं बरावर नहिं होय सके तासूं रूपसेवाके लियेहि पुष्टि-सृष्टि हे सो प्रवाह ओर मर्यादासूं भिन्न न होय तो पुष्टिसृष्टि करिवेको जो प्रयोजन हतो सो सिद्ध न भयो तब पुष्टिसृष्टिहु न होय तब रमणकरिवेके लिये प्रभु जगद्रूप भयें हैं एसें श्रुतिमें कह्यो हे सो व्यर्थ होय; तासूं प्रभूनके रमणार्थ या पुष्टिसृष्टि हे सो सबनसूं भिन्न हे. ॥१२॥ एसें सृष्टिके भेदसूं सबनके साधन भिन्नभिन्न हे तासूं एकदूसरेके साधन मिल नहिंजाय हैं तोहु लीलासृष्टिमें उत्पन्नभये एसे भक्तनके स्वरूप, देह तथा क्रियामें कछु तारतम्य नहिं दिखवेमें आवत हे; तब उपर जो सृष्टिप्रभृतीनको भेद सिद्ध कियो हे सो व्यर्थ हे एसी कोहुकों शंका होय ताकी निवृत्तिकेलिये तारतम्य कहत हैं.

श्लोक—स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा॥१३॥
तथाऽपि यावता कार्यं तावत्तस्य करोति हि ।

टीका—भक्तनके स्वरूप, देह अथवा क्रियानमें स्वरूपकरिकें अवतारकरिकें, चिह्नकरिकें ओर गुणकरिकें भगवानसूं यद्यपि तारतम्य नहिं हे तथापि जितने तारतम्यसूं रमणात्मक कार्य सिद्ध होय तितनो भक्तनमें तारतम्य भगवान् करें हैं इतनें भगवान् जेसें आनंदरूप रसघन हैं तेसें भक्तहु हैं, जेसें अलौकिकरीतिसूं शुद्धसत्वमेंहि भगवानको अवतार होय हैं तेसेंहि भक्तनको अवतार हे, जेसें ध्वजा, वज्र, यव, अंकुश, कमलप्रभृति भगवानके चिह्न हैं तेसेंहि भक्तनके हैं, जेसें भगवानके ऐश्वर्यादिक ओर सौकुमार्यादिक गुण हैं तेसेंहि भक्तनके हैं; तासूं इनसबधर्मनकरिकें भगवानके स्वरूपसूं भक्तनके स्वरूपमें तथा भगवानके देहसूं भक्तनके देहमें तथा भगवानकी क्रियासूं भक्तनकी क्रियामें तारतम्य नहि हैं अर्थात् भगवानके समानहि हैं तथापि जितने तारतम्यकरिकें सबप्रकारकी लीला सिद्ध होय तितनो तारतम्य भगवान् भक्तनमें करत हैं ॥ १३ ॥

एसें स्वभावके भेदप्रभृतिसबसंदेहनकुं दूरिकरिकें कितनेकनकों भगवाननें कहेभये भक्तिमार्गमें प्रवृत्ति होय हैं, कितनें-

कनकों भगवाननें कहेभये ज्ञानमार्गमें प्रवृत्ति होय हैं ओर कितनेकनकों भगवाननें कहेभये कर्ममार्गमें प्रवृत्ति तथा आसक्ति होय हैं तामें हु कितनेकनकों शास्त्रमें करिवेको लिख्यो हे तासूं यामें अवश्य प्रवृत्ति करनीचहियें एसें शास्त्र-विधिके बलसूं प्रवृत्ति होय हे ओर कितनेकनकों स्नेहसों प्रवृत्ति होय हे तेसें कितनेंकनके स्वभावसूं विरूद्ध देहादिक होय हैं ओर कितनेंकनकूं स्वभावके अनुकूल देहादिक होय हैं, सो क्यों हैं? इत्यादिकसंदेहनकूं मिटायवेकेलिये पुष्टि-जीवनको विभाग कहत हैं.

श्लोकौ—ते हि द्विधा शुद्धमिश्रभेदान्मिश्रास्त्रिधा पुनः ॥१४॥

प्रवाहादिविभेदेन भगवत्कार्यसिद्धये ।
पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारताः ॥१५॥
मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णाऽतिदुर्लभाः ।

टीका—शुद्धपुष्ट ओर मिश्रपुष्ट एसे भेदसूं वे पुष्टजीव दोय प्रकारके हैं तामें फिर भगवानके कार्यकी सिद्धिकेलिये प्रवाहादिकके भेदकरिकें मिश्रपुष्ट तीनप्रकारके हैं तामें पुष्टि-करकें मिश्र जो पुष्टजीव हैं सो सर्वज्ञ हैं अर्थात् भगवानके अभिप्रायकूं जानिवेवारे हैं तथा प्रवाहकरिकें मिश्र पुष्टजीव हैं

सो क्रियामें प्रीतिवारे हैं ओर मर्यादाकरिकें मिश्र जो पुष्टजीव हैं सो भगवानके गुणकूं जानिवेवारे हैं अर्थात् भगवानके गुणनमेंहि आसक्त रहे हैं एसें मिश्रपुष्टके तीन भेद हैं ओर शुद्धपुष्ट हैं सो केवल प्रेमकरिकें हैं; अर्थात् शुद्धपुष्टजीवनकों भगवानमें अत्यंत प्रेम होय हैं एसे भक्त अतिदुर्लभ हैं इतने मिश्रपुष्ट तथा शुद्धपुष्ट एसें दोप्रकारके पुष्टजीव हैं तामें मिश्रपुष्टके मुख्य तीन भेद हैं अर्थात् जिनके ऊपर अनुग्रह हे एसेजीवऊपर दूसरो अनुग्रह मिले तब ये पुष्टिमिश्र पुष्टजीव[1] कहेजाय हैं, तथा अनुग्रहयुक्त जो जीव होंय सो शास्त्रोक्त-ज्ञानादिकमर्यादामें प्रीतिवारे होंय सो मर्यादामिश्र पुष्ट कहेजायहें ओर प्रवाहकरिकें मिश्रित जो पुष्टजीव हैं सो क्रियामेंहि प्रीतिवारे होय हैं अर्थात् पंचरात्रादिकतंत्रनमें जो पूजाको प्रवाह कह्योहे वाहिप्रकारसूं पूजादिकक्रियाकरिवेमें प्रीतिवारे जो जीव हैं सो प्रवाहमिश्र पुष्ट कहेजाय हैं इतनें प्रथमसूं सामान्यरीतिसूं जिनजीवनके[2] ऊपर अनुग्रह होय हे सो फिर विशेषानुग्रहकों प्राप्त होय हैं सो पुष्टिमिश्र पुष्टिजीव जाननें सो भगवानके अभिप्रायताईं सब जानिवेवारे होय हैं ओर पुष्टिजीव मर्यादामिश्रित होय सो भगवानके धर्म

---

१ पुष्टिमिश्र पुष्टिजीवनकों तो भगवानको अनुग्रह मिले एसे हि कार्यनमें प्रवृत्ति होय हे. २ इहांसूं श्रीकल्याणरायजीकी टीकाके अनुसार जीवनके भेद लिखे हैं.

जानिवेवारे होय हैं तथा पुष्टिजीव प्रवाहमिश्रित होंय सो भगवद्धर्मकूं कछूक जानिकें तीर्थाटनपरायण होंय हैं, प्रवाहिजीव पुष्टिमिश्रितहैं सो भगवानके भजनके अनुकुल क्रियाकूं अनुसरिवेवारे होय हैं तथा प्रवाहिजीव मर्यादामिश्रित हैं सो कर्मकरिवेवारे होय हैं और प्रवाहिजीव प्रवाहमिश्रित हैं सो केवल लौकिककियामें प्रीतिवारे होय हैं; वेहि आसुरीजीव कहेजाय हैं ओर मर्यादामार्गीयजीव पुष्टिमिश्रित हैं सो भगवानके माहात्म्यकूं जानिकें भगवानकी प्रीतिके लिये कर्मकरिवेवारे होंय हैं तथा मर्यादामार्गीयजीव मर्यादामिश्रित हैं सो स्वर्गादिकफलके लिये कर्मकरिवेवारे होय हैं और मर्यादामार्गीयजीव प्रवाहमिश्रित हैं सो लौकिकफलके लिये कर्मकरिवेवारे होय हैं एसें मिश्रजीवके नव भेद हैं. ओर अत्यंत प्रेमकरिकें भगवान्शिवाय अन्यस्फूर्तिरहित हैं सो शुद्धपुष्ट जीव हैं एसे भक्त अति दुर्लभ हैं. भगवानके रमणको पात्र यह जगत् हे तासूं रमणरूप भगवानको कार्य सिद्धहोयवेकेलिये एसे जूदेजूदे प्रकारके जीवनकी सृष्टि हे; वयों जो विचित्रताविना रमण सिद्ध होय नहिं तासूं विचित्रजीवनकी सृष्टि करी हे ॥ १४ ॥ १५ ॥

एसें जीवनमें जूदे जूदे भेद हैं तासूं विनके देह तथा क्रियादिकनमें हु जूदो जूदो भेद दीखवेमें आवे हे तिनमें पुष्टिजीवनको फल कायाकरिकें हे एसें प्रथम निरूपण कियो

हे तामें कितनेकभक्तनकूं भगवानकी बाल्यावस्थाको सुख मिले हे, कितनेंकनकू पौगंडावस्थाको सुख मिले हे ओर कितनेंकनकों किशोरादिकअवस्थाको सुख मिले है एसें शुद्ध-पुष्टनकों हु जूदेजूदेप्रकारको फल दीखवेमें आवे सो शुद्ध-पुष्टिभक्तनकों जूदोजूदो फल क्यों होय ? एसी शंका मिटायवेकेलिये कहत हे.

श्लोकः—एवं सर्गस्तु तेषां हि फलं त्वत्र
निरूप्यते ॥१६॥

भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद्भुवि ।
गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत् ॥१७॥

टीका—एसें जीवनको सर्ग जूदोजूदो हे तामें पुष्टिमार्गीयके जीवनके फलको निरूपण करत हें जो पुष्टिमार्गमें गुण ओर स्वरूपके भेदकरिकें भगवान् जेसें प्रकट होय तेसें पुष्ट जीवनको फल होय. इतने भगवानके स्वरूपहीमें आसक्ति-वारे जो पुष्टजीव जीव हें तिनके हृदयमें अथवा गृहमें अथवा वृंदावनादिकस्थानमें इनकूं अपने स्वरूपको आनंद देवेकेलिये बाल्यकैशोरादिकअवस्थायुक्तस्वरूपकरिकें भगवान् जेसे प्रकट होय हे तेसो सुख तिनकों प्राप्त होय हे परंतु सबपुष्टिभक्तनकूं भगवानके स्वरूपात्मकहि फल

मिले हे ॥ १६ ॥ १७ ॥

एसें पुष्टिमार्गको फल अन्यमार्गके फलमें नहिं मिले हे एसें सिद्ध कियो; अब मिश्रपुष्टजीवनमें कोउस्थलमें शाप भयो होय एसो दीखयेमें आवे हे सो गर्भस्तुतिमें कह्यो हे जो "ज्ञानामार्गीय जीव जैसे उत्तमपदकूं चढिकें फिर वहांसूं गिरत हें तेसें आपके भक्त कबहू नहिं गिरत हें" एसें लिख्यो हे तब पुष्टिमार्गीयजीवनकों शाप होयकें गिरनों योग्य नहिं हें तासूं क्यों गिरत हें ? एसी शंका होय तहां कहत हें ॥

श्लोकः—आसक्तो भगवानेव शापं दापयति क्वचित्।
अहंकारेऽथवा लोके तन्मार्गस्थापनाय हि॥१८॥

टीका—मिश्रपुष्टजीवनकों अन्यमें आसक्ति होय अथवा अहंकार होय तो कोउसमय भगवानहि शाप दिवावें हें तेसें कोउसमय लोकमें मर्यादाको स्थापन करिवेकेलियेहु भगवान् शाप दिवावे हें; इतनें जेसें नलकूबर तथा मणिग्रीवकूं अप्सरामें आसक्ति भई तब नारदद्वारा शाप दिवायो तेसें चित्रकेतुकूं तथा परीक्षितकूं अहंकार भयो तब चित्रकेतुकूं पार्वतीद्वारा परीक्षितकूं शमीकके पुत्र शृंगीद्वारा शाप दिवायो ओर इंद्रद्युम्नराजाने अगस्त्यमुनि आये तब अभ्युत्थानादिक कियो नहिं तब लोकमें मर्यादाको स्थापन करवेकेलिये अगस्त्यद्वारा

शाप दिवायो एसें जहां मिश्रपुष्टजीवनकों शापादिक होय हैं भगवानहि तिनकों दंड दिवायकें फिर पुष्टिमार्गहिमें स्थापन करे हैं अथवा लोकमें मर्यादाको अतिक्रम न होय तासूं हु शापदिवावे हैं ॥ १८ ॥ मिश्रपुष्टनकों भगवानहि शाप दिवावे हैं एसें क्यों जानियें ? एसी शंका होय तेहां कहत हैं ॥

श्लोकः—न ते पाषंडतां यांति नच रोगाद्युपद्रवाः ।
महानुभावाःप्रायेण शास्त्रं शुद्धत्वहेतवे ॥१९॥

टीका—जिनकों शाप होय शो भक्त पाषंडी नहिं होय हैं किंतु अत्यंत भक्त होय हैं तासूंहि भगवाननेहि दंड दियो हे एसें जाननों तेंसें विनकूं रोगादिक उपद्रव नहिं होय हैं बहुतकरिकें महानुभाव होय हैं तासूं अन्यकेलिये भगवान् भक्तनकों दुःख देय हैं येदोषहु नहि हे तथापि केवल अल्प-कारणमें इतनो दंड देनो सो प्रभु कृपालु हैं तासूं विनकूं योग्य नहिं हैं एसें कोउ कहें तहां कहत हैं जो भगवान् शाप दिवावें हैं सो मिश्रपुष्टकों शुद्धपुष्ट करिबेकेलिये दिवावे हैं. जो एसें भगवान् शाप दिवावें नहिं तो मिश्रपनेकी निवृत्ति होय नहि तब शुद्धपुष्टपनो होय नहिं तासूं शुद्धपुष्टपनो करवेकेलिये शाप दिवावे हैं तामें विनकों फलदेवेकी कृपाहि कारण हैं ॥ १९ ॥

मिश्र पुष्टभक्तनमें जिनको शुद्ध करिवेकी इच्छा
हे विनकों उत्तम कहने चहियें तब एसेकूं
एसो भाव क्यों भयो ? एसें कोउ कहे
तहां कहत हैं

श्लोकः—भगवत्तारतम्येन तारतम्यं भजंति हि ।

टीका—भगवान् अनंतरूप हैं तासूं जा भगवत्स्वरूपमें भक्तिवारे मिश्रपुष्ट होंय वास्वरूपमें जितनों तारतम्य होय तितनो तारतम्य भुगतें इतनें व्यूहमें, कलामें, आवेशमें ओर पूर्णमें जिनमें विनकी भक्ति होय तिनसबनके तारतम्यसूं मिश्रपुष्टभक्तकोहु तारतम्य होय हे. तासूंहि संकर्षणके उपासक चित्रकेतु पार्वतीके शापसूं वृत्रासुर होयकें इंद्रसामें युद्ध करते हते तब वाने संकर्षणके चरणमेंहि मनको निवेश कियो हतो, ओर इंद्रद्युम्नराजा निर्गुणस्वरूपके उपासक हते, सो अगस्त्यमुनिके शापसूं गजेन्द्र भये, तबदु स्तुतिमें निर्गुणकोहु वर्णन कियो हे, तेसें भगवानको स्वरूप तथा विनके भजनके प्रकारके तारतम्यसूं भक्तनकों फलमेंहु तारतम्य होय हे; इतनें जेसी भक्ति होय तेसो भगवत्स्वरूपको आविर्भाव होय हें ओर वाहिप्रमाण फल होय हे. ॥१९॥

पुष्टभक्तनकों केवल भगवत्परायणपनोहि जब हे
तब विनकों श्रौतस्मार्तकर्माचरण कर्तव्य हे,
किंवा नहिं ? तेसें जो श्रौतस्मार्तकर्म करत
हें सो क्यों करत हें ? एसी शंकाकी निवृ-

त्तिकेलिये अब जो पुष्टजीव हें विनको
स्वरूप ज्ञानवेमें आवे तेसें
विनकों लक्षण कहतहें; तासूं
वाहिप्रसंगसों सबकोहु
लक्षण कहत हें ॥

श्लोक—वैदिकत्वं लौकिकत्वं कापट्यात्तेषु
नान्यथा ॥२०॥

वैष्णवत्वं हि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः ।

टीका—पुष्टभक्तनमें वैदिकक्रिया ओर लौकिकक्रिया हे सो कपटपनेसूं हे आसक्तिपनेसूं नहिं हे ओर वैष्णवपनो हे सो विनको स्वभावहि हे सो गीताजीमें कह्यो हे जो " कर्ममें आसक्तिवारे अज्ञानिजन जेसें कर्म करें हें तेसे कर्ममें आसक्त न होय सोहु लोककों शिक्षा करिवेकेलिये करे " सो अपुनो भक्तपनो गुप्त राखिवेकेलिये वैदिककर्म तथा लौकिककर्म करिकें अपनोवैदिकपनो तथा लौकिकपनो जतावे. तेसें एसे-भक्तनकूं वैदिकलौकिककर्म करवेको कछू प्रयोजन नहिं हे, तथापि इनकूं देखिकें दूसरे लोकहु वैदिक तथा लौकिकमर्यादामें रहे तासूं करनों परंतु आसक्तिसूं करनों नहिं येहि कपटपनेसूं करनों एसें कह्यो हे ताको अभिप्राय हे तथा मर्यादामार्गीयजीवनकों वैष्णवपनो तथा लौकिकपनो कपटसूंहि हे और वैदिकपनो (मर्यादा मार्गीयपनो) स्वाभाविक हे

ओर प्रवाहिजीवनकूं वैष्णवपनो तथा वैदिकपनो कपटपनेसूं हे ओर लौकिकपनो स्वाभाविक हे ॥ २० ॥

पुष्टिप्रवाह ओर मर्यादा एसें तीनप्रकारके जव जीव हें तव कितनेक, सवनमें समानदृष्टिवारे आर सबधर्मनमें अभिनिवेशवारे क्यों दीखवेमें आवत हें ! एसें जानवेकी इच्छा होय तहां कहत हें.

लौकौ–संबंधिनस्तु ये जीवाः प्रवाहस्थास्तथाऽपरे ॥२१॥

चर्षणीशब्दवाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्त्मसु ।
क्षणात्सर्वत्वमायांति रुचिस्तेषां न कुत्रचित्॥२२॥
तेषां क्रियानुसारेण सर्वत्र सकलं फलं ।

टीका–पुष्टि, प्रवाह ओर मर्यादा ये तीनोमार्गनके संबंधवारे जो जीव हें ओर इनसूंहु हीन दूसरे प्रवाहिजीव हें सो जीव सर्वमार्गमें क्षणक्षणमें आयजाय हें, परंतु कोऊमार्गमें विनकी रुचि होय नहिं हे. विनकों जेसी क्रिया करे ताप्रमाण सबमार्गनमें किंचित् फल होय हे; इतने पंचरात्रमें मध्यम ओर अधम जीव कहें हें सो ये चर्षणीजीव कहेजाँय हें उनकी गति यमके आधीन हे; तीनमें तीनोमार्गके संबंधवारे जो जीव हें सो जन्ममरणहि लियोकरत हें ओर प्रवाहिमें हें तिनकी गति नरकमें हें, ॥ २१ ॥ २२ ॥

पर्सें प्रसंगसूं आईभई सब हकीकत कहिकें
प्रवाहको भेद कमसूं प्राप्त भयो हे
ताको निरूपण करत हें.

श्लोक-प्रवाहस्थान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगक्रिया-
युतान् ॥२३॥
जीवास्ते ह्यासुरास्सर्वे प्रवृत्तिं चेति वर्णिताः ॥
ते च द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञदुर्ज्ञविभेदतः ॥२४॥
दुर्ज्ञास्ते भगवत्प्रोक्ता ह्यज्ञास्ताननु ये पुनः ॥

टीका-स्वरूप, देह ओर क्रियाकरिकें युक्त, प्रवाहि-जीवनकी हकीकत लिखूंहुं. जो भगवाननें गीताजीके षोडशाध्यायमें " प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः " (आसुरीजीव प्रवृत्ति तथा निवृत्तिकूं नहिं जाने हें) इहांसूं आरंभकरिकें " ततो यांत्यधमां गतिम् " (तापिछे अधमगतिकूं प्राप्त होंय हें.) यहांतांई निरूपण किए हें सो सब आसुरीजीव हें तिनमें सब लक्षण यद्यपि सबनमें न होय तथापि जितने लक्षण लिखे हें तिनमेंसूं जोकछूलक्षणवारे जीव होय सो सब आसुरजीव जाननें; सो जीव अज्ञ ओर दुर्ज्ञ एसे भेदसूं दोप्रकारके हें; तामें गीताजीमें भगवानने जिनको स्वरूप लिख्यो हे सो दुर्ज्ञ जाननें ओर विनकूं अनुसरिवेवारे जो जीव हें सो अज्ञ जानने; सोअज्ञजीवनकूं दुर्ज्ञनके संगसूं

भगवान् तथा भक्तनमें द्वेष भयो होय सो द्वेष जब छूटे तब अपनी प्रकृतिमें आयजाय हैं, विनको भगवानके संग द्वेष होय ओर भगवान् मारे तो मुक्त होंय तासूं भगवानने मारे एसे जो जो असुर मुक्त भए हैं सो सब अज्ञ जानने. ॥ २३ ॥ २४ ॥

ऊपरके निरूपणमें प्राघाहिकसर्ग आसुर ओर हीन कह्यो हे, तब एसी आसुरसृष्टिमें तो आसुरजीवकी हि उत्पत्ति होनी चाहियें. परंतु भगवानके अनुग्रहयोग्य जीवनकी उत्पत्ति नहिं होनी चाहिये ओर बलिराजा तथा प्रह्लादादिककी उत्पत्ति आसुरीमें दीखवेमें आवत हैं ओर विनके ऊपर भगवानको अनुग्रहहु दीखवेमें आवत हे सो केसें ? एसें जानवेकी कोऊकूं इच्छा होय तहां कहत हें.

श्लोक-प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थस्तैर्न युज्यते ।२५।
सोऽपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः ।२६।

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितः पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः समाप्तः

टीका—जो पुष्टिमार्गीय जीव हें सो भगवानको अथवा भक्तको अपराध करें तो आसुरकुलमें विनको जन्म होय हे तथापि प्रवाहमें आयकेंहु आसुरधर्ममें आसक्त नहिं होय हें; इतने पुष्टिमार्गीय जीव प्रवाहमें आवे हें तासूं प्रवाहिनमें आगमन भयेसूं आसुरधर्मकरिकें युक्त नहिं होय हें ओर

भगवदअपराध अथवा भक्तनको अपराध कियो होय तो एसे-कर्मकरिकें आसुरकुलमें जन्म होय हे परंतु आसुरधर्म विनमे नहिं आवे हे ओर जन्म होनों सो तो कर्मसूं होय हे; येहि निबंधमें भक्तिप्रकरणमें कह्यो हे जो "याभक्तिमार्गमेंहु वेदकी निंदा करें अथवा अधर्म करें तो नरकमें तो प्राप्त न होय परंतु हीनयोनिमें जन्म होय. " ॥ २५ ॥ १६ ॥

इहांसूं अगाडी प्रवाहमार्गीयजीवनके प्रयोजन, स्वरूप, साधन, अंग, क्रिया ओर फल तथा मर्यादामार्गीयजीवनके प्रयोजन, स्वरूप, अंग, क्रिया, साधन ओर फल, जितने ग्रंथसूं जानवेमें आवे तितनों ग्रंथ होनों चाहिये परंतु आधुनिकजीवनके प्रारब्धवशसूं इहांसूं अगाडी ग्रंथ मिले नहिं हे यासूं जितनो ग्रंथ मिले हे तितनेको व्याख्यान लिख्योहे ॥

इति श्रीमद्गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराजविरचित पुष्टिप्रवाहमर्यादाकी टीका ब्रजभाषामें संपूण भई ॥

श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ सिद्धांतरहस्यकी व्रजभाषामें संक्षेपसूं टीका लिख्यते।

जब श्रीठाकुरजीनें अपने मनमें इच्छितप्रकारवारो शुद्ध-पुष्टिमार्ग प्रकटकरवेकी इच्छा करी तब अपने मुखारविंदरूप श्रीआचार्यजी श्रीमहाप्रभूजीकोहि एसो भक्तिमार्ग प्रकट करिवेको सामर्थ्य जानिकें पृथ्वी ऊपर प्रकट होयवेकी आज्ञा दीनी तब श्री आचार्यजीहुं भगवानको अभिप्राय जानिकें विनकी आज्ञाके अनुसार प्रकट होयकें भगवानकों इच्छित-प्रकारवारो पुष्टिभक्तिमार्ग प्रकट करतेभये, तामें अपने मार्गकी भक्तिको स्वरूप तथा सेव्यप्रभूको स्वरूप तथा सेवाको प्रकार दूसरे मार्गमें नहिं मिलवेकेलिये प्रमाणपूर्वक विलक्षणतासूं निरूपण कियो, एसें दूसरेहु धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ, तथा त्यागविवेकादिक दूसरे मार्गसूं भिन्न निरूपण किये हैं. तथापि पूजामार्गमें दोषनिवृत्तिकेलिये भूत-शुद्धिप्रभृत्ति जेसें कियेजाय हैं तेसें स्वमार्गमेंहु सर्वदाषकी निवृत्तिपूर्वक सेवाके प्रकारको विचार नहिं कियो हे एसें चिंता करिकें विचारमें परायण जब श्रीआचार्यजी भये तब आनंदमात्रकरपादमुखोदरादिरूप श्रीठाकुरजी प्रकट होयकें

सेवामें प्रतिबंध करिवेवारे दोषनकी निवृत्तिको प्रकार यथार्थ जामें आयजाय हें ओर जेसें अगाड़ी हु जीवितपर्यंत सेवामें दोषको प्रवेश न होय तेसें उपदेश करतभये. वाहि उपदेशकूं अपने हृदयमें समझिकें जामासमें, जापक्षमें, जातिथिमें ओर जासमयमें श्रीठाकुरजीनें उपदेश कियो हे सो सब अपने भक्तनकूं जतायवेकेलिये कहत हें.

श्लोकः—श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥१॥

टीका—श्रावणमासके शुक्लपक्षमें एकादशीतिथिमें मध्यरात्रिके समय साक्षात्भगवानने अपने अभिप्रायपूर्वक कह्यो हे सो एकएकअक्षरकूं याग्रंथमें कह्योजाय हे. श्रवणनक्षत्रके देवता विष्णु हें सों श्रवण पूर्णिमाके रोज अथवा पूर्णिमाकी संनिहिततिथिमें आवे हें ताकूं श्रावणमास कह्योजाय हे; इतनें श्रवणनक्षत्र विष्णुसंबंधि हे वाके संबंधकूंहि मासको नाम श्रावण भयो हें ताकूं मासको भगवत्संबंधिपनों जतायो हे. ओर शुक्लपक्ष कहनों चहियें ताके बदले अमलपक्ष कहिवेको अभिप्राय एसो हे जो भगवानके पक्षवारे सब निर्दुष्ट हें काहुप्रकारको दोष विनमें नहिं हे ओर एकादशइंद्रियनके दोषकी निवृत्ति करिवेवारी एकादशी तिथि हे ताकूं वाहि तिथिमें श्रीठाकुरजीने उपदेश कियो हे. ओर श्रीगोकुलके अंतरंगभक्तनकों सर्वपुरुषार्थकी सिद्धिकेलिये जेसें मध्यरात्रिके

समय प्रादुर्भाव हैं तेसें इहांहुं श्रीआचार्यजीकेलियें प्रकट होयके विनद्वारा तदीयभक्तनकूं सर्व पुरुषार्थ सिद्ध करिवेकेलिये मध्यरात्रिके समय प्रकट भये हैं. श्रीगोकुलमें जेसें व्यूहरहित साक्षातपूर्णपुरुषोत्तमकोहि प्राकटय होयकें भक्तनको अभिलषित कियो हे तेंसें इहांहुं भक्तनको अभिलषित सिद्ध होयवेकेलिये पूर्णपुरुषोत्तमको प्राकटय हे एसें जतायवेकेलिये " साक्षात् " पद कह्यो हे ओर सेवकद्वारा; किंवा स्वप्नद्वारा, किंवा आकाशवाणीद्वारा, उपदेश नहिं कियों हे, किंतु श्री-आचार्यजीकी प्रार्थनाविनाहु साक्षात् पुरुषोत्तमरूप प्रगट होयकें ब्रह्मसंबंधरूपसाधनको उपदेश कियो हे. ओर शुक्लपक्षमें दिन-दिनप्रति चन्द्रकी कला अधिक होय हे तेसें ब्रह्मसंबंधसूं देहके दोष इतने आधिभौतिक दोष निवृत्त होयकें दिनदिनप्रति अधिक शुद्धता होयगी. तथा एकादशीके दिन उपवास होय हे ताकरिकें ज्ञानेन्द्रिय पांच तथा पांच कर्मेन्द्रिय ओर एक मन एसें एकादशइंद्रियनके दोष निवृत्त होय हैं. ये आध्यात्मिक-दोषकी निवृत्ति कही हे. ओर अपने भक्तनकों स्वरूपानन्दको दानकरिवेकेलिये तथा इनकी रक्षा करिवेकेलिये मध्यरात्रिके समय प्रभु प्रकट भये हैं तासूं मध्यरात्रिको समय आधिदैविक दोषकी निवृत्तिकरवेवारो हे. एसें ब्रह्मसंबंध करवेवारे जीवनमें तीनप्रकारके दोष सब निवृत्त होय हैं एसें जतायोंहे.

श्रीठाकुरजीनें जो वाक्य कहे हैं विनके अभिप्रायरूप

यह ग्रंथ हे एसें प्राचीनटीकाकारनको अभिप्राय हे. ओर श्रीपुरुषोत्तमजीको अभिप्राय एसो हे जो एकादशस्कंधमें द्वितीयाध्यायमें कवियोगेश्वरनें तथा तृतीयाध्यायमें प्रबुद्ध-योगेश्वरनें सब भगवानकों अर्पण करिवेको लिख्यो हे, तेसें ग्यारहमे अध्यायमें सदादृत[1] भक्तिको निरूपण हे, तहां दासपनेसूं आत्मनिवेदन करिवेको लिख्यो हे, ओर उन्नीसमे अध्यायमें महद्विमृग्य भक्तियोगको निरूपण हे, वहांहुं भगवद्धर्मके अधिकाररूप आत्मनिवेदन लिख्यो हे; विनकोहि अनुवाद या ग्रंथमें होयगो एसी शंकाकी निवृत्तिके लिये ब्रह्मसंबंधकी आज्ञाको मास. पक्ष. तिथिप्रभृति कह्यो हे, ओर श्रीठाकुरजीनें प्रकट होयकें पंचाक्षरमंत्र, तथा वाकी टीकारूप गद्य तथा श्लोकरूप ये, वाक्य कहे हें; तिनमेसूं पंचाक्षरमंत्र, तथा वाकी टीकारूप गद्यमंत्र, मंत्रकी रीतिके अनुसार गूढ राखनो चहियें तासूं ये नहि कहें हें ओंर सिद्धांतरूप श्लोक जो श्रीठाकुरजीनें कहें हें सो याग्रंथमें लिखे हें. ॥ १ ॥

एसें श्रीठाकुरजीनें जासमय उपदेश कियो हे
वासमयको निरूपण करिकें स्वमार्गीयसेवाके
प्रतिबंधरूप जो असाधारण दोष हें तिनकी
निवृत्तिको प्रकार जो भगवाननें
कह्यो हे सो कहत हें.

---

१ सत्पुरुषोनें जाको आदर कियो हे सो. २ महत्पुरुषनकों ढुंढिवेयोग्य.

श्लोकौ—ब्रह्मसंबंधकरणात्सर्वेषां देहजीवयोः ।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः ॥२॥
सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः ।
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मंतव्याःकथंचन ॥३॥

टीका—ब्रह्मसंबंध करिवेसूं सबनके देह ओर जीवके सब-दोषनकी निवृत्ति होयहें सो दोष पांचप्रकारके प्रसिद्ध हें ॥ २ ॥ सहज दोष, देशसूं उत्पन्नभये दोष, कालसूं उत्पन्नभये दोष, संयोगसूं भये दोष ओर स्पर्शसूं भये दोष, एसें पांचप्रकारके दोप लोकमें तथा वेदमें निरूपण किये हें अथवा सहज दोष, देशकालसूं उत्पन्न भये दोष, लोक तथा वेदमें निरूपण किये एसे दोष, संयोगसूं भये दोष ओर स्पर्शसूं भये दोष एसें पांच-प्रकारके दोष हें सो काहूरीतिसूं नहिं माननें. यहां श्रीपुरुषो-त्तमके संग वोहोतकालनसूं तिरोहित भयो संबंध फिर प्रकट होय हे तथापि वाको नाम ब्रह्मसंबंध हे ताको अभिप्राय एसो हे जो जेसें ब्रह्म निर्दोष ओर सर्वत्र समान हे तेसें यह संबंधहु निर्दोष तथा सामान होय हे देह पंचमहाभूतको हे ओर पंच-महाभूतनमें भगवानको संबंध न होयवेसूं दोष होय हे. जो पूजामार्गमें भूतशुद्धयादिकनसूं निवृत्त होय हें सो सहज दोष हें ओर पूजाके स्थानमें भूतादिकनको अपसरण करे हें ओर आसनादिककी शुद्धि करें हें सो देशदोष कहेंजाय हें, तेसें

प्रातःकालको होम करिकें अथवा ब्रह्मयज्ञ करिकें अथवा माध्यान्हिक कर्म करिकें पुरुषोत्तमको पूजन करनों एसें मंत्रराजअनुष्टुपके विधानको वाक्य हे, तासूं दूसरे कालमें पूजा करिवेमें कालदोष आवे हैं, ओर पूजादिककरिकें ब्रह्मलोक मिले हैं एसो वाक्य हे; तासूं पूजासूं ब्रह्मलोक प्राप्त होय फिर ब्रह्मलोकपर्यंत पुनरावृत्ति होय हैं एसो गीताजीमें कह्यो हे तासूं पुनरावृत्तिरूप दोष कह्यो हे ओर वैदिकमंत्रनसूं पूजादिक करिवेमें हु न्यूनातिरिक्तदोषकी संभावना हे ताके-लिये विष्णुस्मरण करनो परे हे ये वेदनिरूपित दोष हैं ओर पूजामें अभिषेकादिककेलिये वैदिकमंत्रके संस्कारवारो संखोदक होय तामें साधारणजलको संयोग होय सो संयोगजदोष हे ओर मूलमें चकार हे तासूं नैवेद्यप्रभृतिमें ओर हुं जो सब आगंतुक दोष हैं सो सब कहिगये हैं ओर पूजादिकमें उपयुक्त पात्रादिकपदार्थ, पुष्प ओर चंदनादिकनकों स्त्रीशूद्रादिकको स्पर्श होय सो स्पर्शदोष हे एसें पांचप्रकारके दोष भक्तिमार्गमें नहिं माननें एसें श्रीगोकुलनाथजीको अभिप्राय हे ओर देहके संग उत्पन्नभये एसे कुष्ट तथा अपस्मारादिक रोगहैं तेसें जीवके संग उत्पन्नभये एसे कामक्रोधादिक हैं सो सहजदोष कहेजायहैं, ओर मगधदेश तथा म्लेच्छादिकनके देसमें तीर्थ-यात्रासिवाय जाँय तो फिर संस्कार करनों परे, एसें धर्म-शास्त्रमें लिख्यो हे, सो देशोत्थ कहेजायहैं, ओर रौद्रकाल

तथा कलिप्रभृति कालहे तासूं धर्मकी निवृत्तिरूप जो दोष हे सो कालोत्थदोष कहेंजायहें ओर पतितादिकनको संसर्ग होय सो संयोगजदोष कह्योजायहे, ओर इंद्रिय तथा पदार्थका संयोग होय सो स्पर्शज दोष कह्योजायहे. मूलमें जो चकार लिख्यो हे तासूं कर्मसूं जो दोष होयहें सो कर्मजदोषहु आय-जायहें सो सबलोक तथा वेदमें कहे हें, जेसें केश, भस्म, प्रभृतीनसूं दूषित देशमें रहनों, अथवा संध्यासमय चोहटेमें बेठनों अथवा म्लेच्छादिकनको स्पर्श करनों, मुखमें मैथुन करनों, द्वारसिवाय गृहमें प्रवेशकरनों, इत्यादिक लोकप्रसिद्धहें. ओर अग्निहोत्रवारो अपनेलिये उपर भूमिमें न जाय, अमावास्या तथा पूर्णिमाप्रभृति तिथिमें स्त्रीके पास न जाये, मलयुक्त होये तब बोले नहिं इत्यादिक वेदसिद्ध दोषहें ये सर्वसिद्ध दोष निवृत्त होंय एसें नहिं हें, तथापि काहुरीतिसूं माननें नहिं इतनें भगवानको संबंध सिद्ध होंय तब ये दोष कहा करसकें ? कछहु नहिं करसकें, एसें श्रीरघुनाथजीको अभिप्राय हे. ओर अविद्याको संबंध भयेसूं अभिमानादिक होय हें, सो जीवके सहजदोष हें, तथा कामक्रोधादिक लिंगदेहके सहजदोष हे ओर मातपितामें जो दोष तथा रोग रहें होंय सो संततिमें आवें सो स्थूलदेहके सहजदोष हें ओर देश तथा कालसूं जो जो दोष होय हें सो देहकूं हें जीवकूं नहिं हें, जेसे मगध देशमें गयाजीप्रभृति पवित्रस्थल हें ओर सब अपवित्र हें जेसें

मरुदेश सगरो अपवित्रहे एसें अपवित्रदेशमें जन्मभयेसूं तथा विन-देशनमें गमनकरिवेसूं जो दोष होंय हैं सो देशोस्थदोष कह्येजाय हैं. ओर कलिकालसूं, तथा दुष्टमुहूर्तसूं तथा अवस्थासूं जो दोष होय हैं सो कालोत्थदोष कह्येजांय हैं, ओर ज्ञानपूर्वक कामकी प्रवृत्तिसूं मनको योगभयेसूं जो दोष उत्पन्न होंय हैं सो संयोगज-दोष कह्येजांय हे, ओर काहूके स्पर्शसूं जो दोष होंय हैं सो स्पर्शज दोष कह्येजांय हे, सो सब लोकमें तथा वेदमें निरूपित हैं, तथापि भक्तिमार्गमें देह, इंद्रिय, अंतःकरण, ओर विनके धर्मसहित सबको अर्पण कियो हे; तासूं सब भगवानके भये हैं, सो भगवानकी सेवामें प्रतिबंध नहिं करें हैं; तासूं इन दोषनकी निवृत्तिमें प्रयत्न नहिं करनो, क्यों जो सब भगव-दीय हैं एसो अनुसंधान रहे तब ये दोष बाधक नहिं होंय, एसो श्रीपुरुषोत्तमजीको अभिप्राय हे. ओर प्रथमस्कंधके सप्तमाध्यायमें अर्जुनकीस्तुतिमें श्रीसुबोधिनीजीमें कर्मज, कालज, स्वभावज, मायोद्भव ओर देशोद्भव, एसें पांच दोष समझने; तामे वहां स्वभावज लिखे हे सो तहां सहजदोष लिखे हैं. ओर वहां कालजदोष लिखे हैं सो यहां कालोत्थ-दोष समझनें, ओर वहां देशोद्भवदोष लिखे हैं सो यहां देशो-त्थदोष समझनें ओर वहां मायोद्भवदोष लिखे हैं सो अविद्याके संयोगसूं स्वधर्म तथा भगवद्धर्मको अज्ञान होय हे सो यहां सयोगजदोष समझनें, ओर वहां कर्मजदोष लिखे हैं सो यहां

स्पर्शजदोष समझनें, एसें लालूभट्टजीनें लिख्यो हे. सो सब दोष दीखवेमें आवे तथापि दग्ध भये वस्त्रकीसीनाँई कछु कार्य करसकें नहिं; तासूं ये दोष भगवत्सेवामें प्रतिबंध करेंगे एसें नहिं माननों क्यों जो भगवान् निर्दुष्ट हैं विनको संबंध भयेसूं देह, इंद्रिय, अंतःकरण ओर विनके सर्व धर्म निर्दुष्ट होंय-जाय हैं. ॥ २ ॥ ३ ॥

भगवान् निर्दुष्टहैं तासूं जो दोषरहित होय ताकोहि संबंध भगवानसूं होनो चहियें, परंतु जबतांई देह, तथा इंद्रियादिकनके दोष निवृत्त नहिं भये हें तबतांई विनको संबंध प्रभूनसें केसें होयसके ? तासूं प्रथम दोषरहित करिकें पिछें भगवानकों अर्पणकरिवेमें कहा हरकत हे ? एसें कोई कहे तहां कहत हें.

श्लोकः—अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथंचन ।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्भर्जनमाचरेत् ॥४॥

टीका—देह, इंद्रिय, प्राण तथा अंतःकरण ये सब भगवानको अर्पणकियेविना सबदोषनकी निवृत्ति काहुप्रकारसूं नहिं होय हें, तासूं भगवानकों जाको अर्पण नहिं भयो हे सो वस्तु अपनेउपयोगमें नहिं लेनी, असमर्पित वस्तुको त्यागहि करनो; इतने श्रीमद्भागवतषष्ठस्कंधमें श्रीशुकदेवजीने कह्यो हे जो तप, ब्रह्मचर्य, शांति, इंद्रियको निग्रह, दान, सत्य,

पवित्रता, इनसबनकरिके धीर पुरुष, श्रद्धायुक्त होयकें देह, वाणी, ओर बुद्धिसूं उत्पन्नभयो एसो बडो पाप होय ताकूं हु अग्नि जेसें काष्ठसूं दग्धकरेहें तेसें दग्धकरेहें; अर्थात् अग्नि काष्ठकूं दग्धकरेहे सामें भस्मप्रभृति शेष रहे हैं तेसें तपआदिसूं पाप दग्धहोयके तामें मलिनताकरवेवारो कछुकदोष बाकी रहेहें तासूं वहांहि फिर कह्यो हे जो वासुदेवभगवानके परायण कितनेक भक्त जेसें सूर्य, रात्रिमें भये ओसके जलकों, निःशेष नाश करेहे, तेसें केवलभक्तिकरिकें समग्रपापको नाश करेहे, एसें कह्यो हे तासूं भक्तिसूं पापको नाश होय हे एसो दूसरे-साधनसूं नहिं होय हे. तासूं असमर्पितवस्तुको त्यागहि करनो ॥ ४ ॥

एसें असमर्पितवस्तुको त्याग करें तब लौकिका-
लौकिक व्यवहार केसें सिद्ध होय ? एसें
जानवेकी इच्छा होय तहां कहत हें.

श्लोकः—निवेदिभिस्समप्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः ।
न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तसमर्पणम् ॥५॥

टीका—पुष्टिमार्गकी रीतिसूं आचार्यद्वारा जाजीवको निवेदन भयो हे ताजीवकूं भगवानको अर्पणकरिकेंहि सब कार्य करनों, एसी भक्तिमार्गकी दोषरहित मर्यादा हे, तामें जो अर्द्धभुक्त पदार्थ हें सो देवकेदेव प्रभूनकों समर्पण योग्य नहिं हें; इतनें निवेदन, दान, ओर अर्पण, एसें तीनप्रकार हें,

तामें वस्तुको नाम लेके प्रभूको जतायदेनों सो निवेदन कह्योजाय हे, तथा विधिपूर्वक अपनी सत्ताकों छोड़िके द्रव्यादिकनमें दूसरेकी सत्ता उत्पन्नकरनी सो दान कह्योजाय हैं, तेसें रसोई सिद्धकरिकें अपने मालिककों अर्पणकरे हैं, तेसें स्वामिकों भोगवेयोग्य पदार्थ स्वामिकों जतावनो सो अर्पण कह्योजाय हे, वाहि रीतिसूं प्रथम प्रभूकों निवेदितभई एसी वस्तु फिर अर्पण करिकें लौकिक तथा वैदिक सर्व कार्य करनो एसी भक्तिमार्गकी मर्यादाहे, ताहिरीतिसूं करिवेमें दोष नहिं आवे हैं; क्यों जो जाको दान कियोहे सो वस्तु अपने उपयोगमें नहिं आयसके तेसें जो वस्तु प्रभूनकों भेट करी हे सो वस्तुहुं अपने उपयोगमें नहि आयसके परंतु जाको अर्पण कियोहे सो वस्तु अपने उपयोगमें लेवे में हरकत नहिं हें; तामें एकपदार्थमेंसूं थोडो भाग अपने उपयोगमें लेकें बाकी बच्यो जो भाग हे सो सामिभुक्त अर्द्धभुक्त कह्योजाय हे सो प्रभूकों अर्पणकरिवेयोग्य नहिं हें, अर्थात् यह सब वस्तु प्रभूनकी हे, एसो अनुसन्धानराखिकें फिर ये प्रभूनकों अर्पणकरिकें ये विनको प्रसादहे एसो समझिकें अपने उपयोगमें लेनी ओर अर्धभुक्त होय सो प्रभूनकों नहिंसमर्पनी ॥ ५ ॥

एसें अर्द्धभुक्तके निवेदनको निषेध करिकें,
सर्वदा कर्तव्यको प्रकार कहत हें.

श्लोकः—तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम् ।
दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः ॥६॥
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम् ।

टीका—निवेदितपदार्थ प्रभूनकों समर्पिकेहि सर्वकार्य करनों एसी भक्तिमार्गकी मर्यादा हे तासूं प्रथम सर्वकार्यमें सर्व वस्तु अर्पणकरनी; इतने स्त्री, पुत्र, धन, प्रभृति सब प्रभूनकों समर्पिकें ये सब भगवानके हैं एसो अनुसन्धानराखिकें अपने उपयोगमें लेनी. एसें प्रभूनकों जाको अर्पणभयों हे सो वस्तुप्रभूनकी हे. एसी बुद्धि रहिवेसूं अपनो अभिमान छूटजाय हे ओर प्रभूनके संबंधतें विनमें आसक्ति रहिवेसूं अपनी भक्तिकी दृढता होय हे. ओर कर्ममार्गादिकनमें निवेदन तथा समर्पणको प्रकार नहिं हे. 'केवल दानकोहि प्रकार हे तासूं भगवानकों जो पदार्थ दियो हें सो पदार्थ अपनें नहिं लेनो एसो वाक्य वामार्गके अभिप्रायको हे, भक्तिमार्गको नहिं हे, भक्तिमार्गमें तो सर्व वस्तु भगवानकों समर्पिकेंहि उपयोगमें लेनी एसी मर्यादा हे. ॥ ६ ॥

पसें भक्तिमार्गसूं दूसरे मार्गमें भगवानकों अर्पणभई
एसी वस्तुको उपयोग नहिं करनों ओर भक्ति-
मार्गमें तो भगवानकी प्रसादी वस्तुसूंही
भगवदीयनकूं सर्व कार्य कर्तव्य हें
पस जतायवेकेलिये कहत हें.

श्लोकः—सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति।७।
तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः ॥

टीका—लोकमें सेवकनको व्यवहार जेसें सिद्ध होय हे तेसें प्रभूनकों अर्पणकरिकेंहि सब कार्य करनों एसें करिवेतें सबनकों ब्रह्मरूपपनो होय; इतनें लोकमेंहु जो सेवक होय हैं, सो सबकार्य अपने मालिककी आज्ञासूंहि करे हैं मालिकूं विनापूछे कछु कार्य नहिं करे हैं ओर शिष्य होय सो गुरुकी आज्ञाप्रमाणहि सब कार्य करेहे तेसें अपनो देह आत्मादिक, सब भगवानकों अर्पणकरनो तब सब भगवानके भये तासूं भगवानकूं अर्पणकरिकेंहि सबकार्य करनों एसें करिवेसूं सबनमें निर्दोषपनों तथा समानभगवदीयपनों सिद्ध होय हे, यद्यपि ब्रह्मके अनन्त धर्म हे तथापि गीताजीमें निर्दोष ओर सम ये दोय धर्म ब्रह्मके कहे हैं ओर यहां सेवामेंहु येदोऊ-धर्मकोहि उपयोग हे; तासूं येदोऊधर्मकों ले सबनकों ब्रह्मपनो होय एसे कह्यो हे. ॥ ७ ॥

भक्तिमार्गमें प्रवेश भयो होय तोहु सत्वादिकऊहि गुणनके भेदकरिकें सबनकी प्रवृति भिन्नभिन्न होय हे समान नहिं होय हे तासूं भगवदीय-पनो भयो तोहु सबनकों समानपनो केसें होय ? एसी शंकाकों गंगा-जीके दृष्टांतसूं निवृत करत हैं.

श्लोकः—गंगात्वे सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना ॥८॥
गंगात्वेन निरूप्या स्यात्तद्वदत्रापि चैव हि ॥९॥

टीका—परनालाप्रभृतिको जल गंगामें मिले तब परनाला-प्रभृतिमें रहे एसें सबदोषनकों गंगापनों होय हे तासूं वाके गुणदोषनकी वर्णन गंगापनेसूंहि होय हैं तेसें ब्रह्मसंबंध भये पिछें यहांहुं सबनकों ब्रह्मपनो होय हे, इतने परनालके जलके स्पर्शसूं स्नानादिक करनो परे हे और येहि जल गंगाजीमें मिल्यो होय तब यत्किंचित् वाकी मलिनता दीखवेमें आवती होय तथापि याके पानसूं पाप निवृत्त होय हे; क्यों जो सब गंगारूप होयगयो हे इतने फिर आच्छे बुरे जलको वर्णन होय हैं सो गंगाजीकेहि जलको वर्णन होय हे " परनाला-प्रभृतिको जल खराब हे " एसें कोऊ नहि कहत हैं. तेसें गंगाजीमें आच्छो जल मिल्यो होय तोहुं गंगाजीको जल अच्छो हैं एसें कहतहे परंतु जो जल मिल्योहे वाको नाम नहिं लेत हैं. एसें ब्रह्मसंबंध भये पिछे ब्रह्मसंबंधकरवेवारेमें जो दोष गुण रहे हैं सो सब ब्रह्मरूप होय हैं अर्थात् परनालाको जल गंगाजीमें मिले तब वाके सब दोष नष्ट होयजाय हैं तेसें ब्रह्मसबंधकरवेवारेमें जो दोष होय सो सब नष्ट होय-जाय हे ॥९॥

ब्रह्मसंबंधकरिवेसूं सबदोषनकी निवृत्ति होय हैं; तासूं पांचोप्रकारके जो दोष हैं सो माननें नहिं एसें प्रथम कह्यो हे

तापिछे सबनकों ब्रह्मपनों होय हे एसें कह्यो हे येहि सेवाको आनुषंगिक फल सिद्धांतमुक्तावलीमें कह्यो हें, वाब्रह्मसंबंधसूं सबदोषनकी निवृत्ति होय हें एसें कहिकें अगाडी दोष नहिं-होयवेकेलिये सब अर्पणकरिकेंहि कार्यकरिवेको कह्यो हे; तामें भगवद्धर्मके अनुसार तथा लौकिकव्यवहारके अनुसार एसें दोयप्रकारको समर्पण कह्यो हे तामें भगवद्धर्मके अनुसार (वाक्यको स्वरूप समझिकें) समर्पण करे तो ब्रह्मतारूप फल होय ओर लौकिकव्यवहारके अनुसार करे तो गंगाजीमें भिलेभये मोरी (परनाला)के जलकीनांई ब्रह्मसंबंधकरिवेवारेमें जो दोष रहे हें विनकी निवृत्तिमात्रहि फल होय हें.

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितसिद्धांतरहस्यकी
संक्षिप्त व्रजभाषामें टीका गोस्वामिश्रीनृ-
सिंहलालजीमहाराजविरचित
समाप्त भई ॥

श्रीकृष्णाय नमः। श्री गोपीजनवल्लभाय नमः।

अथ नवरत्नकी व्रजभाषामें संक्षिप्तटीकाको प्रारंभ

भगवदीयनकों चिंताकी निवृत्तिके लिये ये ग्रंथ हे, तब भगवदीय तो अनन्यभक्त होंय हैं ओर " अनन्य होयकें जो मनुष्य मेरी भक्ति करें हैं. ओर नित्य सबतरेहसूं मेरेमेंहि चित्तवृत्ति राखत हैं, विनकों जो पदार्थको उपयोग हे सो में मिलायदउंहूं, ओर जो उपयुक्त पदार्थ मिल्यो हे वाकी में रक्षा करूं हूं " एसें गीताजीमें अर्जुनप्रति श्रीकृष्णनें आज्ञा करी हे; तासूं भगवदीयनकूं केसें चिंता उत्पन्न होय ? एसीशंकाकी निवृत्तिके लिये श्रीगुंसाईजीनें आज्ञा करी हे जो आत्मनिवेदन-करिवेवारेहि भगवद्भजनकूं योग्य हैं जिननें आत्मनिवेदन नहिं कियो हे सो भगवद्भजनकों योग्य नहिं हैं तामें जिननें आत्मनिवेदन कियो हे विनके यालोकके तथा परलोकके अर्थमें भगवानकों जाको अर्पण नहिं कियों हे एसी कोई वस्तु नहिं हे. तब देहादिकनको निर्वाह निवेदितवस्तूनसों करनों किंवा अनिवेदितवस्तूनसों करनो ? जो कहोके निवेदितवस्तून-सोंहि करनो तो ये पक्ष योग्य नहिं हे; क्यों जो भगवानकी वस्तुको भगवानकी इच्छाविना ग्रहण होयसके नहिं ओर

भगवानकी इच्छा जानिवेमें आयसके नहिं, यथार्थ विचार करो तो भगवानकी इच्छा होय तोहु सेवकको भगवानकी वस्तुको उपयोग करनो उचित नहिं हे ओर कदाचित् एसें कहें जो देहादिकहु भगवानके भये हैं विनकों पोषण भगवान-की वस्तुसों करिवेमें दोष नहिं हे एसें नहिं कहेनों क्यों जो अपने विचारसूं तेसें करिवेमें स्वतंत्रतारूप दोष आंयजाय हे, ओर भगवानकी इच्छा जानिवेमें नहिं आवत हे ये तो कह्योहि हे, तासूं भगवानकी जो वस्तु निवेदित भई तासूं निर्वाह करनो योग्य नहिं हे, तब जो वस्तु निवेदित नहिं भई हे वाहिसूं निर्वाह करनों एसें कोऊ कहे ! तहां कहत हैं जो ये पक्षहु नहिं; क्यों जो जावस्तुको निवेदित नहिं भयो हे सो उपयोगमें लेवेको अपनो धर्म नहिं हे, तेसें भगवानकों निवेदित नहिंभई एसी वस्तु राखवेकोहि अपनो धर्म नहिं हे. देहादिक-नको निवेदन भयो हे ताके निर्वाहके लिये अपने विचार करनोहि योग्य नहिं हे, तेसें देहादिकनको निवेदन करिवेके समय वाके निर्वाहके लिये कितनिक वस्तु भगवानकों निवेदित नहिं करिविको विचार करनो येहु योग्य नहिं हे, क्यों जो सबनमेंतें अंपनो अभिमान छूटवेके लिये निवेदन हे. और देहादिकके निर्वाहको विचार करनो सो वामें अपनो अभिमान राखे तब होय तासूं अनिवेदितवस्तूनसूं देहादिकनको निर्वाह करनो येपक्षहु योग्य नहिं हे एसें जब देहादिकनको

निर्वाह निवेदितवस्तूनसों अथवा अनिवेदित वस्तूनसों होय-सके नहिं तब देहादिकनके निर्वाहको साधन नहिंरहिवेसूं देहादिकनके नाशको संभव होय तब देहादिकनसों भजन करनो सो बनसके नहिं तब भजनकरिवेकेलिये वाके अधिकाररूप निवेदनकी व्यर्थता आयजाय हे तब पुष्टिकी मर्यादारूप यह भक्तिमार्गहि उच्छिन्न होयजाय; तासूं निवेदन करें तब भगवद्भजनको अधिकार होय और निवेदन भयेसूं भगवद्भजन होयसके नहिं तब दोई आडीसूं पाश आवे हे एसें कोउ कहे तहां कहत हैं जो स्त्री, पुत्र, गृह, प्राण, ये सब भगवानकों अर्पण करनों एसें प्रबुद्धयोगेश्वरनें निमिराजाप्रति भगवान्संबंधिधर्मके प्रसंगमें कह्योहे ओर उन्नीसमे अध्यायमें श्रीकृष्णभगवाननें उद्धवजीप्रति महद्विमृग्यभक्तियोग कह्याहे तामें मेरी अमृतरूप कथामें श्रद्धा राखवानी यहांसूंलेयकें साडेबारश्लोकनसूं आत्मनिवेदीनके धर्म कह्ये हैं वहां अधिकाररूप निवेदन कह्यो हे; तासूं निवेदनको आवश्यक हे तासूं जेसें ब्राह्मण, क्षत्री तथा वैश्यकों वैदिक-कर्ममें अधिकार सिद्धकरिवेवारो गायत्रीके उपदेशसूं भयो एसो यज्ञोपवीतसंस्कार हे तेसें भगवद्भजनमें अधिकार सिद्धकरिवेवारो आत्मनिवेदन हे तासूं निवेदनकी सफलताकेलिये भगवद्भजन सिद्धकरिवेकों जितनी वस्तूनको आवश्यक उपयोग होय तितनी निवेदित वस्तुहि उपयोगमे लेनीं. जो एसो अभिप्राय

नहोय तो स्त्रीको पाणिग्रहण किये पीछे अवश्य वाकूं निवेदित करनी चहियें तेसेंहि पुत्रादिकनको निवेदन करनो चहियें सो न भयो तब ये अपने उपयोगमें आये नहिं तब वाको ग्रहण कियोहे ताकी व्यर्थता आयजाय हे; तासूं जो वस्तु दानमें दीनी हे सो वस्तु अपने उपयोगमें आवे नहिं परंतु निवेदित-वस्तुको उपयोग करिवेमें बाध नहिं हे. जो निवेदितवस्तुमें बाध होय तो भगवानकूं निवेदित कियेगये अन्नादिकनकोहि भोजनकरिवेको सर्वत्र लिख्यो हे सो न होयसके ओर भगवानकों निवेदित कियेसिवाय वस्तु लेवेको सर्वत्र निषेध हे; तासूं जो वस्तु भगवानकों निवेदित भई हे ताको भगवद्भोगके लिये विनियोग भयो तब भगवाननें दियोभयो यह प्रसाद हे एसें समझिकें अपनें उपयोग करनो सो युक्त हे क्यों जो यामें दासधर्म सिद्ध रहे हे, तासूं हि उद्धवजीनें श्रीकृष्णसूं कह्यो हे " आपको उच्छिष्ट लेवेवारे हमदासननें आपकी माया जीती हे " इत्यादिक वाक्यनकरिकें भगवानको प्रसाद आत्माकों शुद्धकरिवेवारोहे ये सिद्ध हे तासूं याविषयकी चिंता तो होय नहिं परंतु निवेदितअर्थको प्रभुमें विनियोग होयगयो तापीछें विनियोगकरिवेकेलिये वस्तु संपादनकरिवेको यत्न करनो किंवा नहिं करनो ? एसी चिंता भगवदीयनकों होय; क्यों जो भगवानके विनियोगमें उपयुक्त वस्तु संपादनकरिवेको प्रयत्न करें तब भगवानमेंसूं चित्त निकसिकें वावस्तुमें लगे

एसेंहि सब इंद्रियनको व्यापार वाहिके अनुकूल होय तब बहिर्मुखता होयवेको संभव हे ओर जितनो वामें यत्न करे तितनो सेवामें प्रतिबंध होय तेसें धर्म, अर्थ, ओर काम ये त्रिवर्गको श्रम भगवान् निष्फल करतहें तासूं भगवत्कृतप्रतिबंधहु तामें होय. ओर जो यत्न न करें तो भगवानकों विनियोगकरिवेको कछु होय नहि तब दुःख होय, एसें भगवदीयनकों चिंता होय ताकी निवृत्तिके लिये उपदेश करतहें. ॥

श्लोकः ॥चिंता काऽपि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति ।
भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम् ॥ १ ॥

टीका ॥ जिननें अपने आत्मादिक सब निवेदित किये हे विनकों काहुसमय कोउबातकी चिंता कर्तव्य नहि हे; क्यों जो येजीव पुष्टिमार्गमें रह्यो हे तासूं भगवानहु वाकी लौकिक गति नकरेंगें इतनें लौकिक चिंता न होय तथापि भगवानके लियेहु चिंता न करनी अंगीकारभयेसूंहि भगवान् आपसूंहि सब सिद्ध करेंगें एसो विश्वास जीवकों अवश्य राखनों चहिये. ओर भगवानको हु एसो नियम हे जो जाको अंगीकार कियो वाको पालन अवश्यकरनो, तासूं कदाचित् परीक्षाके लिये अथवा

प्रारब्धभोगके लिये प्रभु विलंब करें तोहू चिंता न करनी, जीव पुष्टिमार्गमेंरह्योहे तासूं मर्यादामार्गीयवैराग्यादिक होय तोहु आचार्यद्वारा भगवानकों निवेदित भये हैं तासूं भगवानने ये जीव स्वकीय हैं एसें अंगीकार कियोहे तासूं दूसरे लोक-किसीनांई कुटुंबादिकनमें आसक्ति होयगी तोहु भगवान् लौकिकगति नहिं करेंगें ॥ १ ॥

पसें चिंताछोडवेसूं स्वच्छंदपनेको व्यवहार आय-
जायगो तासूं बहिर्मुखता होयगी पसें कोउ
कहे तहां कहत हैं.

श्लोकः—निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति ॥२॥

टीका ॥ सर्वथा जो तादृश भये हैं इतनें निवेदितात्मा भये हैं तिनकों अवश्य निवेदनको स्मरण करनो अथवा सर्वथा जो तादृशजन होंय इतनें भगवदीय होंय तिनके संग निवेदनको स्मरण करनो मूलमें सर्वदा पद होय तो हमेशां निवेदनको स्मरण करनो एसो अर्थ समझनों. एसें सर्वकाल स्मरण न करे तो आसुरावेश होय. कदाचित् अलौकिक अथवा लौकिकअर्थकी सिद्धिके लिये प्रभूनकी प्रार्थना करनी के केसें ? एसी शंका होय तहां कहत हैं जो प्रार्थना करनी नहिं क्यों जो जिनमें निवेदन कियो हे वेसबनके ईश्वर हैं ओर सबनके

आत्मा हैं सोअपनी इच्छातें करेंगे अथवा जिनकी इच्छामें विकार नहिं होय तिनभक्तनकी इच्छाप्रकार प्रभु करेंगे. ॥ २ ॥

देहादिक सब भगवानकों अर्पित किये ह ताको विनियोग स्त्रीपुत्रादिकनमें होय तब स्वधर्मकी हानि होय एसी चिंता होय तहां कहतहैं

श्लोकः—सर्वेषां प्रभुसंबंधो न प्रत्येकमिति स्थितिः ।
अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिंता का स्वस्य
सोऽपि चेत् ॥३॥

टीका—सबनकों प्रभुको संबंध हे, एककूं मुख्य संबंधहे ओर एककूं गौण संबंधहे एसें नहिं हे. एसी निवेदनमें अंगीकारकी मर्यादाहे यासूं जो विलक्षण होय इतनें सबनको अंगीकार समान होय तथापि कोउके ऊपर विशेष कृपा दीखवेमें आवे तो तामेंहु अपनें संतोष माननों, अर्थात् निवेदन करिवेके समयतो अपनें एक मुख्य होयकें अपने संग दूसरे सबनकों अर्पण करें हैं तब अपनी मुख्यता होय हे परंतु निवेदन भये पीछें तो अपनो आत्मा, देह, प्राण, इंद्रिय, अंतःकरण, स्त्री, पुत्र, धन, सबनको समान निवेदन होय हे तामें जेसें धनादिक अचेतनपदार्थनको परस्पर[1] विनियोग होय हे तामें

---

१ वस्त्र आभरण राखिवेके लिये पेटी राखेहे तामें पेटीको विनियोग वस्त्र तथा आभरणमे भयो तामें अपनकों चिंता नहिं होय हे तेसें वस्त्र तथा स्त्रीप्रभृतिनको परस्पर विनियोग होय तो चिंता नकरनी.

चिंता नहिं होय हे तेसें स्त्रीपुत्रादिकचेतनको परस्पर विनियोग होयवेमे अपनकों चिंता कहा हे ? तेसें अपनक अन्यविनियोग होय तोहु चिंता कहा हे ?

यातूं एसो सिद्ध भयो जो अपन समर्पण कियो तब अपने संग स्त्रीपुत्रादिककोहु समर्पण भयो सो विनमें अपनो संबंध हतो ताको समर्पण भयो हे ओर स्त्रीपुत्रादिकनकी जो स्वतंत्र सत्ताहे सो समर्पण करिवेके लिये तिनकों भिन्नर समर्पण करनों तब सिद्धांतरहस्यमें कहेप्रमाण अपने अपने पंचदोषकी निवृत्ति होय. ओर धनादिकजडपदार्थमें अपनी स्वतंत्र सत्ता रहे हैं तातूं अपने समर्पणके संगहि इनको समर्पण होयगयो ओर येनिर्दुष्ट होयगयो एसें जाननों ॥ ३ ॥

जेसें पुत्रादिकनके अन्यविनियोगमें चिंता नहिं करनी तेसें अपनो अन्य विनियोग होय तोहु चिंता न करनी याविषयमें कहत हैं.

श्लोकः—अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनम् ।
यैः कृष्णसात्कृतप्राणैस्तेषां का परिदेवना ॥४॥

टीका—भगवान् सर्वरूप हैं तथा मार्गके प्रवर्तक ओर उपदेशक गुरु निरवधिसच्चिदानंदस्वरूप हैं. तथा भगवानकों सब निवेदन करनों सो परमफलरूपहे, इत्यादिक ज्ञान जिनकों नहिं हे एसे हीनाधिकारी ओर एसो ज्ञान जिनकों होय सो

मध्यमाधिकारीहें, एसेहु निवेदितात्मा होय तो विनकों चिंता कर्तव्य नहिं हे तव जिननें केवल प्रभूनकोंहि प्राणआधीन किये हें एसे जो उत्तमाधिकारी हैं तिनकों तो चिंताहि कहा हे ? ॥ ४ ॥

श्रवणादिकन व भक्तिनमेंसूं श्रवण, कीर्तन, और स्मरण ये जीवके आधीनहे, तथा पादसेवनके दोय भेदहें तामें एक तो अपनें पादकरिकें भगवन्मंदिरादिकनमें जानों सोहु जीवके आधीनहे, ओर दूसरो भगवानके चरणारविंदको सेवन करनों सो प्रभूनके आधीनहे तेसेंहि अर्चन, वंदन, ओर दास्यहे सोहु सेव्यस्वरूपमें चैतन्यको प्राकटय न होय तोहु बनसकेहे, परंतु सख्य और आत्मनिवेदन तो सेव्यस्वरूपमें चैतन्यको प्राकटय होय ओर प्रभु स्वीकार करें तब होयसके ओर अब तो सानुभावपनो नहिं हे तब अपनें आत्मनिवेदन कियो हे तथापि प्रभूननें अंगीकार कियोहे किंवा नहिं कियोहे ? एसी चिंता तो होयहे. एसें कोउ कहे, तहां कहतहें.

श्लोकः—तथा निवेदने चिंता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे ।
विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थो हि हरिः
स्वतः ॥५॥

टीका—भक्तयुक्तश्रीपुरुषोत्तममें निवेदन विषयकी चिंता छोडनी; इतनें जेसें सब गोप इंद्रको यज्ञ करत हते तिनकों

निवृत्तकरिकें अपने आधीन किये तेसें अपनें सर्वात्माकरिकें प्रभूनमें सब निवेदन कियोहे तब चिंता करनी योग्य नहिंहे. तामेंहु श्रीयुक्त पुरुषोत्तमहें सो अपने स्वरूपानंदको दान करिकें भक्तनको पोषण करतहें तिनमें निवेदन कियो सो प्रभूननें अंगीकार कियोहे अथवा नहिं कियोहे ! एसी चिंता छोडनी कदाचित् कालभयादिक आयजाय तब वाको निवारण करिवेके लिये जीवस्वभावसूं अन्यविनियोग होय तोहु चिंता छोडनी एसें कहतहें जो प्रमादसूं एसें अन्यविनियोग होयजाय तोहु प्रभु नछोडेगें क्यों जो जीवस्वभावके वशसूं जीव एसें भयो तो हु वाको उद्धारकरिवेमें वाके साधनकी अपेक्षा नहिं राखतहें आपस्वतःहि समर्थहें, ओर सबनके दुःख तथा पापके हरणकरिवेवारेहें. ॥ ५ ॥

भगवाननें अंगीकार कियो होय तामें दूसरो
लक्षण कहत हैं.

श्लोकः—लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति ।
पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात्साक्षिणो भवताखिलाः ।६।

टीका—लौकिकवाणिज्यादिकनमें तथा वैदिकआश्रमधर्मादिकनमें भक्तनके दुःखहर्ता हरि स्वस्थता न करेंगें अर्थात् काया, वाणी तथा मनसूं आछीरीतिसूं स्थिति लौकिक तथा वैदिकमें होय तामें विघ्न होय इतनें लौकिक तथा वैदिक

कार्यहु यथार्थ न होय तहां वाको फल तो कहाँसूं होय ? क्यों जो प्रभु आप हरिहें सो अपने बलकरिकेंहि सब सिद्धकरि-वेवारेहें. तासूं पुष्टिमार्गमें अंगीकार भयो तब मर्यादाको सहन नहि करतहें. एसें लौकिक तथा वैदिकमें विघ्न होय तब कहा करनो ? एसी शंका होय तहां कहतहें जो साक्षिवत् सबभक्त होयजाओ इतनें लौकिक तथा वैदिकमें भगवान् कहा करतहें येहि देखनों; अर्थात् सप्तमस्कंधमें भगवदीय, गृहस्थके लक्षणमें लिख्यो हे जो " ज्ञातिके मनुष्य, माता, पिता, पुत्र, ओर दूसरे संबंधी जेसे कहे ओर जेसी इच्छा करे वामें ममता छोडिकें अनुमोदनहि करनो " ये वाक्यके अनुसार रहनो, एसें रहे सोहु भगवानके अंगीकारको लक्षण हे ॥ ६ ॥

लौकिकवैदिकमें विघ्न होय तोहु साक्षिवत् भगवानकी कृति देखनी, एसो उपदेश कियो ताकरिकेंआधिभौतिक, आध्यात्मिक, और आधिदैविक एसें तीनप्रकारको धैर्यहि साधनरूप कह्यो एसो सिद्ध होय हे तब इतनोहि कर्तव्य होय तब यथार्थ सेवा बनसके नहि तब निवेदनकी व्यर्थता होय ये हु धर्मकी हानिहे एसी चिंता होय ताकी निवृत्तिको उपाय कहतहें.

श्लोकः--सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया ।
अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम् ॥७॥

टीका-" जेसी उत्तम भक्ति देवमें होय हे तेसी भक्ति गुरुमे राखनी " एसें श्वेताश्वतरश्रुतिमें लिख्योहे तासूं गुरुकी आज्ञाप्रमाण सेवा करनी सो आत्मनिवेदीनको धर्महे सों जेसें साक्षिवत् रहिवेमें सिद्ध रहे तेसें साक्षिवत् रहनों परंतु सेवाकी विरुद्धतासूं साक्षिवत् नहि रहनों तामेंहु गुरुकी ईच्छासूं विरुद्ध प्रभूनकी इच्छा सेवामें होय तो गुरुकी इच्छाको बाध होय इतनें जाप्रमाण सेवा करिवेको गुरुनकी आज्ञाहे वाहिप्रमाण सेवा करनी ओर सेवामें सामग्रीप्रभृतिविषयमे अंतःकरणद्वारा, स्वप्नद्वारा अथवा साक्षात् भगवानकी विशेष आज्ञा होय तब गुरुनकी आज्ञाको बाध होय प्रभूनकी आज्ञाको बाध न होय, प्रभूनकी आज्ञाप्रमाण करिकें सेवा करनी, इतनें स्वधर्मकी हानि न होय, अर्थात् गुरुनकी आज्ञा सिद्ध रहें तेसें अथवा प्रभूनकी इच्छासूं गुरुनकी आज्ञाको बाध होय तेसें सेवाहि करनी; क्यों जो आत्मनिवेदीनकों सेवाहि मुख्यहे; तासूं सेवापरायण चित्त करिकेंहि रहनों तब पर्यवसानमें वाकों सुखहि होय ॥ ७ ॥

अल्प दुःख होय तब तो एसें साक्षिवत् रह्योजाय
परंतु महादुःख प्राप्त होय तब साक्षिवत् रहि-
सक्यो नजाय तब तो चिंता होय एसी
कोऊ शंका करे तहां कहत हैं.

श्लोकः-चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत्करिष्यति ।
तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिंतां द्रुतं त्यजेत् ॥८॥

टीका—जेसें प्रभासोयलीलामें यादवनकों शाप भयो सो भगवाननें लोकमर्यादारक्षणकेलिये मायिक रचना करीहे क्यों जो अगाडी यादवनकों नित्यसुख दियोहे तेसें भक्तनकों प्रारब्धादिरूप पाप हरिवेके लिये हरि "भगवान्" जोजो करें सो ऊपरसूं शुभ अथवा अशुभ दीखवेमें आवतो होय तामें चित्तकों उद्वेग होय सो उद्वेग करिकेंहि हरि जो जो करेंगें सो अपनो महत्पाप होयगो ताको नाश करिवेकेलिये हरिकी लीलाहे एसें मानिकें उद्वेग करिवेवारी अथवा उद्वेगसूं भई एसी चिंताकूं शीघ्रहि छोडे. क्यों जो बोहोत समय चिंता रहिवेमें काल, कर्म, ओर स्वभावकी प्रबलतासूं आसुरधर्म होयजाय तो फलमें प्रतिबंध तथा विलंब होय तासूं चिंताकूं शीघ्रहि छोडनी. ॥ ८ ॥

या नवरत्नग्रंथमें जितनो लिख्यो हे सो सब होयसकें नहिं एसो दीखे हे. क्यों जो श्रवणभक्तिको आरंभ करिकें सख्यभक्तिपर्यंत पहुंचे तब निवेदनकी वार्ताहे तहां निवेदनकी दिशा-तो अत्यंत दूर रही; तासूं निवेदनविषयकी चिंताको तथा अन्यविनियोग-विषयक चिंताको समाधान कियो सो व्यर्थ हे एसो विचारिकें साधन ओर फल एक करिकें सबनको समाधान कहतहें.

श्लोकः—तस्मात्सर्वात्मनां नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥९॥

टीका-ऊपर कही एसी रीतिसूं जीवनकों आपसूं सब होनों अशक्य हे तासूं सर्वात्माकरिकें "श्रीकृष्णः शरणं मम" एसें नित्य सर्वकाल बोलतेहि रहनों एसी मेरी मतिहे; इतनें भक्तिमार्गमें प्रवेश भयो तथा भक्तिमार्गमें रुचि भई तामें भगवानको अनुग्रहहि कारण हे, एसें भक्तिमें प्रवेश भये पीछेहि सेवामे प्रतिबंधको संभव होय तब प्रारब्ध तथा कालादिकसूंहि होय ताकी निवृत्तितो सबनके नियामक एसे प्रभूनसूंहि होय ओर तामें शरणागतिहि साधनहे, सो जीव प्रभुके शरण गयो होय और सब करिवेमें प्रभु ताकी अशक्ति देखें तब प्रभुहि सब सिद्ध करें, तासूं सर्वात्माकरिकें शरणागति होयगी तो प्रभुहि सब सिद्ध करेंगें ये गूढ अभिप्रायहे. तब प्रथमसूंहि शरणागतिको उपदेश क्यों नहि करयो, एसी शंकाकी निवृत्ति-केलिये सर्वात्माकरिकें शरणमंत्र कह्योकरनों एसो कह्यो हे, इतनें भक्तिमार्ग संबंधी जितनी बाबतहें तितनीं बाबतको विचार करिकें तामें प्रतिबंध तथा अपनी अशक्तिकों जब देखे तब सर्वात्माकरिकें शरणागति होय, निरंतर कह्यो करनों एसें बतायवेकेलिये मूलमे "नित्य" पद कह्यो हे, अंतःकरणमें तेसो भाव होय अथवा न होय तथापि तेसें बोलनो आवश्यक हे एसें जतायवेकेलिये सतत बोलनों एसें कह्यो हे. एसें कह्यो करें तामें लोककों शिक्षाहु होयजायहे; अथवा यह अष्टाक्षर मंत्र हमेशां कह्योकरनो ओर सेवापरायण होयकें रहनों एसोहु

अर्थ होय हे. येहु अपनसूं होयसके एसो नहिं हे एसी शंका होय तहां कहतहें जो एसी मेरी मति हे; इतने दशमस्कंधमें अक्रूरजीनें श्रीकृष्णकों कह्यो हे जो " आपके चरणारविंदके शरण में आयोहु सो आपको अनुग्रह हे एसें मानूंहुं " एसो वाक्यहे; तासूं भगवानको अनुग्रह होय तबहि जीव भगवानके शरण जाय, सो जो हमारे भक्त भगवानके शरण गये हैं, विनके ऊपर भगवानको अनुग्रह हे एसें समझिकें हमनें जो कह्यो हे, वा हिप्रमाण करनों एसें जतायो हे ॥ ९ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितनवरत्नकीसंक्षिप्त
भाषाटीका श्रीमद्गोस्वामि श्रीनृसिंहलालजी
महाराजविरचित समाप्त भई ॥

श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ अंतःकरणप्रबोधकी संक्षिप्त भाषाटीकाको प्रारंभ

श्रीआचार्यजीमहाप्रभूननें सेवाको उपदेश कियो ताके निर्दोषपनेकेलिये सिद्धांतरहस्यग्रंथ कर्‍यो तामें ब्रह्मसंबंध करिकें सेवाकरिवेवारेंनकों सर्वदोष अकिंचित्कर होयजायहें. ओर अगाडी दोषको संसर्ग नहिंलगेहे एसी भगवानकी आज्ञा भई ताको निरूपणकरिकें सेवाको आधिदैविकपनो सिद्धहोयवेके लिये नवरत्नग्रंथमें चिंताकी निवृत्तिको उपाय कह्यो ताकरिकें उद्वेगरूप प्रतिबंधको प्रकार निरूपण कर्‍यो ताप्रमाण सेवा करे तब भगवानको सानुभावपनो अवश्य होनो चहियें सो भयेतेंहू प्रारब्धादिकके वशसूं प्रथमके दोष[1] रहें तब छोटे पात्रमें वडी-कृपाको समावेश होय नहिं तब वाकों अपनी बडाईकी स्फूर्ति होय तब भगवानकी आज्ञाको भंग होयवेको हू संभवहे सो जब आज्ञाभंग करे तब भगवानकी अप्रसन्नता होय. परंतु भगवद्धर्मरूपसेवा हमेशां करतहे ताको नाश होय नहिं तथापि

---

१ सेवाकी आधिदैविकता सिद्ध भयेसूं भगवानको प्रागट्य ओर सानुभाव भयो तब यद्यपि दोष रहिवेको संभव नहिंहे तथापि विशेष कृपाको पात्र न भयो येहू दोषहे ऐसे अभिप्रायसूं दोष रहिवेको कह्योहे एसें समझनों.

भगवानको अपराध भयो होय तासूं पश्चात्ताप होय तब चिंता होयवेको संभव हे तब जो सेवा करेहैं तथा करेगें ताकों अधिदैविकीपनों नहिं होय, ताको निवृत्तिके लिये या ग्रंथमें विचाररूप साधनको उपदेश करिवेकूँ, तामें विश्वास होयवेके लिये बीचमें अपनी आख्यायिका कहिकें मनकी दुष्टवृत्ति उत्पन्न न होय तब एसी चिंता न होय एसें निश्चय करिकें अपने अंतःकरणकों बोध करिवेके मिषतें अपनो वाक्य श्रवण-करिवेके लिये अपने भक्तनके अंतःकरणकों सावधान करिकें कहतहें; तामें श्रीठाकुरजीनें अपनी वाणीके अधिपतिरूप श्रीआचार्यजीमहाप्रभूनको प्राकट्य करिकें श्रीभागवतको यथार्थ अर्थ प्रकट करिवेकी आज्ञा देकें श्रीआचार्यजीद्वारा श्रीसुबोधिनीजी (टीका) करवाई, तामें तृतीयस्कंधताई श्रीसु-बोधिनी भई तब भगवान् श्रीआचार्यजीके वियोगकूं सहन न करिसके तासूं अपनी पास पधारवेकी आज्ञा करी तब श्रीमहा-प्रभुनने स्कंधकों क्रम छोडिकें दशमस्कंधकी श्रीसुबोधिनीजी करी इतने फेर अपने समीपमें पधारवेकी भगवानकी दूसरी आज्ञा भई, तब संपूर्ण श्रीभागवतके ऊपर श्रीसुबोधिनीजी भई न हती तासूं दोय आज्ञाको उल्लंघन कियो तब भगवानकूं श्री-आचार्यजीके मिलनकी आवश्यकता होयवेसूं अति कृपायुक्त रोषपूर्वक अपने पास पधारवेके लिये तीसरी वेर आज्ञा भई तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी भगवानको आग्रह देखिकें प्रथम

दोय आज्ञाको उल्लंघन कियो हे सो श्रीभागवतकी टीका करिवेकी प्रथम आज्ञा भई हती ताकी दृढता अंतःकरणमें हती तासूं दोय आज्ञाको उल्लंघन कियो तब तीसरी आज्ञा भयेसूं भगवानको आग्रह जानिकें एसी दृढताको स्थानक अंतःकरणहि हे एसो दिखायवेकेलिये अंतःकरणकों प्रबोध करतहें.

श्लोकः—अंतःकरण ! मद्वाक्यं सावधानतया शृणु ।
कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम् ।१।

टीका—हे अंतःकरण ! सावधानतासूं मेरे वाक्यकों श्रवण कर. यहां साधारण अंतःकरण लिख्योहे. तासूं अपनो तथा दूसरेको अंतःकरण समझवेमें आवतहे, तथापि समाप्तिमें कह्योहे जो ये सुनिकें भक्त निश्चितपनेकूं प्राप्त होंय; तासूं भक्तनके अंतःकरणकों बोध करिवेके लिये हि अपने अंतःकरणके मिषसूं यह वाक्य कहेहें. एसें अंतःकरणकों सावधान करिकें. व्रज-भक्तनके दृष्टांतसूं अपने वैष्णव. भगवानकी आज्ञामें प्रमादयुक्त होय सो नहिं होयवेके लिये प्रथम भगवानकी बडाईकी भावना करिवेकों कहतहें जो लोक तथा वेदमें कहे एसे दोषनकरिकें विवर्जित जिनकों रासक्रीड़ा मिलेहे एसो व्रज-भक्तनको समूह श्रीकृष्णसों भिन्न नहिंहे तासूं विनको दृष्टांत लेयकें भगवानकी आज्ञामें प्रमाद नहिं राखनों. यद्यपि भगवानकी सेवामें सर्व इंद्रियनकों बोध करनो योग्यहे तथापि

जेसें राजा स्वाधीन भयेसूं सब राज्यके मनुष्य तथा प्रजा प्रजा स्वाधीन होयजाय तेसें मन हे; सो सब इंद्रियनको राजा हे तासूं मन वशमें आयवेसूं सब इंद्रिय वसमें होयजाय एसें जतायवेके लिये अंतःकरणकों हि बोध कियो हे. ॥१ एसें अपने अंतःकरणमें भावकी बडाइ आयजाय ताकी निवृत्ति करिकें जीवकूं दैन्यकी सिद्धि होयवेकेलियें जीव स्वभावसूं हीन हैं एसें जतायवेकों दृष्टांत कहतहैं.

श्लोकः—चांडाली चेद्राजपत्नी जाता राज्ञा च मानिता ।
कदाचिदपमाने वा मूलतः का क्षतिर्भवेत् ॥२॥

टीका—चांडाली होय सो कछुगुणकरिकें कदाचित् राजाकी पत्नी भई ओर दूसरी पत्नीकी अपेक्षासूं वाकूं मानयुक्त करी, फिर कछुक अपराध भयेसूं राजानें वाको अपमान कियो तामें मानहोयवेके मूळरुप राजपत्नीपनेसूं कहा क्षति होय हे ? इतने राजा विना ओर कोऊ वाकूं देख न सके स्पर्श न करसके ओर अन्यके विनियोगमें न आवे तथा राजपत्नीपनेकी बडाई इत्यादिक धर्म जो आये सो न्यून नहिं होय हैं. तेसें चांडाळ-जाति अपमानके कारणरूप हे तासूं वामें तो क्षति हेहि नहिं परंतु राजपत्नीपनेसूं हि क्षति नहिं हे यज्ञमें पतिके संग बेठिवे योग्य होय सो हि पत्नी कहिजाय हे; तासूं ये चांडाली राजाकी स्त्री भई तोहू पत्नी नहिं कहिजाय तथापि जेसें

पत्नी त्यागयोग्य नहिं हे तेसें ये हू त्यागयोग्य न होय एसें जतायवेके लिये यहाँ पत्नीशब्द कह्यो हे ॥ २ ॥ एसें दृष्टांत कहिकें सिद्धांतमें याकी बरोबरता जतायकें तेसी समझको फल कहत हें.

श्लोकः—समर्पणादहं पूर्वमुत्तमः किं सदा स्थितः ।
का ममाऽधमता भाव्या पश्चात्तापो यतो भवेत्॥३॥

टीका—सेवाके अधिकाररूप ब्रह्मसंबंध भयेके पहिलें में चांडालीवत् सर्वदोषसहित हतो तब कहा सर्व काल उत्तम हतो ? किंतु उत्तम नहिं हतो; जेसें चांडाली राजपत्नी भई तेसें में हू समर्पणसूं हि उत्तम भयो हूं. तासूं कदाचित् भगवानकी अप्रसन्नता होय तोहू मेरो अंगीकार कियो हे तासूं भगवान् सर्वथा मेरो त्याग न करेंगें ओर में अधम न होऊँगो. जेसें चांडाली राजपत्नी भई होय ताको राजा त्याग न करे ओर फिर चाँडाली न होय तेसे अब मेरी अधमता कहा होयवेवारी हे ? जासूं पश्चात्ताप होय. ईतनें राजाकी स्त्री राजकुमारी होय तब ताको अपमान होय तो पश्चात्ताप होय, क्यों जो दोउ समान हें परंतु चांडालीकों राजाने राजपत्नी करी फिर ताको अपमान होय वामें वाकों पश्चाताप करनों योग्य नहिं हे तेसें जीव अत्यंत हीन हतो ताको अंगीकार करिकें भगवदीय कियो तब वाकों भावकी बडाई होयवेसूं अभिमान भयो तब प्रभु

अप्रसन्न भये तामें जीवकी मानहानि कहा हे ? जो पश्चाताप होय ! तासूं पश्चाताप न करनो. ॥ ३ ॥

एसें जीवके स्वरूपकों देखिकें विचारको उपदेश करिकें भगवानकी इच्छा कोई मिटायसकें एसें नहि हे एसो अनुसंधान रहिवेके लिये भगवानके धर्मको विचार करिकें उपदेश करत हैं.

श्लोकः—सत्यसंकल्पतो विष्णुर्नान्यथा तु करिष्यति ।
आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहोऽन्यथा भवेत् ॥४॥

टीका—भगवान् विष्णुहें इतनें बाहिर—भीतर सर्वत्र व्याप्तहें तासूं अपने अंतर्यामिपनेसूं सबनके भीतर प्रविष्ट हें और सत्यसंकल्पहें सो अपनो जो सत्य संकल्प हे तासूं दुसरेप्रकार करिकें तो न करेगें जेसो संकल्प होयगो तेसें हि करेगें. अथवा भगवान् सत्यसंकल्प हें तासूं अन्यथा न करेगें इतनें फलदानमें विलंब न करेगें; तासूं सर्वदा प्रभूनकी आज्ञाके अनुसार सब करनो जो एसें न करे तो स्वामिद्रोहरूप बडो अपराध होय ॥ ४ ॥

सेवकपनेके विचारके अनुसार अपनो धर्म करिवेसूं
स्वामिपनेके विचारके अनुसार प्रभु अपनो
धर्म करेगें ये कहत हें.

श्लोकः—सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति ।

टीका—जो ऊपरके श्लोकमें सेवकको धर्म कह्यो हे सोई

वाको धर्म हे सो धर्म जो तोमें होय तो अपने स्वामी जो प्रभु सो हू अपने स्वामीपनेको जो धर्म हे सो सेवकमें करेंगें, अथवा प्रभु अपने स्वामी हैं आपन विनके सेवक हें तासों अपनें विनके आत्मीय हें तासूं जो जो भगवाननें विचारयो होयगो सो अपने हितको हि होयगो और सोहि करेंगें एसे समझनों येहि सेवकको तो धर्म हे ॥

अपनें प्रभुके सेवक हैं एसो विचार अवश्य करनो चाहिये' एसें जतायवेकेलिये दो-श्लोककरिकें अपनी अख्यायिका कहत हैं.

श्लोकौः—आज्ञा पूर्वं तु या जाता गंगासागरसंगमे॥५॥
याऽपि पश्चान्मधुवने न कृतं तद्वयं मया ।
देहदेशपरित्यागस्तृतीयो लोकगोचरः ॥६॥
पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं न चान्यथा ।

टीका—प्रथम गंगासागरसंगमके प्रदेशमें जा आज्ञा भई हती ओर तापीछे मथुराजीमें जो आज्ञा भई सोई आज्ञा प्रमाण मेनें नहि कियो हे क्यों जो प्रभूनके स्वरूपको अनुभाव प्रकट करिवेके लिये तथा श्रीभागवतको गूढार्थ प्रकट करिवेके लिये तो मोकूं पूर्वसूहि आज्ञा भई हे तासूं इनदोउआज्ञानको उल्लँघन कियो हे; क्यों जो प्रथम आज्ञा देहके परित्यागविषयकी भई हती, ओर दूसरी आज्ञा देशके परित्यागके विषयकी हती सो

दोउ आज्ञा सिद्ध करतो तो स्वात्मानुभाव तथा श्रीभागवतको गूढार्थ प्रकाश करिवेकी आज्ञा सिद्ध न होती. अब लोकके अनुभवमें आवे एसो परित्याग (संन्यास) करिवेकी तीसरी आज्ञा भई तामें मोकूं पश्चात्ताप भयो; क्यों जो में सेवक हूं. तासूं स्वामीकी आज्ञाप्रमाण करनो योग्य हे; परंतु स्वामीकी आज्ञाको उल्लंघन करनो योग्य नहिं हे, एसो विचार करतें पश्चात्ताप होनो योग्य हे. अथवा (संन्यासग्रहणपूर्वक गृहको परित्याग करिवेकी आज्ञा भई ताप्रमाण संन्यासग्रहणपूर्वगृहको परित्याग कियो. यद्यपि होय आज्ञाको उल्लंघन कियो हे; तासूं अपराध होयवेकों संभव हे. तथापि तृतीय आज्ञाप्रमाण त्याग कियो हे, तासूं प्रथमकी दोयआज्ञाहू सिद्ध भई एसें मानिकें पश्चात्ताप करनो योग्य नहिं हे. कदाचित् दोआज्ञाको हू उल्लंघन कियो हे ताकरिकें जो अपराध भयो हे, तासूं प्रभु फलमें विलंब करें तो हू ये फलको विलंब कियोहे सोहि दंड दियो हे एसो जानिकें सेवकको पश्चात्ताप करनो योग्य नहिं हे. ओर में सेवक हूं अन्यथा नहिं हूं, क्यों जो मेरेमें प्रभु सेवकपनो नहिं मानते तो अपराध भयो तासूं उपेक्षा हि करते, स्वीयपनो जानिकें तीसरी आज्ञा न करते, परंतु तीसरी आज्ञा करी हे, ओर दोय आज्ञाको उल्लंघन भयो तासूं फलमें विलंब होयगो एसो ताप होय हे तासूं प्रभूननें ये अपनों सेवक हे एसें मान्यो हे तासूं पश्चात्ताप करनो योग्य

नहिं हे. ॥ ५ ॥ ६ ॥

ये विचार कियो जो पश्चात्ताप न करनो सो तो योग्य हि हे, तथापि प्रथम दोय आज्ञाको उल्लंघन भयो हे, सो अपराध भयो हे; ताकरिकें भगवानकी अप्रसन्नता भई होयगी ताकी निवृत्ति न होय, तब प्रभु कहा करेंगे ? एसो जो भय होय सो केसें निवृत्त होय ? ऐसी शंका होय ताकेलिये दूसरे विचारको उपदेश करत हें. ॥

श्लोकः—लौकिकप्रभुवत्कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन ॥७॥

सर्वं समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखी भव ।

टीका—लौकिक स्वामी जेसें सेवकको अपराध भयो होय तो वाको त्याग करत हे, तेसें प्रभु अपनो त्याग करेंगें एसो संदेह नहिं करनो एसें जतायवेके लिये कहत हें जो लौकिक-स्वामिवत् फलरूप श्रीकृष्ण काहूदिन नहिं जानने; इतनें लौकिकमें स्वामिपनेको व्यवहार हे सो स्वामी प्राकृत होयवेसूं वाकों अंगीकृतको परित्याग (करे सो) संभवित हे; परंतु यहां तो प्रभुको अलौकिक स्वामिपनो होयवेसूं विनको अंगीकार कालत्रयमें हू नित्य हे अंगीकृतको त्याग करिवेकी संभावनाहू नहिं हे ओर तेरेउपर प्रभुकी कृपा हती तासूंहि तेने भक्तिमार्गके अनुसार सर्व समर्पित कियो हे, ईतने तुं कृतार्थ हे अर्थात् सर्व साधनरूप तथा फलरूप अर्थकूं प्राप्त भयोहे तासूं

मनमें चिंता छोडिकें सुखी हो ॥ ७ ॥

भगवानको अंगीकार नित्यहे तासूं यद्यपि फल देयँगे तथापि प्रथम फल दियो हतो तेसें देयँगे किंवा नहीं देयँगे ? यसे संदेहसूं जो क्लेश होय ताकी निवृत्तिके लिये दृष्टांत करत हें.

श्लोकः--प्रौढाऽपि दुहिता यद्वत्स्नेहान्न प्रेष्यते वरे ॥८॥
तथा देहे न कर्त्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा ।

टीका-जेसें पुत्री बडी भई होय अर्थात् पतिके सर्वकार्यमें योग्य भई होय तथापि मातापिताकूं वाके उपर स्नेह होय तासूं एसें जाने जो ये बालकहे ओर वाके पतिके घरमें कार्य विशेषहे सो करिवेमें थकजायगी अथवा क्लेशयुक्त होयगी, एसें जानिकें वाके उपरके स्नेहसूं वाके पतिके समीप भेजे नहिं तब वाको पति अप्रसन्न होय तेसें अपने देहमें स्नेह राखिके प्रभुको कार्य (सेवा) करिवेमें देहकूं क्लेश होयगो, एसें जानिकें प्रभुके कार्यमें देहको विनियोग न करे तो प्रभु अप्रसन्न होय; तासूं देहमें तेसो स्नेह न करनो; क्यों जो पुत्री बडी भई ताकूं वरकी पास न पठावे तो जेसें वर प्रसन्न न होय तेसें देहकी ऊपर स्नेह राखिकें भगवानकी सेवामें देहकूं न लगावे तो भगवान् प्रसन्न न होय ॥ ८ ॥

यद्यपि भगवानकी आज्ञामें हठ करनो योग्य नहिं हे तथापि श्रीभागवतकोअर्थ प्रकटकरिवेको भगवानको अभिप्राय हे तात्पर्य अर्थ प्रकटकरिवेतें लोकमें बडाई होय तासें

कदाचित् थोरीवहोत फलदेवेमें विलंबकी इच्छा
संभवे हे; क्योंजो श्रीभागवतको अर्थ प्रकट करें
तामें प्रभूकेपासपधारिवेमें विलंब होय; तासूं
श्रीभागवतको अर्थ प्रकटकरिवेको प्रभूनको
अभिप्रायहे तापैसूं विलंबेच्छाको संभवहे.
ऐसी शंकाको निराकरण करतहें

श्लोकः-लोकवच्चेत्स्थितिर्मे स्यात्किं स्यादिति विचारय।
अशक्ये हरिरेवास्ति मोहं मागाः कथञ्चन ॥९॥

टीका-लोकवत् मेरी स्थिति जो होय तो कहा फल होय? सो विचारकर. ओर जहां अशक्य होय तहां प्रभु हरि हि हैं; अर्थात् भक्तनके दुःख तथा पापकूं हरिवेवारे हैं तासूं काहू-प्रकारसूं मोहकूं प्राप्त मतिहो; इतनें भगवानकू अभिप्रेत श्री-भागवतको अर्थ प्रकटकरिवेतें यद्यपि लोकमें वडाई होय. जेसें जैमिनि तथा व्यासादिकननें वेदसूं अविरुद्ध मीमांसा करी तामें विनकी लोकमें बडाई भई, तेसें मेंहु वेदादिकनसूं अवि-रुद्ध एसो श्रीमद्भागवतको अर्थ प्रकट करूं तामें जैमिनि तथा व्यासादिकवत् मेरीहू बडाई होय. परंतु ये तो लौकिक बडाई हे, कछू स्वमार्गीय अलौकिक बडाई नहिं हे. ओर स्वमार्गीय फलको विचार करें तब मुक्ति विगेरें फल हू फलरूप नहिं हे, तहां लौकिक फल तो गिनतीहूमें कहा हें? एसें विचार कर. अथवा लोक जेसें संसारमें आसक्त हें ओर जुदे जुदे स्वभाव-वारे में सो अपनें स्वभावके अनुसार शास्त्रादिककरिकें चलत

हैं तेंसें मेरी स्थिति होती तब एसो पश्चात्ताप नहिं होता तब कहा फल मिलतो ? लोकतुल्य मेंहू होतो; परंतु लोकजेसी मेरी स्थिति नहिं भई हे तासूं मेरे उपर भगवान् दया करत हैं. एसो विचार कर. ओर भगवाननें आज्ञा करी हे ताप्रमाण होयसके नहिं एसें दीखतो होय तो भगवान् हरि हैं; इतनें स्मरणकरिवेवारेनके सबपापनके हर्ता हैं. सो अपनें हू रक्षक हैं एसो विचार कर. परंतु काहूरीतिसूं मोहकों मति प्राप्त हो. ॥ ९ ॥

पसें सब बिचारके बाक्य कहिकें
समाप्त करत हैं.

श्लोकः-इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः।१०।
चित्तं प्रति यदाकर्ण्य भक्तो निश्चिततां व्रजेत्।११।

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितोऽतःकरण-
प्रबोधः समाप्तः ॥

टीका-एसें श्रीकृष्णके दासकों सुखसंपादनकरिवेवारे, भगवान् तथा भक्तनके प्रिय एसे श्रीमद्वल्लभाचार्यजीको चित्तकप्रति वचन हे, जो सुनकें भक्त निश्चितपनेकों प्राप्त होय. ॥ १० ॥ ११ ॥

याग्रंथमें इतनो सिद्ध भयो जो श्रीआचार्यजी-महाप्रभूननें जेसें भगवानकी आज्ञाको उल्लंघन कियो तेसें वैष्णवनकूं श्रीआचार्यजीको दृष्टांत लेयकें भगवानकी आज्ञाको उल्लंघन नहिं करनों.

जीव जो हे सो स्वभावसूंहि दुष्ट हे, तथापि, समर्पणासूं उत्तम होय हे; तासूं भगवानकी कृपा विशेष होय तोहू अपनी बडाई न माननी, भगवान् सत्यसंकल्प हें, सो कहा करिवेकी इच्छा करत हें? सो जानिवेमें नहिं आवत हे; तासूं सर्वदा विनकी आज्ञाहिमें रहनों, जो आज्ञाको उल्लंघन होय तो स्वामिद्रोहरूप बड़ो अपराध होय ओर में सेवक हों तासों मेरे योग्यहि मेरे स्वामी करेंगें, एसो विचार करिकें सेवककूं स्वामीकी आज्ञाहिमें रहनो. श्रीआचार्यजीनें अपने प्रौढ़ीकरकें दोयआज्ञाको उल्लंघन कियो तामें पश्चात्तापहि कह्यो हे; तासूं अपनें आज्ञाको उल्लंघन करनों नहिं, लौकिकस्वामी जेसें अपराधकरिकें सेवकको त्याग करे हे तेसें भगवान् सेवकको नहिं छोड़ेंगें. भगवानको अंगीकार नित्य हे सो समर्पणादिकनकूं सिद्ध भयो तब कृतार्थताहि होयगी, एसी भावना राखनीं, वांमें संदेह नहिं करनो. ओर प्रौढ़पुत्रीमें स्नेह जेसें राखेहें तेसें देहमें स्नेह नहि राखनो, प्रभुके विनियोगमें लगावनो क्यों जो प्रौढ पुत्री वरके पास भेजवेयोग्य हे तथापि वाकूं स्नेहकरिकें वाके वरके पास भेजे नहिं तो वर प्रसन्न होय नहिं तेसें देह प्रभूनकी सेवाके योग्य हे तथापि याकूं

श्रम होयगो एसें विचारकें देहके ऊपर स्नेह राखिकें प्रभूनकि सेवामें राखे नहिं तो प्रभु प्रसन्न होय नहिं, तेसें अपनी सेवाके लिये प्रभूननें देह दियो हे ओर प्रभूननें अंगीकार कियो हे, तथापि जो सेवा न करे तो दूसरेलोककी बराबरी अपनकूं होय, ओर सेवामें देहको विनियोग करिवेमें प्रतिबंध आयवेको संभव होय तो भगवान् हि रक्षकहें एसी भावना राखनी. या विना दूसरो उपाय नहिं हे ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचित अंतःकरणप्रबोधकी संक्षिप्तव्रजभाषाटीका श्रीमद्गोस्वामिश्रीनृसिंह-लालजीमहाराजकृत संपूर्ण भयी.

श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ विवेकधैर्याश्रयग्रंथकी संक्षेपसूं भावार्थटीका लिखी हे ॥

भक्तिमार्गमें अंगीकारभयेसूं जीव, भगवानके दासपनेकूं प्राप्त भयो ओर भगवत्सेवामें प्रवृत्त भयो; तब सेवाकरिकें भक्तिकी दृढता होयवेके लिये नवरत्नग्रंथमें प्रकार कह्योहे ताप्रमाण त्याग करिवेको निरूपण करिवेमें यद्यपि विवेक, धैर्य ओर आश्रय संक्षेपसूं कह्योहे तथापि जबताँई विवेकादिकनको विशेष ज्ञान न होय तबताँइ सेवामें तेसी दृढता होंय नहिं; तासूं अपने सेवकनकूं विशेष दृढता होयवेकेलिये श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी विवेक, धैर्य ओर आश्रयकों विस्तारसूं निरूपण करतहें

श्लोकः—विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये तथाऽऽश्रयः ।
विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति ॥ १ ॥

टीका—विवेक ओर धैर्य सर्वदा राखने तेसें येदोउनकी सिद्धिकेलिये आश्रय हू सर्वदा राखनो; तामें प्रथमविवेक तो यही हे जो प्रभु हरिहें; अर्थात् भक्तनके दुःख तथा पापकों

हरिवेचारे हैं एसें समजनो सो प्रथम विवेक हे; इतने अपने प्रयत्नसूं सिद्ध होय एसो लौकिक ओर भगवत्सेवामें उपयोगमें आवे एसो अलौकिक सब भगवानहि सिद्ध करगें तासूं सेवा छोडिकें अपनो प्रयत्नादिक नहिं करनो सो प्रथम विवेक हे. येहि नवरत्नमें "चिंता काऽपिन कार्या" याश्लोकमें निरूपण कियोहे. तहां शंका होय जो प्रार्थना किये विना भगवान् केसें सिद्ध करेगें ? तहां कहत हैं जो प्रभु अपनी इच्छासूं करेगें अथवा अपने भक्तनकी विकाररहित इच्छा होयगी तो भक्तनकी इच्छाप्रमाण करेगें एसें समझनो; तासूं अपने भक्तनकूं जो इच्छितहे तामे विकार नहिं होयगो तो भक्तनको अभीष्ट प्रभु अपनी इच्छासूंहि सिद्ध करेगें प्रार्थनाकी अपेक्षा नहिं राखेगें; तातें प्रार्थना नहिं करनी ये द्वितीय विवेकहे. येहि "सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा" ये नवरत्नके श्लोकमें निरूपण कियोहे. ॥ १ ॥

बारंबार प्रार्थना क्यों नहिं करनी ? एसें
जानिवेकी इच्छा होय तहां कहत हैं.

श्लोकः—प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् ? स्वाम्यभि-
प्रायसंशयात् ।
सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च ॥२॥

टीका—प्रार्थना कियेतें कहा होय ? कछुभी न होय; क्यों

जो स्वामिको अभिप्राय कहाहे ? सो अपन नहिं जानेंहें. भगवान् अपनी इच्छासूंहि देयँगें इच्छा नहिं होयगी तो नहिं देयँगें; तासूं प्रार्थना करिकें स्वधर्मकी हानि क्यों करनी ? एसें समजनों सो तृतीय विवेकहे. सबस्थलनमें सर्व वस्तु भगवानकीहीहे ओर जो वस्तु न होय सो सिद्धकरिवेको सामर्थ्य हू भगवानमें हें तेसें जाकूं जो वस्तु अपेक्षितहे सो साक्षात् अथवा परंपरासूं प्रभुहि देतहें परंतु जीव अज्ञानीहे सो मेनें यत्नकरिकें सिद्ध करी एसें मानतहे; तासूं जीवकूं एस समजनो जो मैं शरण नहिं आयो हतों तब मेरी पास जो वस्तु हती सोहू प्रभुननेहि दीनी हती, तब अभीतो प्रभूनने मेरो अंगीकार कियोहे तासूं प्रार्थना कियेविनाही प्रभुही देयँगें एसो निश्चयकरिकें सेवाही करनी; परंतु सेवा छोडिकें अपनो प्रयत्नादिक नहिं करनो. सो चतुर्थ विवेकहे. ॥ २ ॥

यहां एसी शंका होय जो कछुक समय सेवा करनी ओर बाकीके समयमें दूसरो कार्य करे तो कहा दोष हे ? तहां कहतहें.

श्लोकः-अभिमानश्च संत्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात् ।
विशेषतश्चेदाज्ञा स्यादंतःकरणगोचरः ॥३॥
तदा विशेषगत्यादि भाव्यं भिन्नं तु दैहिकात् ।

टीका-स्वामिके आधीन सबहे एसी भावनासूं वासनासहित

अभिमानको त्याग करनो; इतने याको अभिप्राय यहहे के समर्पण भये पीछें देहादिकनमें अपनेपनको अभिमान नहिं राखनो; क्यों जो देहादिकनमें स्वतंत्रता करिकें अभिमान होय तो तिनमें देह तथा इंद्रियनको विनियोग होय; तासूं तिनदेहादिकनमेसूं अभिमानको त्यागकरिकें देहादिक सब भगवानमें अर्पित कियेहें तातें सब भगवानके आधीनहें एसी भावना करनी ओर जब एसी भावना भयी तब केवल भगवानके आधीनपनेको अनुसंधान सर्वदा रहे इतने भगवत्कार्यविनाके ओर सब कार्यनमें दोषकी स्फूर्त्ति होयगी ताकरिकें अपने स्वामी जो भगवान् तिनसंबंधिकार्यनमेंहि स्वधर्मपनेकी स्फूर्ति होयगी इतने वह वैष्णव प्रभुसेवाहि करेगो, दूसरेमें दोषरूप बुद्धि होयवेसूं दूसरो कार्य करेगो नहिं. ये पंचम विवेक हे. येहि नवरत्नमें " निवेदनं च स्मर्त्तव्यम् " याश्लोकके विवरणमें श्रीगुसांइजीने निरूपण कियोहे. अपनो अंगीकार जेसें प्रभूनने कियोहे तेसें स्त्री, पुत्रादिक सबनको अंगीकार अपने संगहि प्रभूनने कियो हे तासूं तिनकेलियेहू अपनो प्रयत्नादिक नहिं होयगो. येहि नवरत्नमें " चिंता कापि " याश्लोकके व्याख्यानमें " लौकिकी तथा अलौकिकी चिंता छोडनी " एसी पंक्तिसूं निरूपण कियोहे. एसें श्रीआचार्यजी -महाप्रभूनकी आज्ञानुसार विवेकादिकनसूं सेवा करनो होय तामें प्रभूनकूं अपेक्षित वस्तु होय ताकी आज्ञा श्रीआचार्यजीकी

आज्ञासूं विशेष होय तो प्रभूनकी आज्ञाप्रमाण विशेष करनो ओर जो विशेष आज्ञा होय नहिं तो श्रीआचार्यजीकी आज्ञानुसारहि सेवा करनी. प्रभूनकी विशेष आज्ञा केसें जानिवेमें आवे ? एसी शंका होय तहां कहतहें जो (प्रभु अंतःकरणगोचरहें इतने अंतर्यामीहें तासूं) अंतःकरणमें जानिवेमें आवे एसी आज्ञा होय; अर्थात् स्वप्नादिद्वारा प्रभु जतावें अथवा भक्तनके अंतःकरणमें प्रभु बिराजतहें तासूं आत्मापनेसूं हि भक्तनकूं स्फूर्त्ति रहेहे इतने भगवानकी आज्ञाहु जानिवेमें आवतहे. ॥ ३ ॥

भगवानके स्वरूप तथा लीलाके संबंधमें प्रभूनकी विशेष आज्ञा होय तो ताप्रमाण सेवामें कृति करनी, नहिं तो श्रीआचार्यजीकी आज्ञानुसारहि करनी; सो प्रभूनकी विशेष आज्ञाहु अपने देहादिकके संबंधसूं भिन्न होय तब वाआज्ञा-प्रमाण विशेष करनो; इतने स्त्रीके संबंधको अथवा पुत्रादिकके विवाहादिकके संबंधको जो कार्य होय तामें विशेष आज्ञा होयवेको संभवहू नहिं सो मूलमें भिन्नपदसूं जतायो हे. येहि निरूपण नवरत्नमें "सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया" याश्लोकमें कियो हे; तासूं समर्पण कियेपीछें तदीयपनेको अनुसंधान राखिकें प्रभूनके प्रसादपनेसूं जितनो आवश्यक होय तितनोहि लौकिक सब करनों परंतु आग्रहकरिकें विशेष नहिं करनों ये छट्टो विवेकहे.

सेवामें धनप्रभृति चहिये सो न होय तब
करज करिकें सामग्रीप्रभृति सब
करिवेको आग्रह राखनों के
नहिं ? एसें जानिवेकी इच्छा
होय तहां कहतहें.

श्लोकः—आपद्गत्यादिकार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा ॥४॥
अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम् ।
विवेकोऽयं समाख्यातो धैर्यं तु विनिरूप्यते ॥५॥

टीका—आपत्ति प्राप्त होय तब प्रथम जो सामग्रीप्रभृतिको नियम बांध्यो होय ताहिप्रमाण करिवेको हठ सर्वथा छोडनो; इतने करज करिकें नियमानुसार सब करनोहि एसो हठ सर्वथा नहिंकरनो किंतु विना प्रयत्न जो मिले तामें संतोष राखिके तितनोहि प्रभूनकों अर्पण करनो विशेषको आग्रह नहिं राखनो; क्यों जो पुष्टिमार्गकी मर्यादातूं प्रभूनकूं भक्त जो समर्पेंगो सो प्रभु साक्षात् अंगीकार करेंगें. जहां प्रभुसंबंधिकार्यमेंहु हठ नहिं करनो तहां लौकिककार्यमें हठ सर्वथा नहिं करनो तामें तो कहा कहेनो ? ये सप्तम विवेकहे ॥४॥

वैदिककार्यमें केसें करनो ? एसें जानिवेकी इच्छा होय तहां कहतहें जो स्मार्त्त तथा वैदिक सर्वस्थलनमें आग्रह नहिकरनो; इतने भगवत्सेवाकूं छोडिकेंहु स्मार्त्तश्रौतादिकधर्मनको आचरण करनों एसो आग्रह सर्वथा नहिंकरनो. किंतु

भगवानकी आज्ञासूं प्राप्तभयो जो आवश्यक कर्महे सो सेवाके अनवसरमें करनो. मूलमें चकारहे तासूं साक्षात् भगवानको संबंध जामें न होय एसे सबकार्यनमें अनाग्रहहिं राखनो ये अष्टम विवेक हे. वैदिकधर्मनमें अनाग्रह केसें होय ? एसें जानिवेकी इच्छा होय तहां कहतहें जो धर्म ओर अधर्मको अग्रदर्शन करनो; इतने परिणामको विचार करनो सो याप्रमाण के जेसें श्रौतस्मार्तादिक धर्म ओर ये नहिं करिवेतें पाप लगे सो अधर्म ताको परिणाम विचारिकें जाके परिणाममें अधर्म दीखवेमें आवे सो नहिंकरनो. जेसें स्मार्त्त, श्रौत ओर भगवद्धर्म तिनमें उत्तरोत्तर बलवान्हे तासूं—श्रौत (वैदिक) धर्म करिवेमें स्मार्त्त धर्मको त्याग होय तामें दोष नहिंहे, तेसें भगवद्धर्म करिवेमें स्मार्त तथा श्रौतधर्मको त्याग होय तो दोष[1] नहिंहे; क्यों जो सबसूं अधिकबलवारो भगवद्धर्महे एसें विचारिकें स्मार्त्त तथा श्रौतधर्मनमें आग्रह नहिंकरनो ये नवम विवेक हे. भगवानकी आज्ञा हे जो कर्म

---

१ यहां स्मार्त्त तथा वैदिकधर्मको त्याग होय तामें दोष नहिंहे एसें कहिवेको अभिप्राय एसोहे जो सर्वकाल भगवद्धर्ममें रहतो होय ताकूं स्मार्त्तादि*धर्ममें जितनो समय जाय तितनो समय भगवद्धर्म छुटे तब एसेभक्तके मनमें क्लेश होय तासों स्मार्त्तादिकधर्मको फलहोय नहिं ओर भगवद्धर्म छोडिकें स्मार्त्तादिकधर्म करे तोहू ताको फल न होय ओर उलटो पाप लगे ताकरितें निरंतर भगवद्धर्मेही मग्न जो रहतो होय ताकूं स्मार्त्तादिक धर्म छूटजाय तो हरकत नांहिं.

करनों ताकूं यामार्गमें प्रमाण नहिंमानेंहें एसी काहुकूं शंका होय सो नहिंहोयवेके लिये भगवद्भक्तनकूं कर्मादिक करनोहे एसें जाननों. यह विवेक विस्तारसूं कह्यो अब धैर्यको निरूपण विस्तारसूं कहतहें; इतने नवरत्नमें "चित्तोद्वेगं विधायापि" ये श्लोकमें धैर्यको निरूपण कियोहे; परंतु अब विस्तारसूं निरूपण करतहें. ॥ ५ ॥

अब धैर्यको लक्षण कहतहें.

श्लोकः—त्रिदुःखसहनं धैर्यमामृतेः सर्वतः सदा ।
तक्रवद्देहवद्भाव्यं जडवद्गोपभार्यवत् ॥६॥

टीका—मरणजेसो कष्ट आयजाय तहाँताँई अथवा आयुष्य रहे तहाँताँई आधिभौतिकादिक तीन्योप्रकारके दुःखनकों सबतरहेसूं सहन सदा करनों ताको नाम धैर्यहे, इतने देहसंबंधी जो दुःख होय सो आधिभौतिक, कामादिकनसूं इंद्रियसंबंधि जो दुःख होय सो आध्यात्मिक ओर जीवमें कितनोंक धैर्यहे एसें परीक्षाके अर्थ अथवा दुःख भुगतवेको जीवको प्रारब्ध होय ताके अर्थ भगवदिच्छासूंहि दुःख प्राप्त होयहे सो अथवा प्रभूनकूं विनियोगकरिवेकेलिये जा वस्तुकी अपेक्षा होय सो वस्तु मिलिवेमें विलंब होय ताकरिकें जो दुःख होय सो आधिदैविक दुःख समजनो; ये तीन्योप्रकारके दुःख होय तब देह, इंद्रिय ओर चित्त व्याकुल होय तब सेवा सिद्ध न होय; तासूं सेवाकी सिद्धिके लिये तीन्योप्रकारके

दुःखकों सहनकरनों सोहू मरणपर्यंत कष्ट आयपरे तहाँतांई अथवा आयुष्य रहे तहांतांई सहनकरनों; सोहु एकप्रकारके अथवा दोयप्रकारके दुःखकों सहनकरनों एसें नहिं किंतु सबतरेहके दुःखनकों सहनकरनों तामें दृष्टांत कहत हैं जो तक्र (छाछ) मेंसूं नवनीत (मांखण) निकासलेहें तब तक्र साररहित होयजायहे. पिछे ढुलजाय तो जेसें वामें अभिमान नहिं होय वेसूं दुःख नहिं होय हे तेसें देहके संबंधीनमेसूं तक्रकिसीनांइ अभिमान छोडिवेसूं वे अपमानादिक करेंगें ताको दुःख नहि होयगो एसे अभिप्रायसूं देहवारेनकूं वाके संबंधी जो स्त्रीपुत्रादिक तिनमें तक्रकी भावना राखिवेको कह्यो हे; इतने देहादिकनसूं जो भगवत्संबंधि कार्य होय सोहि नवनीत (मांखण) हे एसें समजकें भगवत्संबंधि-कार्यनमेंहि नवनीतवत् अभिमान राखनों एसें आधिभौतिक दुःख सहनकरिवेमें दृष्टांत कहिकें आध्यात्मिकदुःख सहनकरिवेमें दृष्टांत कहतहें जो कामक्रोधादिकनसूं इंद्रियसंबंधि जो दुःख होयहे तामें जडभरतकी भावना करनी; इतने जडभरतकूं जेसें भगवद्भावकरिकें आविष्ट सब इंद्रिय भयी हती तासूं दुःखको भान नहिं हतो ओर जडपनो भयो हतो तेसें सेवामें जो प्रवृत्त भयोहोय सो, सब इंद्रिय भगवत्संबंधि हैं एसो अनुसंधान राखिकें भगवान-मेंहि विनियोग करे तब निरंतर प्रभूनकी सेवा तथा गुणनके

कीर्तनस्मरणादिकनकोहि आवेश रहे इतने कामक्रोधादिकनको दुःख न होय एसे अभिप्रायसूं जडकी भावना करिवेको कह्यो हे. एसें आध्यात्मिकदुःख सहनकरिवेमें दृष्टांत कहतहें जो प्रारब्धके भोग भुगतायवेकी प्रभूनकी इच्छा होय अथवा परीक्षाके अर्थ प्रभु फलदेवेमें विलंब करें तब गोपाभार्यानकी भावना करनी; इतनें जेसें अंतर्गृहगतानकूं सकामबुद्धि हती तासूं दुःख भुगतवेको प्रारब्ध हतो सो, प्रभूनके संग रासमें मिलवेके फलके विलंवमें कारण भयो तातें गृहमेंसूं निकसिवेको रस्ता मिल्यो नहिं तब नेत्रमूंदिकें प्रभूनको ध्यान कियो तब प्रभूनके विरहको दुःख एसो भयो जो कोटानकोटीवर्षताँई कुंभीपाकादिकनरक भुगतवेमें जितनो दुःख होय तितनो दुःख विनकूं भगवानके विरहसूं एक क्षणमें भयो सो भुगत्यो तब पापनकी निवृत्ति होयवेसूं ध्यानमें प्रभु पधारे तब प्रभूनको आश्लेष कियो तामे एसो सुखभयो जो कोटानकोटि वर्षताइ स्वर्गादिक भुगतवेमे जितनो सुख होय तितनो सुख भगवानके आश्लेषसूं एकक्षणमें भयो तापाछें सगुणदेहको परित्याग भयो तब भगवानकी प्राप्ति भई तेसें मोकूंभी प्रारब्धभोग भयेपिछे भगवान् फल देहिगें एसे धैर्यसूं दुःख सहनकरनों. तेसें जिनको निर्गुण देह हतो तिनकूं प्रतिबंध न भयो ओर भगवानकी पास पहोंचे तब प्रभूनने घर जायवेकेलिये कितनेक वचन कहे तासमय यज्ञपत्नीवत् अन्यथाभाव जेसें विनकों

न भयो किंतु जो इच्छा मनमें हती सो पूर्ण नहिंहोयवेको संभव भयो ताके दुःखकों सहनकरिके धैर्यसूं भक्तिमार्गके अनुसार उत्तरहि दियो परंतु गृहगमनकी इच्छाहू न भयी तेसेंहिसांप्रतहू विलंबजनितदुःखकों सहनकरिकें निरवधि-स्नेहसूं मार्गकी मर्यादामें रहिवेसूं भगवान् फल देहिगें; एसो धैर्य राखिकें दुःखकों सहनकरनों. ॥ ६ ॥

अबइहांतो आधिभौतिकदुःख सहनकरिवेमें देहादिकनके संबंधी जो भार्यापुत्रादिक अपमानादिक करें ताकूं सहन-करिवेको कह्योहे ओर निबंधमें स्त्रीप्रभृति अनुकूल होय तो विनकीपास सेवादिक करावनों; उदासीन होय तो अपने हाथसूं करे ओर प्रतिकूल होय तो गृहको त्याग करे. एसें कह्यो हे परंतु तिर-स्कारादिकनसूं भार्यादिक अपनकूं दुःख दे नहिं तथापि त्याग हि करनो कहा! एसी शंका होय, तहां कहतहें.

श्लोकः—प्रतीकारो यदृच्छातः सिद्धश्चेन्नाग्रही भवेत् ।
भार्यादीनां तथान्येषामसतश्चाक्रमं सहेत् ॥७॥

टीका—भगवदिच्छासूं दुःखकी निवृत्तिको उपाय सिद्ध होजाय तो गृहको त्याग करिवेमें आग्रहवारो न होय. एसें स्त्री-प्रभृतिनको दूसरेनको ओर असत्पुरुषनको आक्रम सहन करे. इतनें स्त्रीप्रभृति भगवदिच्छासूं अनुकूल अथवा उदासीन होय तो विनको त्यागकरिवेमें आग्रहवारो न होय; अनुकूल होय तो

विनकीपास प्रभूनकी सेवा करावे, ओर उदासीन होय तो सेवा करे. तथापि विनको योगक्षेम तो अवश्य करनो, त्याग नहिं करनो सेवामें प्रतिकूल होयकें प्रतिबन्ध करे तोहि त्याग करे नहिं तो त्याग सर्वथा न करे; क्यों जो हठकरिकें विनको त्याग करे तामें स्त्रीप्रभृतीनकूं क्रोधको आवेश होय तब अपनो द्वेष करे तासूं सेवामें प्रतिबंध होय तब सेवा बनसके नहिं सो सेवामें प्रतिबंधक आपहि भये; तासूं आग्रहसूं सर्वथा त्याग नहिं करनो. ये आधिभौतिकदुःखके प्रतिकारमें व्यवस्था कहि. अब आध्यात्मिकदुःखके प्रतिकारमें व्यवस्था कहत हैं जो सबइंद्रियनकूं अपने अपने भोग्यवस्तुके त्यागमें दुःख होयहे सो भगवदिच्छासूं हि इंद्रियनकी प्रवृत्ति विषयमें न होय तब विनको त्यागकरिवेमें आग्रहवान् न होय; क्यों जो सेवामें अंतराय नहिं होय हे ओर प्रभूनके लिये माला, चंदनप्रभृति तथा भोगसामग्री अवश्य अपेक्षितहे सो प्रभूनने अंगिकार किये पीछें महाप्रसाद दियो हे सो अपने सौभाग्यरूप हे एसें जानिकें विनको उपभोग करिवेमें बाह्य तथा भीतरकी शुद्धि होंय; तासूं भगवद्धर्ममें आवेश होय तातें विनको त्याग नहिं करनो; क्यों जो सेवाफलग्रन्थमें सेवाके तीन फल लिखेहे तामें ये अलौकिक भोग मुख्यफलमें गिन्यो हे एसें आध्यात्मिक दुःखके प्रतिकारकी व्यवस्था कहिकें आधिदैविकदुःखके प्रतिकारमें व्यवस्था कहत हैं जो प्रारब्धभोग भयेपीछे अथवा

प्रभु परीक्षाकेलिये विलंब करतें होंय सो परीक्षा भयेपीछें कृपाकरिकें प्रभु सेवोपयोगि धनादिक साक्षात् अथवा परंपरासूं देवेकी इच्छा करे तब विनको त्याग करिवेमें आग्रहवारो न न होय किंतु भगवाननें अपने उपभोगके लिये यह दियो हे एसें मानिकें सब भगवानके अर्थहि उपयोग करनो स्वार्थोपयोग नहिं करनो. ऊपर आधिभौतिकादिक दुःखकों सहनकरिवेको कह्यो हतो ताकी हकीकत लिखकें अब देहादिसंबंधि दुःख देवेवारे कोन ? एसें जानिवेकी इच्छा होय तहां कहत हैं जो स्त्रीप्रभृति मार्यादिक कहेजाय हैं; तासूं भरणपोषण करिवेमें अपने समान हे तिनकों भरणपोषणहि अपेक्षित हे धर्म अपेक्षित नहिं हे; इतनें देहादिक सबवस्तुनको अपनी बाबतमें विनियोग होय वाको नाम भरणपोषण हे सो न होय तब वे अतिक्रम करे ताकों सहनकरनो, परंतु क्रोधादिक करनो नहिं, तेसें अपनें सेवा पधरायी न होय तब सबनके संग मिलनादिकको जेसो व्यवहार करतें होय तेसो व्यवहार सेवा पधराये पीछे न रहे तब मित्रादिक तथा ओर हू लोक इर्ष्या करिकें अतिक्रम करे ताकों सहन करनों. अथवा अपने भ्राताप्रभृत्ति बन्धुलोक वैष्णव होय तथापि बंधुपनेसूं धनादिकके विभागादिकनमें द्वेष होयवेसूं वेहू अतिक्रम करे तो वाकों सहनकरनों. तेसें अपनो दास होय (जो मूल्यसूं लियो होय) सो स्त्रीपुत्रादिकनकीसीनांई पोषणकरिवेयोग्यमें अंतर्भूत हे सोहु, विनके

संगसूं अतिक्रम करे ताकोंहू सहनकरनों. ये सब धर्मविरोधी कहे हे ओर मूलमें चकार हे तासूं धर्मके अनुरोधी शिष्यभक्तादिक होय वे हु प्रमादसूं जीवस्वभावकरिकें अतिक्रम करें तब यह प्रारब्धादिक भोग हे एसी भावनाकरिकें धैर्य राखिकें ताके दुःखकों सहन करनो परंतु विनके उपर क्रोधादिक नहिं करनो. क्यों जो शिष्यभक्तनकूंहु अपनेंहि प्रभुसंबंध करवायो हे फिर विनकी उपर क्रोधकरिवेमें विनको अनिष्ट होय सो भगवदीयनको धर्म नहिं हे जो अपनें जिनको अंगीकार कियोहे तिनको अनिष्ट करें; तासूं विनके अतिक्रमकों सहनहि करनो ॥ ७ ॥

एसें सेवाके प्रतिबंधकपनेसूं स्त्रीप्रभृतिनके अतिक्रमकूं सहनकरिवेको निरूपण करिकें सेवाके प्रतिबन्धकपनेसूं भोगको त्यागकरिवेमेंहु तत्तदिंद्रियजनित आध्यात्मिक दुःख होय ताकों सहनकरिवेको प्रकार कहतहें.

श्लोकः—स्वयमिंद्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत्।
अशूरेणापि कर्त्तव्यं स्वस्यासामर्थ्यभावनात् ॥८॥

टीका—काया, वाणी ओर मनकरिकें अपने भोगके लिये इंद्रियनके कार्यनकूं छोडनें. दुःख सहनकरिवेमें अपनी शक्ति न होय तोहु अपनो सामर्थ्य नहिं हे एसी भावना करिकँ दुःख सहनकरनों; इतनें अपने भोगके लिये इंद्रियनको कार्य

करें तामें सेवामें प्रतिबंध होय तासूं कायिक, वाचनिक ओर मानसिक इंद्रियनके कार्यनकूं छोडनें; इतनें प्राकृतविषयमें इंद्रियनकी प्रवृत्ति भयी होय सो छोडायकें अलौकिकमें प्रवृत्ति करावनीं; तामें जबताई अलौकिकने प्रवृत्ति भयी न होय तबताँई प्राकृतविषय छोडायवेमें दुःख होय ताकों सहनकरनों. ओर प्रारब्धभोगके लिये अथवा परीक्षाके लिये प्रभु विलंब करें तब इच्छितवस्तूनकी प्राप्ति होय नहिं. तब वाको दुःख होय सो सहिसक्यो जायनहिं; क्यों जो एसो धैर्य होय नहिं. जेसें नित्य मिले तब अपनो निर्वाह होय एसो दरिद्र होय ताकूं एकदिन कछू मिले नहिं तब सवेरमें लेवे (खावे)को कछू होय नहिं तब दुःख होय परंतु वामें अपनो सामर्थ्य नहिं हे एसि भावना करिकें दुःखकों सहनकरनों. येहि हकिकत नवरत्नमें " चित्तको उद्वेग होय तबहु भक्तनके दुःखके हरि-बेवारे हरि जो जो करेगें सो एसी हि विनकी लीलाहे एसें मानिकें चिंताकूं शिघ्र हि छोडे. " एसी आज्ञा करीहे वाको अनुसंधानकरिकें धैर्य हि राखनों ॥ ९ ॥

अपनसूं जो दुःख निवृत्त होयसके एसो होय ताको हु सहन होय सके नहिं तब जहां अपनो सामर्थ्य हि न होय एसो दुःख होय ताको सहन तो सुतरां होय सके हि नहिं तब अशक्य उपदेश क्यों कर्यो हे ! एसी शंका होय तहां कहतहें.

श्लोकः—अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत्।
एतत्सहनमत्रोक्तमाश्रयोऽतो निरूप्यते ॥१॥

टीका—जब अपनी अशक्ति होय तब हरि हि रक्षकहें एसें आश्रय राखे तो सब सिद्ध होय. यह धैर्यको स्वरूप कह्यो अब आश्रयकों निरूपण करत हें; इतनें जो जीव सेवामें प्रवृत्त भयो हे ताकूं विवेकधैर्यादिककी स्थितिमें शक्ति न होय तब हरिहि शरण हें एसी भावना करनी; क्योंजो हरि भक्तनके सर्वदुःख-हर्त्ता हें सो कृपाकरिकें सब संपादनकरेंगे तासूं कहत हें जो आश्रयसूं सब सिद्ध होंय; इतनें जो आशक्य होय सो हु हरिके आश्रयसूं सब सिद्ध होय ओर आश्रय न होय तो अपनसूं शक्य होय सोहु सिद्ध न होय अर्थात् निःसाधनपनेसूं शरणागति होय तब प्रभूनकी कृपासूं विवेक ओर धैर्य एकहिसमयमें सब सिद्ध होय. एसें धैर्यको स्वरूप निरूपण करिकें आश्रयसूं सब सिद्ध होय एसें कह्यो हे तासूं आश्रयकों निरूपण करत हें.

प्रथम समुदायकरिकें आश्रयको स्वरूप कहत हें.

श्लोकः—ऐहिके परलोके च सर्वत्र शरणं हरिः।

टीका—यालोकमें ओर परलोकमें सबस्थलनमें हरि शरण हें; इतनें भक्तिमार्गमें जाको अंगीकार भयो हे ओर सेवामें प्रवृत्त भयो हे ताकों सेवासिवाय दूसरो कर्म करनो सो स्वधर्म नहि हे तासूंहि ऐहिक तथा पारलौकिक साधन करे नहिं;

क्यों जो तामें सेवामें अंतराय होय तासूं ऐहिक तथा पार-लौकिककी सिद्धिके लिये हरिके शरणकीहि भावना करनी परंतु सेवा छोडिकें दूसरो साधन नहिं करनो. एसें समुदाय-करिकें आश्रयको स्वरूप कहिकें जब जूदे जूदे भेदसूं आश्रयको स्वरूप कहत हैं.

श्लोकः—दुःखहानौ तथा पापे भये कामार्थपूरणे ॥१०॥
भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते ।
अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः ॥११॥

टीकाः—दुःखकी हानिमें, पापके निवारणमें, भयमें, कामके अर्थके पूरणमें, भक्त अपनो द्रोहकरे अथवा अपनसूं भक्तको द्रोह होयजाय तामें, भक्तिके अभावमें, भक्त अतिक्रम करे तामें, अशक्यमें ओर सुशक्यमें सर्वथा हरिहि शरण हैं; इतनें भक्तिमार्गीय जीव सेवामें प्रवृत्त भयो होय ताकूं देह इंद्रियादि—संबंधि, आधिभौतिकादिक दुःख होय तासूं चित्तमें उद्वेगादिक नहिंहोयवेके लिये शरणकीहि भावना करनी, तेसें भक्तिमार्गमें प्रवृत्तभयेकी पहेलें प्रमादसूं कछु पाप भयो होय अथवा सेवामें प्रवृत्त भये पीछें देह तथा इंद्रियादिकनसूं भगवदपराधादि—रूप—पाप होयजाय तो ताकी निवृत्तिके लिये शरणकीहि भावना करनी. प्रायश्चित्तादिक करनो नहिं; क्योंजो प्रायश्चित्तादिक करिवेसूं शरणधर्म जतो रहे, एसें राजा तथा

चौरादिकनसूं किंवा पापादिकनसूं भय होय तामेंहु शरणकी भावना करनी. तेसें इच्छित कामना होय तिनके जो पदार्थ होय तिनकी प्राप्तिमें शरणकी भावना करनी तेसें प्रमादसूं भक्तको द्रोह होयजाय अथवा भक्त अपनो द्रोह करे तो तामें शरणकी भावना करनी. तेसें सेवामें प्रवृत्त भयो होय परंतु भगवत्स्वरूपमें स्नेह उत्पन्न न होय ताके लिये भक्त अतिक्रम करे अथवा तेसीहि कोई धर्मकी बाबतमें भक्त अतिक्रम करे तब अपनो दोष विचारिकें शरणकी भावना करनी. तेसें अपनसूं होयसके नहिं एसें कार्यमें अथवा अपनसूं होयसके एसे कार्यमेंहु शरणकीहि भावना करनी. अपने सामर्थ्यसूं यह कार्य भयो हें एसो अभिमान करे तो शरणधर्म जाय; तासूं सर्वात्माकरिकें तदीयपनेको अनुसंधान राखिकें हरिशरणकीहि भावना करनी ॥ १० ॥ ११ ॥

श्लोकौ:-अहंकारकृते चैव पोष्यपोषणरक्षणे ।

।।१२।। पोष्यातिक्रमणे चैव तथान्तेवास्यतिक्रमे

: । अलौकिकमनःसिद्धौ सर्वार्थे शरणं हरि

र् ।।१३।। एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्त्तये

र करिवेमें, टीका-जीवस्वभावसूं कोइके पास अहंका

में, स्त्रीप्रभृ- पोषण करिवेके योग्यनको पोषण तथा रक्षण करिवे

र अलौकिक तिपोष्यनके अतिक्रममें तथा शिष्यके अतिक्रममें ओ

मन सिद्ध होयवेमें सर्व अर्थमें हरिहि शरण हैं. एसी चित्तमें सदा भावना करनी और वाणीसूं एसें कह्योकरे; इतनें जीवस्वभाववशसूं कोइके संग अथवा भक्तके संग अहंकार होय ताकरिकें आसुरावेश होय ताको विवेक पीछेसूं होय तब पश्चाताप होय तब शरणकीहि भावना करनी अथवा प्रभुकी अत्यन्त कृपा होय तब प्रभूनके संगहि अहंकार होय तबहु ताके दोषकी निवृत्तिके लिये शरणकीहि भावना करनी, तेसें अपनें पोषण करिवेयोग्य जो स्त्रीपुत्रादिकहें तिनको पोषण तथा रक्षण करिवेमें तथा पोष्य एसे स्त्रीपुत्रादिकनको अतिक्रम होय अथवा मूलमें चकार हे तासूं बंधु तथा दासपर्यंतनकोहु अतिक्रम होय तामें तथा शिष्य अपनो अतिक्रम करे तामें शरणकीहि भावना करनी, परंतु क्रोध न करनों, तेसें मनकी अलौकिकताकी सिद्धिके लिये शरणकी भावना करनी. यहां मन लिख्यो हे सो सब इंद्रयनकों जतायवेवारो हे इतनें देह, इंद्रियादिकसबनको प्राकृत अंश निवृत्त होयकें जेसें अलौकिकपनो सिद्ध होय ओर सो सिद्धभयेपीछें अलौकिकसकलपदार्थनकी संपत्तिके लियेहु हरिहि शरण हैं एसी भावना करनी; इतनें ज्ञानरूप जो चित्त हे तामें सदा शरणकी भावना करनी ओर वाणीकरिकें उच्चार करनो क्षणमात्रहु उच्चार न करे तो वाहिसमय आसुरभावको प्रवेश होय. चित्तकूं ज्ञानरूपपनो भयो न होय तोहु वाणीसूं " श्रीकृष्णः शरणं मम । "

एसें कह्योहि करनो. मूलमें चकार हे तासूं कायाकरिकें सेवा करनी, मनकरिकें भावना करनी ओर वाणीकरिकें उच्चार करनो एसें तीन्यो प्रकारकी शरणागति निरूपित करी हे ॥१२॥ ॥१३॥

तहां शंका होय के कोइसूं होयसके नहिं एसे बडे अर्थमें हरिकी शरणागतिकी भावना करनी परंतु अपनसूं होयसके एसे अर्थमें भगवानकी उपर भार कायकेलिये देनो चहियें ? साधारण अर्थमें तो देवान्तरको भजन करे तो कहा अडचन हे ? एसी शंका होय तहां कहतहें.

श्लोकः—अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च ।
प्रार्थनाकार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत् ॥१४॥

टीका-अन्यदेवको भजन तथा अन्यदेवके सन्निधान आपसूं चलायकें जानो, ओर प्रार्थनाके कार्यमात्रमें अपने स्वामी हरिसिवाय देवतांतरकी पास सब छोडनों; इतनें अन्यदेवको भजन तथा भजनके लिये गमनहु नहिं करनो. मूलमें चकार हे तासूं दूसरो प्रेरणा करे तोहु अन्यदेवके सन्निधान जाय नहिं; क्यों जो देवांतरभजन ओर देवांतरकी पास गमन छोडे नहिं तो शरणपदार्थ (आश्रय) जतो रहे. येहि न्यासादेशमें लिख्यो हे जो प्रभूनसूं अन्यको भजन ओर विनकीपाससूं

अपेक्षाहु छोडनी तहां एसी शंका होय जो प्रभुकीपास प्रार्थना करनी येतो योग्य नहिं हे, तासूं कछुकपदार्थकी अपेक्षा होय तब दूसरेदेवकी पास प्रार्थनामात्र करे, भजनगमनादिक करे नहिं तो कहा अड़चन ? एसी शंका होय तहां कहत हैं जो दूसरेदेवको भजन ओर विनकेपास गमनादिक जेसें छोडे तेसें स्वल्प तथा बडे कार्यमेंहु दूसरेदेवकी पास प्रार्थना छोडे. मूलमें विवर्जयेत् एसे लिख्योहे ताको अभिप्राय एसोहे जो सर्वथा प्रार्थना न करे. मूलमें बहुवचन हे तासूं काहुप्रकारकी प्रार्थना न करनी एसो अभिप्राय जतायो हे. यहां एसी शंका होय जो परम प्रेम, आसक्ति ओर व्यसनपर्यंत प्राप्तभये एसे व्रजवासीननेहु दावानलकी निवृत्तिके लिये. क्षुधाकी निवृत्तिके लिये ओर वृष्टिकी निवृत्तिके लियेहु प्रार्थना करी हे, तेसें कितनेक, मुक्तिप्रभृतीनकीहु प्रार्थना करत हैं तो यहां प्रार्थनाको निषेध क्यों कर्यो हे ? एसी शंकाको समाधान यह हे जो व्रजवासीनने दावानलके प्रसंगमें दोयविरियां प्रार्थना करी हे तामें प्रथमकी प्रार्थनामें कह्यो हे जो हम आपके चरणकूं छोडिवेमें समर्थ नहिं हैं; इतनें दावानल सह्यो-जाय हे. ओर दूसरीविरियां प्रार्थना करीहे ताको अभिप्राय एसो हे जो प्रभूनके संग क्रीडामें साम्यबुद्धि भयी सो अपराध भयो हे परंतु आपसिवाय हमकूं तथा हमविना आपकूं क्रीडा न होयगी ओर हमरो जीवनहु आपविना न रहेगो,

तासूं दावानलको भय हमकूं नहिं हे परंतु आपके स्वरूपको अंतराय हमकूं नहिं सह्योजाय हे. एसे अभिप्रायसूंहि प्रार्थना करी हे; तासूंहि हमारी रक्षा करो एसें नहिं कहिके रक्षा-करिवेयोग्य हो एसें कह्यो हे सो व्यसनभावसूं कह्यो हे अपने सुखकी अभिलाषासूं कह्यो नहिं हे, तेसें श्रीगोकुल तो फलरूप हे सो भगवाननें अपनी लीलाके लिये फलोपयोगी सर्वरसात्मक प्रकट कियो हे; तासूं वहांकी लीला बाहिर लोकानुसारिणी हे ओर भीतर तो बहोतप्रयोजनयुक्त अलौकिक लीलाहे तासूं भगवानकूं जबजब जाप्रकारकी लीला करिवेकी इच्छा होय हे तबतब तेसो कार्य संपादन करत हें जेसें यज्ञपत्नीके उपर अनुग्रह करिवेकी इच्छा भयी तब गोपनकों सहसा क्षुधा उत्पन्न करी, तेसेंहि श्रीगोकुलमें सबनके निरोधके लियेहि भगवान् सब करत हें तासूं वामें पूर्वपक्ष करिवेको अवकाश नहिं हे ॥ १४ ॥

सबदेवनको तथा धर्मनको त्याग करिकें भगवानकी शरणागति करिवेको उपर कह्यो परंतु एसें करिवेमेंहु अपनो इच्छित होयगो सो भगवान् देइगें किंवा नहिं देइगें एसें कोन जानत हे ? एसी शंका होय तहां कहत हें.

श्लोकः-अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः।
ब्रह्मास्त्रघातको भाव्यो प्राप्तं सेवेत निर्ममः॥१५॥

टीका–अविश्वास नहिं करनो क्यों जो सो सर्वथा बाधक हे; तासूं अविश्वासमें ब्रह्मास्त्रकी ओर विश्वासमें चातककी भावना राखनी. ओर जो प्राप्त होय तामें ममतारहित होयकें प्रभुसेवा करे; इतनें शरणगतमें अविश्वास नहिं करनो क्यों जो जितने दूसरे बाधक हैं इनसबनकी अपेक्षासूं अविश्वास अधिक बाधक हे, अविश्वास करिकें दूसरे धर्मको संबंध होय तो शरणधर्म नष्ट होय, तासूं अविश्वासमें ब्रह्मास्त्रकी भावना करनी; इतने हनूमानजी श्रीजानकीजीकी सुधी लेवेकूं लंका-प्रति गयेहते तब गिरेभये फलादिकनको भक्षण करिवेकी श्रीजानकीजीनें आज्ञा करी तब उपवनके वृक्षकों नीचें पटके तब जो फल नीचे गिरे ताको भक्षण करे, एसें करतकरत सब वृक्षनको नाश हनूमानजीनें कियो सो सुनिकें रावणने अपने पुत्र इंद्रजितकूं पठायो सो आयकें अनेक शस्त्रअस्त्र वाके उपर छोडवे लग्यो, फिर ब्रह्मास्त्र नांख्यो, परंतु वाके उपर विश्वास नाहिं राखिकें नागपाशादिक डारे सो ब्रह्मास्त्रकी उपर विश्वास राखिकें जो दूसरो अस्त्र नहिं डारतो तो ब्रह्मास्त्र अपनो कार्य करतो परंतु ब्रह्मास्त्रकी उपर अविश्वास करिकें दूसरे अस्त्र डारे तासूं ब्रह्मास्त्र निष्फल भयो. तेसें शरणगमनमेंहु अविश्वास राखे तो शरणधर्म न रहे; तासूं अविश्वास नहिं करनो. ओर विश्वासमें चातकपक्षीकी भावना करनी; इतने स्वातिजलके विश्वासपें चातकपक्षी रहत हे तो मेघ वर्षत हे

ओर चातकपक्षी जलकों पान करत हे तेसें शरणागतिमें विश्वास करे तो भगवान् सब सिद्धि करेंगे एसें विश्वास-करिके शरणमें स्थिति राखे तामें प्रयत्नविना भगवदिच्छासूं जो प्राप्त होय तामें ममतारहित होयकें प्रभुसेवा करे परंतु विशेषप्राप्तिके लिये यत्नकरे नहिं. जो प्राप्त होय सो सब प्रभूनमें विनियुक्त करे, स्वार्थदृष्टि राखे नहिं. ॥ १५ ॥

दूसरे धर्मको संबंध होय तो शरणपदार्थ चल्योजाय एसें कह्यो तब आवश्यक लौकिक ओर वैदिक-कर्मनकोहू त्याग होय तामें ' यह मार्ग अप्रमाण हे ' एसी शंका होय सो न होयवेके लिये लौकिकवैदिककर्म करिवेको प्रकार कहत हें.

श्लोकः-यथाकथंचित् कार्य्याणि कुर्यादुच्चावचान्यपि ।
किं वा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद्धरिम् ॥ १६ ॥

टीका-उच्चावच कार्यहू जेसेंतेसें करनें विशेष कहिवेसूं कहा फल सिद्ध होय ? हरिहि शरण हें एसी भावना करनी इतने लोकनकूं यह मार्ग अप्रमाण हे, एसी शंका न होय. तेसें अति-आवश्यक लौकिकवैदिककार्य करे; अर्थात् मार्गकी प्रमाणताके लिये प्रभुकी आज्ञा जानिकें लौकिकवैदिककर्म करने, स्वधर्म-पनेसूं नहिं करने. जेसें गीताजीमें अर्जुनने छेवट कह्यो हें जो

जेसो वचन हे ताप्रमाण करूंगो एसें कहिकें भगवानकी आज्ञा मानिकें युद्ध कियो हे, एसें करें तो शरणपदार्थ जाय नहिं. येहि पुष्टिप्रवाहमर्यादामें कह्यो हे जो लौकिक तथा वैदिकपनों पुष्टभक्तनमें कपटपनेसूं हे स्वधर्मबुद्धिसूं नहिं हे, जेसें गीताजीमें कह्यो हे जो "लौकिकमें आसक्त अज्ञानी मनुष्य जेसें कर्म करे तेसें ज्ञानीहु लोकनकों शिखायवेके लिये कर्मकरे." अथवा शरणधर्म सिद्ध राखिवेके लिये कर्म करने नहिं तोहू दोष नहिं हें; क्यों जो सर्वधर्मरूप शरणधर्म हे. विशेष कहेवेसूं कहा सिद्ध होय हे ? सर्वत्र शरणकी हि भावना राखनी. लोकसंग्रहके लियेहू कर्म करनो नहिं; क्यों जो लोकसंग्रहके लियेहू विधिरूपपनेसूं कर्म करे तो शरणपदार्थ न रहे; इतनें प्रभूनकी आज्ञा मानिकें कर्म करनो विधिरूप जानिकें करनों नहिं. एसें सर्वात्माकरिकें सर्वधर्मनको त्याग करे तब पापकी संभावना होय तहां कहत हें जो हरिकी शरणभावना करे; इतनें सर्वदुःख तथा पापनकों हरणकरिवेवारे 'हरि' हें सो पापादिकनकूं दूर करेंगे. येहि अर्जुन के प्रति श्रीकृष्णनें गीताजीमें " सर्वधर्मान् परित्यज्य " ये श्लोकमें कह्यो हे, जो सबपापनसूं में तोकूं छोडाउंगो. ॥१६॥

एसें आश्रयके स्वरूपकों निरूपणकरिकें
उपसंहार कहत हें.

श्लोकः—एवमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां सर्वदा हितम् ।
कलौ भक्त्यादिमार्गा हि दुःसाध्या इति मे मतिः ।१७।

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं विवेकधैर्याश्रय-
निरूपणं समाप्तम्.

टीका—एसें सब जीवनकूं सर्वदा हितरूप आश्रय कह्यो हे. कलियुगमें भक्तिप्रभृतिमार्ग दुःसाध्य हें एसी मेरी मति हे; इतने सबजीवनकूं सब वर्ण तथा आश्रमनमें शरण सर्वदा हितकारि हे तथा साधनविनाहु ऐहिक तथा पारलौकिक संपत्तिको साधक हे. सबयुगनमें साधनकरिकेंहि फल होय हे ओर यहाँ अब साधनकूं छोडिकें केवल शरणको हि उपदेम क्यों करत हें ? एसी शंका होय तहां कहत हें जो अन्ययुगनमें धर्मको हि प्राधान्य हतो तासूं मर्यादाभक्तिप्रभृतिनकूं साधनकरिकेंहि साध्यपनो हतो. तासूं साधनकरिकें हि विहितभक्ति, उपासना ओर कर्मादिकनको फल होतो हतो ओर कलियुग तो पापप्रधान हे तासूं साधननके अभावसूं विहितभक्तिप्रभृति मार्गहू होय सके एसें नहिं हे, इतनो हि नहिं परंतु साधनसंपत्ति विना यत्किंचित् करिवेमें हू पाषंडको प्रवेश होयवेसूं पापहू होय हे तासूं सर्वथा दुःसाध्य हें. सत्ययुगादिकनमेंहू साधनकरिकें जो मार्ग साध्य हते सो हू कलियुगमें साधनके अभावसूं दुःसाध्य भये तब सत्ययुगादिकनमेंहू जो भक्तिमार्ग साधन करिकें साध्य नहिं हतो केवल

भगवानके अनुग्रहकरिकेंहि साध्य हतो सो कलियुगमें तो सुतरांदु:साध्य होय तामें कहाकहनो ? तासूं सर्वात्माकरिकें शरणागति करिवेमें एसे भक्तिमार्गमें हू भगवान् अनुग्रह करेंगे; तासूं सर्वात्मा करिकें शरणकी हि भावना करनी, दूसरो कछू नहिं करनो एसो अपनो सिद्धांत जतायवेके लिये 'एसी मेरी मति हे, ' एसो कह्यो हें. श्रीआचार्यचरणननें मेरी मति हे एसें कह्यो हे तासूं स्वमार्गीयभक्तनकूं तो शरणकीहि भावना करनी, दूसरो कछू नहिं करनो, एसो अभिप्राय हे.

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचित 'विवेकधैर्याश्रय-
निरूपण' की गोस्वामि श्रीनृसिंहलालजी-
महाराजविरचित व्रजभाषामें
संक्षिप्त टीका समाप्त भई ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीकृष्णाश्रयकी व्रजभाषामें संक्षिप्त भावार्थटीकाको प्रारंभ.

श्रीकृष्णाश्रयकूं सर्व सिद्धकरिवेपनो हे तासूं अपने भक्तनवरदानदेवेकी सीनाई श्रीआचार्यचरण श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्रकों निरूपणकरत हैं; तामें अब कलिकालके प्रभावसूं देश, काल, द्रव्य, श्रद्धा, मंत्र ओर कर्म यह षट् साधन पुरुषार्थ सिद्धकरिवेवारे नहिं हे; एसें बतायकें भक्तनकूं भगवान् हि सर्व साधनरूप हें; तासूं देशादिक षट्साधन तथा चारप्रकारके पुरुषार्थ सबरूप भगवान्हि हें तासूं तथा सत्त्वगुण, रजोगुण ओर तमोगुण एसें तीन्यो गुणनके भेदनसूं नवप्रकारके भक्त हें. तथा दशमभक्त निर्गुण हे एसें दशविधभक्तनकरिकें सेव्य भगवान् हें ओर शरीरकूं सबसिद्धिकरिवेवारे यह स्तोत्र हे एसें उपरलिखे सब कारण जतायवेके लिये दशश्लोकन करिकें निरूपण करत हें. तामें प्रथम मुख्य अंग काल हे. तासूं कालधर्मको निराकरण करिकें आश्रयकी प्रार्थना करत हें.

श्लोकः—सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणि!
पाषण्डप्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम ॥१॥

टीका—खलधर्मवारे कलियुगमें सर्व मार्ग नष्ट होगये ओर

लोक बहोत पाषंडवारो हो गयो तामें श्रीकृष्णहि मेरी गति हो; इतनें उपरसूं अच्छो देखवेमें आवे ओर भीतर दुष्ट होय सो खल कह्योजाय. एसो धर्म कलियुगमें हे, तामें श्रीकृष्ण हि मेरे गतिरूप हो. एसें कहेवेको अभिप्राय एसो हे जो सत्ता-वाचक "कृष्"शब्द हे ओर आनंदवाचक " ण " शब्द हे. दोयकी एकतासूं सदानंद शब्द होय हे सो एहिक तथा पारलौकिक अर्थके सिद्धकरिवेवारे मोकूं हो. खलधर्मको स्वरूप कहत हैं: जो सबनकी अपेक्षासूं लोकमें पाषंड अधिक भयो हे तासूं हि पुरुषार्थके उपाय ढूंढिवेमें आवे, एसे कर्मज्ञानादिकमार्ग नष्टप्राय भये हैं तामें यज्ञादिकनसूं स्वर्गकी प्राप्ति होंयवेको वेदमें लिख्यो हे; तामें स्वर्ग पद आत्मसुखवाचक हे सो नहिं-जानिके लोकवाचक हे एसो भ्रम उत्पन्न करत हे तासूं चित्त-शुद्धि नहिंहोयवेसूं कर्ममार्ग नष्ट भयो हे. ओर माया वादके अभिनिवेशसूं ज्ञानमार्ग निरीश्वरपनेके अंगिकारसूं योग नष्ट भये हैं ओर विभूतिपरहोयवेसूं उपासना नष्ट भयी हे. मूलमें चकार हे तासूं कलिकालकूं महादेवादिक अनुगण भये हैं तासूं श्रीकृष्ण हि गति हो. मूलमें एवकार हे सो अन्यके योगको व्यवच्छेदक हे तासूं अंशकलादिक गतिरूप मति हो एसो अभिप्राय हे ॥ १ ॥

पुण्यदेशमें स्थितिमात्रसूं हि पुरुषार्थकी सिद्धि होयहे तब दूसरेको निषेध करिकें आश्रयकी हि प्रार्थना क्यों करत हो ? एसी शंका होय तहां कहत हैं:

श्लोकः—म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च।
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥२॥

टीका—सब देश म्लेच्छनकरिकें आक्रांत होयगये हैं ओर विनमें पापीनकोहि स्थान हो गयो हे ओर सत्पुरुषनकूं पीडा होयवेसूं सब लोक व्यग्र होयगये हे एसे समयमें श्रीकृष्णहि मेरी गति हो; इतनें सबदेशनमें म्लेच्छादिक—हिनजातिनकी सत्ता होगई हे. एसे वे म्लेच्छ हू धर्ममें वर्तिवेवारे नहिं हे किंतु पापमेंहि मुख्य विनको स्थानक हे अथवा अंगवंगादिक देश एसे हे जो विनमें गमनमात्रसूंहि पुनः संस्कार करनो पडे एसे देशनमें म्लेच्छादिकनें आक्रमण कियो हे तासूं तीर्थयात्रादिकके प्रसंगतें जायवेमेंहू पाप लगे हे ओर सत्पुरुषनकूं पीडा होयहे ताकरिकें सब लोक व्यग्र होय हे, क्यों जो स्वधर्मादिकको आचरण करिवेवारेनकूं पीडा देखिकें ओरनकूं श्रद्धादिक नहिं रहे हे एसे समयमें श्रीकृष्णहि मेरी गति हो. ॥ २ ॥

गंगादिक-तीर्थनकरिकें ही सर्वपुरुषार्थकी सिद्धि होयहे, तब केवल आश्रय करिवेको कहा प्रयोजन हे! ऐसी शंका होय तहां द्रव्यकी असाध्यता कहत हैं.

श्लोकः—गंगादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह!
तिरोहिताधिदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥३॥

टीका–गंगादिक उत्तम तीर्थ हैं सो दुष्टनकरिकें हि आवृत होयगये हैं तासूं आधिदैविक स्वरूप तिरोहित भयो हे एसे समयमें श्रीकृष्ण हि मेरी गति हो इतनें तीर्थमें श्रेष्ठ जो गंगादिक हैं सो दुष्टन करिकें आवृत भये हैं, तासूं तीर्थनसूं पुरुषार्थसिद्धि होय एसे नहिं हे. ब्राह्मणादिक हू तीर्थनमें रहे हे तब दुष्टनकरिकें हि आवृत्तपनों केसें? एसी शंका होय ताको समाधान एसो हे जो विनकूं अति परिचय होयवेसूं तीर्थनमें आदर नहिं रहे हे तासूं वामें भक्ति नहिं होय हे और वहां दानादिक लेवेके लिये हि विनकी स्थिति हे; तासों विनकोंहू दुष्टपनो हे क्यों जो " श्रद्धारहित, पापात्मा नास्तिक, जिनकूं संशय निवृत्त नहिं भयो हे ओर वामें तीर्थपनेको कारण शोधिवेवारो होय विनकूं तीर्थका फल नहिं मिले हे. " एसें वायुपुराणमें कह्यो हे ओर तीर्थमें जो रहते होय सो सब श्रद्धा-रहित नास्तिक होय हे विनको दुष्टपनो नहिं मिटेहे. तीर्थमें सब दोष निवृत्त करिवेकी शक्ति हे तासूं जेसें अग्नि सबनको दाह करेहे तेसें तीर्थकी शक्तिसूंहि दुष्टपनो क्यों नहिं मिटेहे? एसी शंका होय तहां कहत हैं: जो देवतारूप–तीर्थको आधिदै-विक स्वरूप तिरोहित होयगयो हे सों सत्पुरुषनप्रति हि प्रकट होय हे दुष्टपुरुषनप्रति आधिदैविकस्वरूपको तिरोधान होय हे तासूं श्रीकृष्ण हि मेरी गति हो. ॥ ३ ॥

धर्मकरिवेवारे समीचीन होय तो सर्वफलकी

सिद्धि होय तब आश्रयकरिकें कहा कर्त्तव्य
हे ! पसी शंका होय तहां कर्त्ताको
असाधकपनो बतायकें आश्रयकी
प्रार्थना करतहें.

श्लोकः—अहंकारविमूढेषु सत्सु पापानुवर्त्तिषु ।
लाभपूजार्थयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥४॥

टीका—पंडित लोक, अहंकारकरिकें विशेष मूढ भयें हे, पापीपुरुषनकों अनुसरिवेवारे भयेंहे ओर लाभपूजाके अर्थहि विनको यत्न हे, तामें श्रीकृष्णहि मेरी गति हो. इतने पंडित लोक, हम शास्त्र जानें हे एसे अभिमानसूं दूसरेकूं पूछतहू नहिं हे ओर मायावादादिकनके अभिनिवेशसूं विशेषकरिकें मूढ भयें हे, तेसें अपनकूं कछुक लाभ होय अथवा अपनी प्रतिष्ठा वढे तो अपनो सत्कार होय एसे स्वार्थकेलियेहि यत्न करत हें अर्थात् पारमार्थिक कर्महू लाभपूजार्थहि करत हें ओर पापी-पुरुष अथवा पापनकूंहि अनुसरिवेवारे भयें हे तासूं श्रीकृष्णहि मेरी गतिहो ॥४॥

मंत्रसूं फलसिद्धि होय पसें मंत्रशास्त्रमें लिख्यो हे
तब आश्रयकरिकें कहा कर्त्तव्य हे ? पसी शंका
होय तहां मंत्रनको असाधकपनो कहिकें
आश्रयकी प्रार्थना करतहें.

श्लोकः—अपरिज्ञाननष्टेषु मंत्रेष्वव्रतयोगिषु ।
तिरोहितार्थदेवेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥५॥

टीका-मंत्रको परिज्ञान नहिं होयवेसूं, व्रतादिकनको योग नहिं होयवेसूं ओर अर्थ तथा देवता तिरोहित होयवेसूं मंत्र नष्टप्राय भये हें एसे समयमें श्रीकृष्ण हि मेरी गति हो; इतने वैदिक तथा तंत्रोक्त मंत्रको तात्पर्य, फल ओर देवताके स्वरूपको ज्ञान नहिं होयवेसूं मंत्र नष्टप्राय होयगये हें. वैदिक-मंत्र, गुरुकुलमें वास करे, ब्रह्मचर्यादिकव्रतराखे, शूद्रकी सन्निधिमें अध्ययन करे नहिं इत्यादिक नियमसूं पढे तब फलसाधक होय सो नियम अब रह्यो नहिंहे, तासूं फलसाधक नहिं हे ओर तंत्रोक्तमंत्रनके तात्पर्यको ज्ञान नहिं होयवेसूं विनके अर्थ तथा देवताको तिरोभाव होय गयो हे तासूं मंत्र फलसाधक नहिं रहे हे ओर भगवदाश्रयमें तो "यस्य स्मृत्या" इत्यादिवाक्यनकरिकें न्यून होय सो हू सब पूर्ण होय हें; तासूं श्रीकृष्ण हि मेरी गति हो. ॥५॥

मीमांसादिक (विचार) शास्त्रकरिकें, मंत्रनके तात्पर्यको निर्द्धार होयसके हे तासूं कर्मनकरिकेंहि फलकी सिद्धि होयगी आश्रयकरिकें कहा करनो हे ? एसी शंका करिकें कर्महू फलसाधक नहिं रहेहे एसो बतायकें आश्रयकी प्रार्थना करत हें.

श्लोकः—नानावादविनष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु ।
पाषंडैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥६॥

टीका–सर्व कर्म ओर व्रतादिक जुदे जुदे प्रकारके वाद-करिकें विनष्ट भये हे ओर पाषंडके लिये मुख्य यत्न जामें भयो हे, एसे समयमें श्रीकृष्णहि मेरी गति हो; इतनें सोम-यागादिक कर्म ओर व्रतादिकनमें जुदे जुदे वाद भये हे. अर्थात् कोइ कहे के कर्म एसें करो, तो दूसरो दूसरी रीतसूं बतावे तेसें व्रतादिकनमें हू एकनें व्रत बतायो तो दूसरो वाकी ईर्ष्या करिकें दूसरी रीतिसूं बतावे फिर परस्पर वाद करे, तामें कोन सत्य बतावे हे ओर कोन जूठो बतावे हे सो अज्ञलोक जाने नहिं तासूं सब कर्म तथा व्रतादिक नष्ट होयगये हें. जेसें सगरो प्रपंच मिथ्या हे अपने अज्ञानसूं कल्पित हे. प्रपंचमें रहे एसे वेदहू व्यवहारमात्रमें प्रमाण हे, एसें मायावादीनको वाद हे, ब्रह्मादीकनकूंहू यज्ञनकरिकें हि बडेपनो प्राप्त भयो हे तासूं पूर्वकी वासनासूं उत्तरोत्तर प्रवृत्ति होतीजाय हे सो कर्मसूं हि होय हे तासूं कर्महि कर्त्तव्य हे. फलहू कर्मसूं हि मिले हे, फलको देवेवारो उपासना करिवेयोग्य चेतनरूप कोउ देवता नहिं हे किंतु मंत्रमयहि देवता हे एसें मीमांसकनको वाद हे, षोडशपदार्थनके ज्ञान भये पीछें श्रवण, मनन तथा निदध्यासन-करिकें अपने आत्माको साक्षात्कार भये सते दुःखकी उत्पत्तिका अभाव होय येहि फल हे एसें नैयायिकनको वाद हे, ओर प्रकृति तथा वाके विकारको लय होय तब पुरुषकूं अपने स्वरूपकरिकें रहनो ये हि फळ हे, कोउ देव सेव्य नहिं हे

एसो सांख्यनको वाद हे. एसो प्रकारके जूदे जूदे वादनकरिकें कर्म तथा व्रत नष्ट होयगये हे वस्तुतासूंतो सब जगत् जो दीखवेमें आवेहे सो भगवद्रूप हि हे, भगवान् सबनकूं अपने वशमें राखत हैं भगवानसूंहि सबनकी, उत्पत्ति, स्थिति ओर लय होतहे तासूं भगवान् हि सेव्य हैं. " देव, आसुर, मनुष्य, यक्ष ओर गंधर्व जो कोउ भगवानके चरणको भजन करत हे सो कल्याणकों प्राप्त होंत हे " एसो श्रीभागवतजीको वाक्य हे तासूं भगवान् हि सेव्य हे, प्रपंच सब भगवद्रूप हे, भगवानको सायुज्यादिक होय येहि फल हे इत्यादिक शास्त्रप्रतिपादित अर्थसूं उपर कह्ये एसे सबवाद विरुद्ध हे तथापि अपने अपने मतके आग्रहसूं शास्त्रविपरीत कर्म ओर दशम्यादिकके वेधवारी एकादशीमभृतीनको व्रत करे हे तासूं कर्म ओर व्रत नष्ट होय-गये हे. तहां शंका होय जो एसे करिवेवारे आप करे हे ओर दूसरेकूं हू बोध करत हे सो वामें मिथ्यापनो तथा निष्फलपनो तथा विरुद्धपनो जानते होय तो आप केसें करे ? तथा ओरनकूं बोध केसें करे ? क्यों जो ये मतहू शंकराचार्य, जैमिनि तथा गौतमादिकपंडितननें हि प्रवृत्त किये हे एसी शंका होय तहां कहत हे जो पाखंडनिमित्त हि विनको मुख्य प्रयत्न हे सो पद्मपुराण तथा वाराहपुराणमें कह्यो हे जो श्रीभगवाननें महादेव-जीकूं मोहशास्त्र करिवेकी आज्ञा करी हे ओर महादेवजीकी आराधना करिकें आप विनकी पाससूं वर मांगिके जगतमें

महादेवजीकी आराधनाकी महत्ताको वृद्धि करिवेको वरदान भगवायने दियो हे; तासूं हि भगवानने महादेवजी उपर तप करिकें वरदान मांग्यो हे सो देखिकें ओर लोकहू भ्रमित होयजाय हें परंतु एसें नहिं जाने हे जो देवादिकने प्रवृत्त कियो सोहि सत्यमार्ग एसो नियम नहिं हे किंतु वेदादिकनसूं विरुद्ध न होय सोहि सत्य हे ये अभिप्रायकूं नहि जानत हें ओर देवादिकनकी प्रवृत्तिसूं आप हि मोहित होयकें प्रवृत्त होय हें. परंतु कौलमार्ग बृहस्पतिने प्रवृत्त कियो हे और बुद्धने बौद्धमत प्रवृत्त कियो हे तासूं ये ग्राह्य नहिं हे एसें अभिप्रायकूं नहिं जानत हें तासूं मोहित होयकें वामें प्रवृत्त होय हें एसे समयमें श्रीकृष्णहि मेरी गति हो. ॥६॥

' धर्मकरिकें पापकूं मिटावे हें धर्ममें सब रह्यो हे " एसें श्रुतिमें कह्यो हे तासूं प्रथम, दोषके अभावके लिये धर्म करनों ताकरिकें चित्तशुद्ध होय तब भगवानको माहात्म्य तथा स्वरूपको ज्ञान होय तब आश्रयादिक करनों चित्तमें दोष होय तब तांई आश्रय नहिं करनो क्यों जो योगीनकूं ध्यानकरिवेयोग्य प्रभु कहां? ओर दुष्ट जीव कहां? एसी आशंका होय तहां कहत हें.

श्लोकः-अजामिलादिदोषाणां नाशकोऽनुभवे स्थितः।
ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः कृष्ण एव गतिर्मम॥७॥

टीका-अजामिलादिकनके दोषनकूं नाशकरिवेवारे प्रभु

अनुभवमें रह्यो हें जिनने अपनो समग्र माहात्म्य जतायो हे सो श्रीकृष्ण ही मेरी गति हो; इतनें वेदमें लिख्यो हे कि प्रवचनादिककरिकें प्रभु प्राप्य नहिं हे परंतु जिनको वरण (स्वीकार) प्रभु करत हें विनसूं हि प्राप्य होय हें. ओर गीताजीमें अनन्यभक्तिसूं प्राप्त होयवेको लिख्यो हे तासूं प्रभूनको अंगीकार होयगो ओर भगवद्भक्तको अनुग्रह होयगो तो दोषवारेकूं हू भक्तिकरिकें प्रभु गम्य हे; तासूं महापुरुषद्वारा शरणागति होयगी तो सब सिद्ध होयगो. जेसें अजामिलनें विष्णुके पार्षदनको वाक्य सुन्यो तब प्रथम जो कृत्य किये हते ताको पश्चात्ताप करिकें गंगद्वारमें जायकें भगवद्भक्ति करी ताकरिकें वाके सबपापकी निवृत्ति होयकें उत्तम गति भयी. ये केवल पुत्रके उपचारसूं नारायणनाम ग्रहणकरिवेसें भगवानके पार्षदको भगवद्धर्मरूप वाक्य सुनिवेको समय अजामिलकूं प्राप्त भयो ताको फल मिल्यो तो बुद्धिपूर्वक शरणागतिकरिवेवारेनके सब पापनकी निवृत्ति होयवेमें कहा संशय हे ! तासूं दोष प्राप्त भयो होय तो हू केवल भगवानको हि आश्रय करनो परंतु आश्रयकूं छोडिकें ओर कछु नहिं करनो. ॥७॥

स्वाध्यायको अध्ययन करनो, जो जो ऋतुको अध्ययन करे, ताको फल वाकूं प्राप्त होय इत्यादिक वेदवाक्य हे तिनकरिकें कर्ममार्गमें हू ब्रह्मयज्ञ ओर अध्ययनादिकनसूं अग्न्यादिकनकी सायुज्यप्राप्ति होय हे ओर ब्रह्मज्ञानकरिकें अक्षरब्रह्मके संग सायुज्य होयवेको

श्रीगीताजीमें हू लिख्यो हे तब श्रीकृष्णाश्रयमें विशेष कहा हे जो वाकीहि प्रार्थना करत हो? एसी शंकाकी निवृत्तिके लिये वाको तारतम्यज्ञानार्थ सर्वस्व-रूप भगवान् हि हे एसे स्वरूपके निरूपणपूर्वक अर्थरूपपनेसूं आश्रयकी प्रार्थना करत हें.

श्लोकः—प्राकृताः सकला देवा गणितानन्दकं बृहत्।
पूर्णानंदो हरिस्तस्मात् कृष्ण एव गतिर्मम॥८॥

टीका—समग्रदेव प्राकृत हें तथा अक्षरब्रह्मके आनंदकी गणना होय हे ओर हरि पूर्णानंद हें तासूं श्रीकृष्णहि मेरी गति हो; इतनें सब देव सात्विकाहंकारसूं उत्पन्न भये हें तेसें तैत्तरीयोपनिषदमें आनंदकी गणनाके प्रसंगमें समग्र पृथ्वी द्रव्यसूं पूर्ण होय सो मनुष्यनको एक आनंद हे एसे मनुष्यके एकसो आनंदको मनुष्यगंधर्वनको एक आनंद होय हे. या-रीतिसूं शतगुण आनंदकी गणना करिहे तहां ब्रह्माजीके एकसो आनंद होय हे एसें आनंदकी गणना करी हे; तासूं अक्षरब्रह्महू गणितानंद हे ओर श्रीकृष्णहि भक्तनके दुःखहर्त्ता तथा पूर्णानंद हें; तासूं श्रीकृष्ण हि मेरी गति हो. देवादिकनके सायुज्यमेहू देव प्राकृत होयवेसूं विनकी मुक्तिकूं सगुणपनो हे ओरब्रह्मलोकपर्यन्तकूं फिर संसारमें आयवेको गीताजीमें लिख्यो हे तासूं अल्पानंदनो हे तैसें ज्ञानमार्गमें अक्षरब्रह्मके संग

सायुक्य होय हे तामें गणित आनंद होयवेसूं वहोंत क्षुधितकूं अल्प भोजन होय सो अभोजनतुल्य होय हे तेसें अल्पपनो होयवेसूं कछु उपयोगी हे नहि, ओर श्रीकृष्ण तो पूर्ण आनंदरूप हें तेसें निगुणमुक्तिकूं देवेवारे हें तासूं विनकी हि शरणभावना करनी ॥८॥

विवेक और धैर्यसूं रहिकें भक्तिकरिवेमें भगवान्हू वश होत हें तब दैन्यकरिकें आश्रयकी प्रार्थना क्यों करत हो ? ऐसी शंका करिकें सर्व-मनोरथके पूरक हें ओर सर्वफलके-लिये इच्छित हें तासूं इच्छित-रूपपणो हे एसें कहिकें आश्रयकी प्रार्थना करत हें.

श्लोकः—विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः ।
पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम ॥९॥

टीका—विवेक, धैर्य ओर भक्त्यादिककरिकें रहित, विशेष-करिकें पापमें आसक्त ओर दीन एसो जो में ताकूं श्रीकृष्ण हि गतिरूप हो; इतनें प्रथम जो निरूपण कियो सो प्रभुके स्वरूपको विचार करिकें कियोहे ओर अब जीवके स्वरूपको विचारकरिकें कहत हें जो भगवान् अपनी इच्छासूं सब करेंगे एसें जानिकें प्रार्थना नहि करनी एसो निश्चय होय सो विवेक कह्योजाय हे तथा भक्तिविरोधि जो दुःख होय

ताकी निवृत्तिको उपाय नहिं करिकें आधिभौतिक, आध्यात्मिक ओर अधिदैविक एसे तीनप्रकारके दुःखकों सहनकरनो सो धैर्य कह्योजाय हे ओर साधनरूप भक्ति श्रवणादिक कहिजाय हे. मूलमें आदिपद हे. तासूं दूसरो पुण्य हू समजनो सो कछू नहिं हे तेसें विनके साधन हू मेरेमें नहिं हे पापमें आसक्तहूं अर्थात् विपरीत साधन करूं हूं ओर दीन (दरिद्र)हूं, एसो जो में हूं ताकूं श्रीकृष्णहि गतिरूप हो. यहां मेरेमें विवेक-धैर्यादिक वाक्य कहे हे सो वाक्य कहिवेवारे श्रीआचार्यचरण हैं विनकों एसे विशेषण नहिं चहियें एसी शंका मनमें होय ताको समाधान एसें करनो जो वेदमें " में हाथ जोडिकें गुरुकी शरण जाउंहूं " " में नमन करूं हूं " मेरो " कल्याणहो " इत्यादिक वाक्यनमें जेसें यजमानके अधिकारकरिकें कह्यो हे तेसें यहां श्रीआचार्यचरणननें भक्तनके अधिकारकरिकें कह्यो हे एसें समजनो. ॥ ९ ॥

सर्वथा जो साधनरहित होय ताकूं शरणागतिमेंहु इच्छितफलकी सिद्धि केसें होयगी ? क्यों कि भगवान् तो जीवकी कृतिके अनुसार फल देत हें तब सब साधन छोडिवेमें देवतान्तरको हू अनादर होयवेसूं देवताहू विघ्न करेंगे पसी आशंका-करिकें शरणागतिमें मोक्षरूपपनो हे पसें सिद्ध करिवेके लिये विज्ञापन करत हें

श्लोकः । सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्रैवाखिलार्थकृत्।
शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम् ॥१०॥

टीका–श्रीकृष्ण सर्वसामर्थ्ययुक्त हैं और सर्वत्र समग्र-अर्थके करिवेवारे हैं, तासूं शरण आये एसे जीवनको उद्धार करिवेके लिये में श्रीकृष्णकी विनति करत हूं; इतनें प्रभु सर्वसामर्थ्यसहित हैं तासूं आपके सामर्थ्यसूंहि सब करसके हैं सो जो मर्यादाराखिवेकी इच्छा होयगी तो ज्ञानादिकनको दान करिकें हू फल देयगें अथवा सर्वसामर्थ्य जामें हे एसे सुदर्शनादिकसहित श्रीकृष्ण हैं तासूं सुदर्शनादिककरिकें हू भक्तनको अनिष्ट निवृत्त करे हैं ओर सबदेशनमें, वर्णनमें, आश्रमनमें, तथा कर्मादिकनमें हू सबअर्थके करिवेवारे श्रीकृष्ण ही हैं सो विनके शरण जो जीव आये होय विनकूं फलदान करेयगें; क्यों जो "जो जारीतिसूं मेरि शरण आवे हे ताकूं वाहिरीतिसूं में भजत हूं" एसी गीताजीमें आपकी प्रतिज्ञा हे तासूं शरणागतिकी मर्यादा हि एसी हे जो शरण आये होय ताकी सबतरेहसूं रक्षा प्रभुहि करत हैं, तासूं दीनभावकरिकें शरणागति हि करनी ॥ १० ॥

"पशुके दश प्राण हैं; आत्मा ग्यारहमो हे" एसें श्रुति

में कह्यो हे, तासूं प्राणनकीसीनाई उपर कहे सब
श्लोक सबसिद्धकरिवेवारे हें एसें जतायवेके
लिये दशश्लोककरिकें स्तोत्रको निरूपण
करिकें आत्माकीसीनाईं फल अक्षय्य हे
एसें जतायवेके लिये आत्मरूपग्यार-
हमेश्लोककरिकें स्तोत्रपाठको
फल कहत हें।

श्लोकः ॥ कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः
पठेत् कृष्णसन्निधौ ॥
तस्याश्रयो भवेत् कृष्ण इति
श्रीवल्लभोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥

टीका–यह कृष्णाश्रय–स्तोत्र श्रीकृष्णकी सन्निधिमें जो पढे तासूंआश्रयरूप श्रीकृष्ण होय एसें श्रीवल्लभाचार्यजीनें कह्यो हे, इतनें श्रीकृष्णको आश्रय यथार्थ निरूपणकरिवेवारो येहि स्तोत्र हे दूसरो एसो स्तोत्र नहिं हे; तासूं याके पाठसूंहि आश्रय दृढ होय. श्रीकृष्णकी संनिधिमे पाठकरे अथवा श्रीकृष्णके निमित्त पाठ करे तोहू आश्रय दृढ होय केवल स्तोत्रके पाठमात्रसूं एसो फल केसें होय ? एसी शंका होय ताको समाधान एसें हे जो नलकूबर तथा मणिग्रीव नारदजीके

शापतें यमलार्जुन भये तब श्रीनारदजीनें देवतानके सोवर्ष पीछें श्रीकृष्णको सांनिध्य होयवेको कह्यो हतो सो वाक्य सिद्धकरिवेकेलिये श्रीकृष्ण आपने वहां पधारिकें नलकूबर-मणिग्रीवको उद्धार कियो तब श्रीआचार्यजी साक्षात् आपके मुखारविंदस्वरूप हैं आपके स्वरूपकूं यथार्थ जानिवेवारे हैं ओर दैवीजीवनके उद्धारार्थ आपने प्रकट किये हैं विनके वचनसूं तो आप अनुग्रह करेंहिगें ये जतायवेके लिये मूलमें आपको नाम धरयो हैं तामें संशय नहिं राखनो. ॥ १२ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचितश्रीकृष्णाश्रयस्तो-
त्रकी व्रजभाषामें संक्षिप्तटीका गोस्वामिश्री-
नृसिंहलालजीमहाराजकृत संपूर्ण भई ॥

श्रीकृष्णाय नमः । श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीचतुःश्लोकीकी व्रजभाषामें संक्षिप्तभावार्थटीकाको प्रारंभ।

लोकमें धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष एसें चार पुरुषार्थ स्मृतिमें कह्येसाधनसूं पूजामार्गके अनुसार प्राप्त होय हें तामें एसी प्रतिज्ञा हे कि ब्राह्मणदेहविना मुक्ति नहिं होय हे तामे हू बुद्धयादिकनकी शुद्धिपूर्वक सांगोपांङ्ग साधन करिवेसूं निर्वाह होय हे एसें जो ससाधननकूं मुक्ति होयवेको कह्यो सो हू अक्षरकी प्राप्तिरूप मुक्ति होय हे, सोहू क्वचित् होय हे तब निःसाधनको जन्म तो वृथाहि होय ताकी निवृत्तिकेलिये श्रीप्रभूनने आपके श्रीमुखरूप वाणीके पति (श्रीमहाप्रभून) कों भूतलपें प्रकट किये हें. बिनश्रीमहाप्रभूनने पुष्टिमार्गीय-जीवनकूं स्वसिद्धांतजतायवेकेलिये चतुःश्लोकीनामकग्रंथ निरूपण कियो हे; जासूं मर्यादामार्गीय-धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्षसूं जुदे पुष्टिमार्गीय-धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्षको वेग बोध होय हे; तामें चारश्लोकनसूं चारचोपुरुषार्थनको निरूपण कियो हे तामें प्रथमश्लोकसूं धर्माचरणरूप पहेले पुरुषार्थको निरूपण अनुष्टुप् छंदसूं करत हें.

श्लोकः—सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।
स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः कापि कदाचन ॥१॥

अर्थ—निरंतर सर्वभावकरिकें व्रजाधिप (श्रीकृष्ण) सेवन-करिवे योग्य हैं. पुष्टिमार्गीय—जीवनकों सेवनरूपहि धर्म हैं, कोउकालमें अथवा कोउस्थलमें अन्य धर्म नहिं हे; इतनें व्रजाधिप जो सच्चिदानंद—श्रीकृष्ण सोहि पुष्टिमार्गीयनकों सेवनीय हे. सो श्रीभागवतदशमस्कंधजन्मप्रकरणविवरणमें श्री महाप्रभूननें आज्ञा करी हे जो " श्रीगोकुलमें निःसाधननकूं फलरूप एसे श्रीकृष्ण प्रकटे हें तासूं हम सबओरसूं निश्चित भये हें " तासूं निःसाधननकेलियेहि भगवानको प्राकट्य होयवेसूं दैवीसृष्टिमें उत्पन्न भये एसें साधनसंपत्तिरहित जो जीव हें उनकूं श्रीकृष्ण अवश्य सेवाकरिवेयोग्य हें सो सेवा सर्वभावसूं करनी, इतनें देह, इंद्रिय, प्राण, स्त्री, पुत्र, धन ओर गृहादिक सब भगवानकेही हें मेरे नहिं हें एसो जो भाव हे सो अहंताममतात्मक—संसारकूं मिटायवेवारो हे. जीवमें जब एसो भाव आवे तब निश्चित होय सो जीव भगवन्मय ओर मुक्त कह्योजाय हे एसेजीवकी दशाको वर्णन भक्तिवर्द्धिनीमें कियो हे. " जब प्रभूनमें दृढासक्ति होय तब गृहमें स्थित जो स्त्री, पुत्रादि उनको बाधकपनो ओर अनात्मपनो दीखनेमें आवे हे. ओर प्रभुमें व्यसन इतने प्रभुसिवाय रह्यो न जाय एसी दशा जब होय तब सो जीव कृतार्थ होय हे " तासूं सर्वात्मभाव हे सो दैवीजीवनको मुख्य धर्म हे सो निःसाधननकूं अवश्य करिवेयोग्य हे. एसें भावसूंहि सबकार्य

सिद्ध होय हे सो श्रीभागवतमें कह्यो हे जो "केवल भावकरिकेंहि श्री गोपीजने, गायें, यमलार्जुनप्रभृति वृक्षें जांबुवानप्रभृतिमृगें ओर मूढबुद्धिवारे–कालीयप्रभृतिसर्पनहू सिद्ध होयकें मोकों प्राप्त भये हैं." एसे श्रीभगवानके वचनसूंहि सर्वात्मभावकूं मुख्यधर्मपनो सिद्ध होय हे. यहां शंका होय जो ऊपर कह्यो जो धर्म सो एक-काल अथवा देशमें करिवेयोग्य धर्म होयगो ओर सर्वदा करिवेको न्यारो धर्म होयगो एसी शंका नहिं होयवेकेलिये मूलमें 'नान्य' ओर 'कदाचन' एसे दोय पदको ग्रहण करिकें एसें दिखायो हे जो हमने कह्यो जो धर्म तासूं अन्य कोउ धर्म पुष्टिमार्गीयकों कार्यसिद्धकरिवेवारो नहिं हे, क्यों जो मर्यादामार्गीय–धर्मविभूतिपर्यवसायी हे; इतने मर्यादामार्गीयसाधनसूं भगवानकी विभूतिकी प्राप्ति होयसके परंतु पुरुषोत्तमकी प्राप्ति न होय ओर देशकुलके धर्ममेंहू विपर्यास दीखवेमें आवे हे तासूं येहि धर्म कर्तव्य हे एसो मूलके "क" शब्दसूं सूचित होय हे. कालान्तरमेंहू यह धर्म त्याज्य नहि हे प्रत्युय विधेय हे एसें मूलके "कदाचन" पदसूं सूचित होय हे. ॥१॥

पूर्वश्लोकमें प्रथम-पुरूषार्थ जो पुष्टिमार्गीयनकूं पुरूषोत्तमसेवनरूप धर्म हे ताको निरूपण करिकें अब द्वितीयश्लोकसूं द्वितीय-पुरुषार्थ जो अर्थ ताको निरूपण करत हें.

श्लोकः—एवं सदा स्व कर्त्तव्यं स्वयमेव करिष्यति ॥
प्रभुः सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिततां व्रजेत् ॥२॥

अर्थ—ऊपर कह्योप्रमाण भगवत्सेवास्मरण निरंतर कर्त्तव्य हे ओ भक्तनके लौकिक वैदिक कार्यनकूं तो आप सर्वसामर्थ्य-युक्त प्रभु हें तासूं प्रार्थनाकियेविनाहि संपादन करेंगें तासूं भगवद्भक्तकू यहलोकपरलोककी चिंता छोडिकें निश्चित रहेनो; इतने भगवान् आपहि प्रमेयबलतें भक्तके सर्वअर्थकूं संपादन करत हें; तासूं पुष्टिमार्गीयनकूं अर्थरूपहू प्रभुहि हे.

एसें अर्थको निरूपण करिकें तृतीय-श्लोकसूं
पुष्टिमार्गीयकामको निरूपण करत हें.

श्लोकः—यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः
सर्वात्मना हृदि ।
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ॥३॥

अर्थ—जब श्रीगोकुलाधीशकूं सर्वभावकरिकें जाजीवने हृदयमें स्थापन कियो तब वाकूं श्रीपुरुषोत्तमसूं उत्कृष्ट सर्वकाम पूर्णकरिवेवारो कहा पदार्थ हे ? अर्थात् प्रभुसिवाय कोउ ओर भक्तके कामपूरक नहिंहे वेहि सर्वकामपूरक हें. विनकूं जब हृदयमें स्थापित किये तब लौकिक सिद्धकरवेवारी-युक्तीनसूं ओर वैदिक जो यागादिसाधक जो वचन ताकरिकें कहा कर्तव्य हे ? कछु कर्त्तव्य नांहिहे. सोहि श्रीमहाप्रभूनने

अंतःकरणप्रबोधके प्रथम श्लोकमें कह्यो हे जो "अंतःकरण ! मेरो वाक्य सावधान होयकें सुन जो श्रीकृष्णसूं अधिक कोउ दैवत, दोषकरिकें रहित नहिंहे." इतने प्रभु एकहि निर्दोष हैं ओर सब सदोष हैं तासूं निर्दोषकों हृदयमें स्थापितकियेसूं भक्तके सबकामकी सिद्धिहे. ओर पूर्व जो नारदादिक मुनियें भये हैं विननेंहू भगवत्प्राप्तिके लिये प्रभुकी सेवा करिवेको उपदेश कियो हे. जब वह प्रभुहि जाके हृदयमें विराजे वाभक्तकूं सेवाके फलमें कहा न्यून रहेहे ? सब काम पूर्णहि होयहे ॥ ३ ॥

एसें कामरूप-तृतीय-पुरुषार्थको निरुपण करिकें
मुक्तिरूप चतुर्थ-पुरुषार्थको अब
निरूपण करत हें.

श्लोक—अतः सर्वात्मना शश्वत् गोकुलेश्वरपादयोः।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः॥४॥

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता चतुः-
श्लोकी समाप्ता

अर्थ—श्रीगोकुलेश्वर हृदयमें विराजे तापीछेंहु सर्वात्मकरिके विनके चरणकमलको स्मरण ओर भजन (सेवा) न छोडनो एसी मेरी मति हे; इतने औषधके सेवनसूं सुखी भयो एसो

पुरुषहू औषध खाय तो आगें रोग होयवेको संभव न रहे ताप्रकार प्रकृतमें प्रभुकी प्राप्तिभयेपीछेंहू जीवकूं आसुरजीवके संगसूं आसुरावेश नहिंहोयवेकेलिये प्रभुको स्मरण ओर भजनरूप साधन औषधकीनाईं सदा कर्त्तव्य हे. एसें श्रीमहाप्रभुजी दैवीजीवनके उपर कृपा करिकें विनकूं जतायवेकेलिये मेरी एसी मति हे याप्रकार आज्ञा करेहें. ॥४॥

इतिश्री चतुःश्लोकीकी गोस्वामिश्रीनृ-
सिंहलालजीमहाराजकृत व्रज-
भाषामें संक्षिप्तटीका समाप्त.

श्रीकृष्णाय नमः । श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।

अथ भक्तिवर्द्धिनीकी संक्षेप भाषाटीकाको प्रारंभ

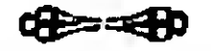

अथ पुष्टिमार्गमें अंगीकृत ओर भक्तिको वृद्धिके प्रकारकूं नहिंजानवेवारे-जीवनके उपर कृपा करिवेवारे श्रीआचार्यजी, स्वप्रकटिमार्गमें प्रवर्त्तमाना भक्ति ओर ताकी वृद्धिके प्रकार कहिवेकी प्रतिज्ञा करत हें.

श्लोकः—यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात्
तथोपायो निरूप्यते ।
बीजभावे दृढे तु स्यात् त्यागाच्छ्रवणकीर्त्तनात्
॥ १ ॥

टीका—श्रीआचार्यजी आज्ञा करत हें जो स्वमार्गीय-भक्तिकी वृद्धि होयवेके उपायको निरूपण होय हे जो स्वमार्गमें कह्येभयेसाधननसूं ओर जो मर्यादामार्गीय साधनहें विनको परित्याग तथा स्वमार्गीय—श्रवण ओर कीर्त्तनको परिशीलन करिवेसूं भाव दृढ होय तब भक्तिकी वृद्धिं होय हे. यहां कोउ कहे जो भक्तिकी उत्पत्ति और ताकी वृद्धिके उपाय तो श्रीभागवत तथा गीताजीप्रभृति ग्रन्थमें विस्तारसूं वर्णित हे. तब श्रीआचार्यजी ताके लिये नूतनग्रंथ करिवेको

परिश्रम क्यों करत हैं ? एसी शंकाको समाधान तो यह हे जो श्रीभागवतादिकमें " दान. व्रत, तप, होम, स्वाध्याय, संयम ओर इतर श्रेय उनकरिके श्रीकृष्णमें भक्ति सिद्ध होय हे " इत्यादि श्लोकनसूं जो भक्तिकी उत्पत्तिको प्रकार ओर " आपकी कथाके पान करिवेसूं जिनकूं भक्तिकी वृद्धि ओर निर्मल अंतःकरण भये हे वे वैराग्य हे. सार जामें एसे ज्ञानकूं प्राप्त होयके आपकें स्थानकूं प्राप्त होय हे" इत्यादिकवाक्यनसूं ताकी वृद्धि निरूपित हे सो दान. व्रतादिक मर्यादामार्गीय साधननसूं होयसके हे ओर वृद्धिको फल ज्ञान अथवा मर्यादामार्गीय भक्ति हे तासूं अक्षरकी प्राप्ति करायवेमें वा भक्ति उपक्षीण होयजाय हे तासूं पुरूषोत्तमलीलाको अनुभव करायवेवारी जो पुष्टिभक्ति ओरताकी वृद्धिके उपायको याग्रंथसूं श्रीआचार्यजी निरूपण करत हैं सो उचिततर हे. अब पहिलें बीजभाव दृढ होयवेको कह्यो ताको स्वरूप कहत हैं जो पुष्टिमार्गके आचार्यद्वारा मार्गरीतिअनुसार प्रभुकूं आत्माप्रभृतिको निवेदन भये पीछें प्रभु स्वतः वा जीवकों शरण सिद्ध करत हैं ताकूं याग्रन्थमें बीजभाव कह्योजाय हे. जेसें क्षेत्रमें बीज वींये पीछें जलसेचनादिक होय तब अंकुरादि होय हे. केवल जलसेचन अंकुरकी उत्पत्तिमें असमर्थ हे एसें भक्तिमार्गमें आगे कह्यो बीजभाव भयेपीछे श्रवण मननादि भक्तिकूं उत्पन्न करिसके हे विना बीजभाव वे अकिंचित्करप्राय

हे एसें श्रीहरिरायजी आज्ञा करत हैं ॥ १ ॥

पसें बीजकी दृढताको प्रकार प्रथमश्लोकसूं कहिकें अन्यव्यापारसूंहू वामें विघ्न नहिं आय वेके लिये भगवद्भजनरुप उपायकी दृढता सिद्धिके लिये अब कहत हें.

श्लोकः—बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः।
अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः॥२॥

टीका—स्वधर्माचरणपूर्वक गृहमें रहिकें सेवाप्रतिकूल—उद्योगकूं छोडिकें पूजा (प्रेमपूर्वदर्शन) ओर श्रवणादिकसूं श्रीकृष्णको भजन (सेवा) करनो सो बीजभावकी दृढताको प्रकार हे; इतने पुष्टिमार्गमें उक्तसाधनसूं अन्य—मर्यादिक-साधनको परित्याग करिवेको मूलके ' तु ' शब्दसूं सूचित होय हे. ओर पुष्टिमार्गीयसाधननमें मुख्य सेवा सो भजनानुकूल—गृहमें रह्येविना होयसके नहिं तासूं मूलमें गृहमें रहिवेको कह्यो हे. ओर धर्म दोयप्रकारके हे; तामें एक तो जाको शरीरमें अंत आवे सो ओर दूसरो आत्मामें जाको अंत आवे हे सो तामें संध्यावंदनसूं लेयकें यागपर्यंत धर्म स्वर्गादि-भोगरूपफलकूं देवेवारे हे सो फल शरीरसूं अनुभूत होय हे. ओर गीताजीमें कह्येप्रमाण फलभोग होयचूके तब पृथ्वीउपर गिरे हे तासूं स्वधर्मपदसूं यह धर्म नहिं लेनो किंतु आत्मधर्म जो काहुप्रकारसूं विकृत नहिंहोयवेवारो भगवद्धर्म हे सो

लेनो एसें सूचित होय हे. सो धर्म प्रभुकी सेवा हे सो श्रीभागवतमें प्रह्लादजीको वचन हे जो " आदर्शमें प्रतिबिंबितमुखकूं देखिकें अपने मुखमें जो जो शृंगार होय सो हि प्रतिबिंबस्थानीयमुखकूं होय तेसे मनुष्य प्रभु कूं जो जो मान देय हे सो आत्माके लियेहि हे. " एसें वर्णित जो भगवत्सेवारूप-आत्मधर्म सो स्वधर्मपदसूं लियोजाय हे. ओर स्वधर्मतः एसें " तसिल् " प्रत्यांतरूप लिखवेको अभिप्राय तो यह हे जो तसिलूप्रत्ययांतशब्द अव्यय होयवेसूं वामें काहुप्रकारकी विकृति नहिं होय हे एसै यहांहु अव्ययको प्रयोग करयो हे तासूं हु काहुप्रकार विकृत न होय एसो धर्म लेवेको अभिप्राय दीखे हे ओर फलात्मक-श्रीकृष्णके उपादानसूं यह भजन मेरे फलरूप हे एसें जानिकें करिवेको बोध होय हे. यामें जो पूजा शब्द हे तासूं आगमोक्तपूजाको ग्रहण करिवेको नहिं किंतु श्रीगोपीजननने " प्रणयपूर्वक दर्शनसूं ये हरिणीयें श्रीकृष्णको पूजन करतभई " एसें दशमस्कंधमें कह्यो हे वहां प्रेमपूर्वकदर्शनकों पूजाके अर्थरूप गिन्यो हे एसी पूजा यहांहु लेवेकी हे. ओर श्रवणकी जो मूलमें आज्ञा हे सो सेवाके अनोसरमें करिवेकी हे. ॥ २ ॥

अब प्रभुमें दृढविश्वास होय तो प्रभुहि वाको योगक्षेम चलावत हें परंतु दृढविश्वास न आवे एसे जीवनकूं गौणपक्षमें

व्यावृत्ति (उद्योग) करिवेकी
आज्ञा करत हैं.

श्लोक—व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत् सदा ।
ततः प्रेम तथाऽऽसक्तिर्व्यसनं च यदा भवेत् ॥३॥
बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नापि नश्यति ।

टीका:—भगवत्सेवामें प्रतिकूल—व्यापारको त्याग करिवेकी आज्ञा आगेंके श्लोकसूं करी अब कछु उद्योग करनो पडे तोहु चित्तकूं प्रभुमेंहि राखिकें करनो. ओर व्यावृत्तिमें तथा व्यावृत्तिसूं मुक्त होयकें श्रवणादि करने. आदिशब्द मूलमें लिख्यो हे तासूं श्रवण, स्मरण, चिंतन, कीर्त्तनप्रभृत्ति अनोसरमें करनें. एसें भक्तिमार्गीय—भक्तिकी वृद्धि होयवेको उपाय कहकें अब भक्ति बढवेको क्रम कहत हैं जो प्रथम तो श्रीआचार्यजीके कुलद्वारा भगवदंगीकार सिद्ध होय तब प्रेम इतने स्वतः प्रभुमें प्रवृत्ति करायवेवारो स्नेहको अंकुर हृदयमें स्फुरे हे तापीछे प्रभुमेंहि मनकूं लगायवेवारी आसक्ति होय हे ताकूं प्रौढस्नेह कहेहे तापीछे एकक्षणहू प्रभुको वियोग सह्यो न जाय एसो प्रभुमें व्यसन होयहे. एसें व्यसनपर्यंत भाव बढे ओर प्रभुको क्षणमात्र वियोग सहन न होयसके तब बीजभाव दृढ भयो एसें जाननो. जाजीवकूं आगेंकहेप्रमाण बीजभावकी दृढता भई हे सो, दुःसंगादि लौकिक-दोष

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीजलभेद ग्रंन्थकी व्रजभाषामें संक्षिप्त-टीकाको प्रारंभः

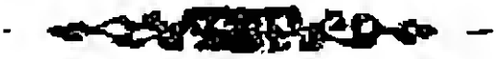

अपने (पुष्टिमार्गीय-वैष्णवनकूं) सेव्य श्रीकृष्ण, केवळ भावकरिकें हि प्राप्त होयसकें हैं. विनाभावसूं संपादित-ज्ञान-दिकहू प्रभुप्राप्तिमें बाधक हैं एसें श्रीभागवतादिक-सबग्रन्थनमें विदित हे; तासूं भावरहित कृति, अस्नेह (विनाघृतके) भोजनकीनाईं फलसंपादक नहिंहोयवेसूं श्रीआचार्यजी-महा-प्रभुजी निजजनके उपर कृपा करिकें, विनके भावकी वृद्धि होयवेके लिये आप भावको निरूपण करिवेकी प्रतिज्ञा करत हैं.

श्लोकः-नमस्कृत्य हरिं वक्ष्ये तद्गुणानां विभेदकान् ।
भावान् विंशतिधा भिन्नान् सर्वसन्देहवारकान् ।१।

टीका-प्रभूनकूं नमनकरिकें भक्तिके साधनमें जो जो संदेह हैं विनकूं मिटायवेवारे, ओर रजोगुण, तमोगुण ओर सत्वगुण विनकूं निवृत्तकरिवेवारे न्यारे न्यारे वीसप्रकारके भावनकूं में आगें निरूपण करुंहूं; इतने जीव प्रभुकूं नमनविना ओर कार्य नहिंकरसकेहे एसें जतायवेके लिये आप प्रथम नमनकरिवेकी अज्ञाकरत हे. " तद्गुणानां विभेदकान् " एसे

मूलके वाक्यके दोचार अर्थ होयसकेहे; जेसें प्रभुनके जो सर्वसमत्वादि गुण विनके मिटायवेवारे भाव हे इतने जो भक्त भावकूं बढायकें भक्ति करे तो प्रभु आपको सर्वसमत्वरूप जो गुणहे ताकूं छोडिकें वाजीवके उपर पूर्ण कृपा करेहें सो बात श्रीगीताजीमें "मैं सर्वप्राणीनकूं समान हूं मेरे कोउ शत्रु ओर मित्र यद्यपि नहि हे तो हू जो मेरोहि भजन करे हे सो मेरेमें हें ओर विनमें मै हूँ" एसी आज्ञा स्पष्ट करीहे. अथवा जीवके जो धर्म वामें विलक्षणताकरिवेवारे अथवा प्रभुके जो गुण विनको आकर्षण करिकें जीवमें दिखायवेवारे सब भाव हे. एसें यावाक्यके अनेकप्रकारके अर्थ श्रीकल्याणरायजीप्रभृति-बालकनने किये हे. भावशब्दक यद्यपि अनेक अर्थ होय हे तो हू यहां तो स्नेह ओर तासूं होयवेवारी अवस्था हि भावशब्दसूं जाननी; क्यों जो नाट्याचार्य-भरतमुनि-प्रभृतीनने भावको अर्थ स्नेहरूपहि कियो हे सो "रतिर्देवादिविषया भाव इत्यभिधीयते" (देवादिकनमें जो रति (प्रीति) हे ताकूं भाव कहे हें.) यावाक्यसूं कह्योहे. गुणके भेदकरिकें वे भाव वीसप्रकारके हें. जब प्रभुमें भाव बढे तब आपहि सर्व संदेह नष्ट होयजाय हे तासूं मूलमें 'सर्वसंदेहवारकान्' एसें कह्योहें ॥१॥

वेदमेंतैत्तरीय-श्रुतिमें "कुप्याभ्यः स्वाहा" वहांसूं लेयकें सर्वाभ्यः स्वाहा" वहांतांई जलके भेदको निरूपण हे ता प्रमाण गुणहू भेदकूं प्राप्तहोय हें सो कहत हें.

आइमिलवेसूं ओर कालादिनकी प्रतिकूलतारूप अलौकिक-दोषसूंहू भक्तिमार्गसूं सरके नहिं हे. ॥३॥

एसें क्रमसूं स्नेह बढवेकी रीति कहिकें अब स्नेह होयवेमें बाधकरुप प्रभुसिवाय ओर वस्तूनमें स्नेह. गृहमें आसक्ति ओर प्रभुविनाहु कालनिर्वाह ये तीन दोष हैं सो जब प्रभुमें एक भाव बढे तब तक बाधक मिटे, दूसरो भाव बढे तब दोय बाधकदोष निवृत्त होय ओर जब प्रभुमें व्यसनपर्यंत भाव होय तब भावविघातक-दोष सब दूरी होय हे सो आक्रमसूं एकभावकी वृद्धिमें एक दोषकी निवृत्ति होय सो क्रम कहत हैं.

श्लोक-स्नेहाद्रागविनाशः स्यादासक्त्या
स्याद् गृहारुचिः ॥४॥
गृहस्थानां बाधकत्वमनात्मत्वं च भासते ।
यदा स्याद् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यादतदैव हि ॥५॥

टीका-जब प्रभुमें स्नेह होय तब लौकिकमें स्नेह न रहे, एसे जब प्रभुमें आसक्ति होय तब गृहमेंसूं आसक्ति छूटजायहे (४) इतनोहि नहिं किंतु गृहमें रहेएसे स्त्रीपुत्रप्रभृति (भगवदीय न होय तो) मोकूं भगवद्धर्म करिवेमें ये सब बाधक हैं

एसें दीखे ओर विनमें अनात्मताकीहू स्फूर्ति होय; इतने भगवदीयके आत्मा तो श्रीकृष्ण हैं तासूं जो भगवत्संबंधवारे जीव हैं तिनमें अपनेपनेकी स्फूर्ति होय हे, स्त्रीपुत्रादिकनमें अपनेपनेकी स्फूर्ति नहिं होयहे. क्यों जो वे तो लौकिकासक्तिके कारणरूप हैं वे हु जो भगवदीय होय तो भगवदीयपनसूं आसक्ति बाधक नहि हे तासूं विनको बाधकपनो दीखवेमें आवे हे. अब स्नेहवृद्धिकी पराकाष्टा कहत हैं जो जब प्रभुमें व्यसन भयो तब सो जीव कृतार्थ होय हे; इतने अर्थ जो भक्तिमार्गकी रीतिके अनुसार प्रभुको फलरूप संबंध सो जाकूं भयो हे एसो जीव होयजाय हे. ॥५॥

एसें प्रभुमें व्यसनवारेकी योग्यता, भाव
ओर फलको निरूपण करिके अब
याकी आगेकी व्यवस्था कहतहें.

श्लोकः—तादृशस्यापि सततं गृहस्थानं विनाशकम्।
त्यागं कृत्वा यतेद्यस्तु तदर्थैकमानसः ॥६॥
लभते सुदृढाम् भक्तिं सर्वतोप्यधिकां पराम्।

टीका—एसेभाववारे जीवकूंहू तादृश—भगवदीयके संगविना वरमे स्थिति हे सो भावको नाश करिवेवारी हे तासूं वाकूं गृहमें रहनो उचित नहिं हे; क्यों जो जो जाको नाश करिवेवारो हे सो वाके समीप रहि नहि सके हे. जैसें " हे कमल

सरीखे नेत्रवारे जबसूं आपके चरणारविंदको स्पर्श भयो हे तबसूं ओरलोगकें आगें हम ठाड़े रहसके नहिं हैं' एसें व्रजरत्नरूप-श्रीगोपीजननें श्रीठाकुरजीसूं कह्यो हे. ताकी विवृत्तिमें श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हैं जो देहके अभिमानी पुरुष व्याघ्रकूं देहविघातक समझिकं वाकी पास ठाडो नहिं रहिसके हे एसें तादृशीयकूं लोकिकासक्तके पास रहिवेसूं भावकी हानि होयजाय ? तासूं वाभाववारो गृहको त्यागकरि मनमें एक प्रभुकेहि मिलवेकी अभिलाषा राखि भावकूं वढायवेको यत्न करे तो एसें करते करते सुतरां दृढ एसी भक्तिकूं संपादन करे हे. यहां प्रथम व्यसनपर्यंत भावकरिकें सर्वापनोद्य (सर्व लौकिकासक्तिकू छुडायवेवारी,) भक्ति कहिकें पुनः सुदृढ भक्ति कहिवेको अभिप्राय यह हे जो पहेलेकी भक्तिहु फलरूप तो हे परंतु सुदृढ इतनें सर्वात्मभाव-रूप साक्षात् स्वरूपको अनुभवरूप फल जामें हैं एसी भक्तिकूं प्राप्त होय हे. मूलश्लोकमें लाभ होय हे एसें कह्योहे वाको अभिप्राय यह हे जो पूर्व कह्यो जो अत्यंत गाढभाव ताकरिकें विद्यमानदेहको जब नाश होय तब लीलामें उपयोगी अलौकिक देह वाकी होय जाय हे पीछे वादेहसूं साक्षात स्वरूपसंबंधि-फलकूं प्राप्त होय हे. यह भक्ति फलरूप हे एसें जतावेकेलिये सर्वसूं अधिक ओर पर एसे मूलमें दोय विशेषण दिये हे; इतने मुक्त्यादिकसूं अधिक ओर अगणितपरमानंदरूप-

पुरुषोत्तममें जाको संबंध हे एसी भक्ति हे. एसें विशेषणद्वयसूं सूचित होय हें. ॥ ६ ॥

अब कदाचित् कोउ भक्तिमार्गीय पूर्वोक्त त्यागको स्वरूप समझेविनाहि 'हमहु गृहको त्याग करिकें भक्ति बढावेंगे' एसो मनमें निश्चय करिकें अधिकार विना जो गृहको त्याग करे ताकूं एसें करिवेको निषेध करत हें.

श्लोकः—त्यागे बाधकभूयस्त्वं दुःसंसर्गात्तथाऽन्नतः ।७।

टीका—जाकूं व्यसनपर्यंत भाव बढ्यो नहिं हे एसे पुरुषकूं भक्ति बढायवेके लिये गृहछोडवेमें बाधक बहोत हे. पहिलें कह्यो जो गृहत्यागी वाकूं बीजभावकी एसी दृढता हें जो वाकूं दुःसंसर्गादि दोष कछु बाधा करिसके नहिं हे परंतु याकूं तो विशेष भाव नहिं होयवेसूं दुःसंसर्ग दोष बहोत बाधा करे हे ओर शरीरनिर्वाहके लिये लोगमें काहुजगे जानापडे वहां जो देय सो सब लेनो पडे तब वामें प्रभुकूं न समर्प्यो भयो अन्नहु आवे ताके ग्रहणसूं बहिर्मुखपनो होयजाय. एसें ओरहु बहोत दोष होय हे विनमें मुख्य तो दुःसंग ओर अन्न-दोष हे तासूं मूल श्लोकमें दोउको उपादान कियो हें. ॥ ७ ॥

अब एसे अपक्कभाववारेकूं दोष कोउ न आवे और कालहु निकसजाय एसो सुलभ रस्ता उत्तरश्लोकमें कहत हें.

श्लोकः—अतःस्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः।
अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति।८।

टीका—कालनिर्वाह होय ओर दोष न आयवेके लिये सो (त्यागी) जहां स्वमार्गकी रीतिके अनुसार सेवाको प्रवाह चलतो होय एसे प्रभुके स्थान जो गोवर्द्धनादिप्रभृति तामें रहे; तामेहु भगवद्भक्तके संग निरंतर रहें; तामे हु प्रभुकी सेवा; स्मरणपरायण रहे. वहांहु एसे न करे तो दुःसंगादिक दोष लगजाय तो सब जीवन छिनमें व्यर्थ होयजाय. अब निरंतर एसें स्थिति करिवेसूं कदाचित् कोऊ भगवदीयको अतिपरिचितपनेसूं दोष दीखवेमें आवे तोहु आछो नहिं तासूं प्रकारांतरसूं रहिवेकी आज्ञा करे हैं जो जेसें प्रभुमें ओर प्रभूके भक्तमें दोषबुद्धि न होय एसें समीपमें अथवा दूरमें रहेनो परंतु भगवदीयके संगविना क्षणवारहु रहेनो नहिं. तेसें विनकूं विनकी उपर अपनी उपर तथा अपनकूं अभावहु आयवेदेनों नहिं, एसें रहेनो जामें मनमें कोउप्रकारको दोष आयवेकूं न पावे एसी रीतिसूं रहेनो. ॥ ८ ॥

एसें प्रभुमें अत्यंत भाव बढवेसूं गृह छुटजाय वाकी
ओर अज्ञानसूं गृह छोडे वाकी सिद्धिके उपाय
ओर फल कहे अब पुष्टिमार्गीय सेवा ओर
कथा वामें अन्यतरमें आसक्ति

राखिवेवारेकूं हू फलकी सिद्धि
होय सो कहत हें.

श्लोकः—सेवायां वा कथयां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत्।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम ॥९॥

टीका—श्रीआचार्यजी प्रकटित—पुष्टिमार्गानुसारी ऐसी प्रभुकी सेवामें तथा एतन्मार्गीय—भगवल्लीलाकी कथामें जाकी आसक्ति (चित्त के व्यासंगपूर्वक दृढ आग्रह) रहें; इतने काहूकूं सेवामें तो काहूकूं कथामें ओर काहूकूं दोयमें आसक्ति होय सो हु यावज्जीव नाम जहांताई देहमें प्राण रहे तहांताई रहे तो वाको काहुप्रकारसूं नाश न होय ओर पुष्टिमार्गीय-फल वाकूं सिद्ध होय वामें संशय नहिं होयवेके लिये श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हें जो मेरी बुद्धिमें एसें आवे हे जो वाको काउ-प्रकारसूं नाश न होय. इतनो कहिवेसूं फलकी निःसंदिग्धताको बोध होय हे. ॥ ९ ॥

एसें सेवासक्त ओर कथासक्तकूं देखिकें कोउ आसक्तिके
अभावमें हु उत्साहसूं सेवा करे सो वाकूं बाधा
होय सो ओर ताकी निवृत्तिको उपाय
अब कहत हें

श्लोकः—बाधसंभावनायां तु नैकांते वास ईष्यते।
हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः ॥१०॥

टीका-सेवा करिवेमें दृढता नहिंहोयवेसूं उद्वेग होय ओर भोगकी आसक्ति होय सो सेवामें बाध समजनो एसे बाधकी संभावनामेंहु मोसूं सेवा नहिं बनीसकेहें तासूं मे गृहकूं छोडिकें कोउ-एकांतमें जायकें भगद्भजन करूगो' एसो विचार करिकें सेवाकूं न छोडे; क्यों जो प्रभु सर्वके दुःखको हरण करिवेवारे हें तासूं हरिनाम हे सो उद्वेगादिककूं मिटायकें सेवामें आसक्ति दृढ करेगें तासूं जेसें बने तेसें सेवा करे. एसें करनहारकूं प्रभु भाव बढावे यामें काहुप्रकारको शंशय न करनो. एसें कथामें आसक्त होय वामें विघ्न आवे तोहु वाकूं कथा न छोडनी, तेा प्रभु सबबाधानकूं दूर करिकें जामें जाको प्रवृत्ति होयगी वामें वाके मनकूं निश्चल करेगें एसें विश्वासपूर्वक समजनो. ॥ १० ॥

अब उपसंहार करत हें

श्लोकः-इत्येवं भगवच्छास्त्रं गूढतत्त्वं निरूपितम्।
य एतत् समधीयेत तस्यापि स्याद् दृढा रतिः ।११।

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता भक्तिवर्द्धिनी समाप्ता ॥

टीका-ऊपर कह्योप्रमाण जो वाणीमें हु नहिं आइसके किंतु अनुभवसूं जानिवेलायक गूढ हें तत्व जाको एसी भक्तिकी

वृद्धिको शास्त्र निरूपित कियोहे याशास्त्रकूं सम्यकप्रकारसूं अर्थानुसंधानपूर्वक जो पाठ करे ताकूंहु एसें करत करत निष्पाप अंतःकरण जब होंय तब प्रभुमें दृढ प्रीति होय; इतने याका अर्थानुसंधानपूर्वक नित्य पाठ करिवेसूं मार्गमें रूचि होय ओर भक्तिमार्गीयआचार्यद्वारा शरणागति होयवेसूं प्रभुमें दृढरति इतने रसभावयुक्त स्नेह होय. ॥ ११ ॥

इति श्रीवल्लभाचार्यजीविरचित 'भक्तिवर्द्धिनी' की
गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाजविरचिता
व्रजभाषामें संक्षिप्त टीका समाप्त भई ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीजलभेद ग्रंन्थकी व्रजभाषामें संक्षिप्त-टीकाको प्रारंभः

अपने (पुष्टिमार्गीय-वैष्णवनकूं) सेव्य श्रीकृष्ण, केवळ भावकरिकें हि प्राप्त होयसकें हैं. विनाभावसूं संपादित-ज्ञान-दिकहू प्रभुप्राप्तिमें बाधक हैं एसें श्रीभागवतादिक-सबग्रन्थनमें विदित हे; तासूं भावरहित कृति, अस्नेह (विनाघृतके) भोजनकीनाईं फलसंपादक नहिंहोयवेसूं श्रीआचार्यजी-महाप्रभुजी निजजनके उपर कृपा करिकें, विनके भावकी वृद्धि होयवेके लिये आप भावको निरूपण करिवेकी प्रतिज्ञा करत हैं.

श्लोकः-नमस्कृत्य हरिं वक्ष्ये तद्गुणानां विभेदकान् ।
भावान् विंशतिधा भिन्नान् सर्वसन्देहवारकान् ।१।

टीका-प्रभूनकूं नमनकरिकें भक्तिके साधनमें जो जो संदेह हैं विनकूं मिटायवेवारे, ओर रजोगुण, तमोगुण ओर सत्वगुण विनकूं निवृत्तकरिवेवारे न्यारे न्यारे वीसप्रकारके भावनकूं में आगें निरूपण करुंहूं; इतने जीव प्रभुकूं नमनविना ओर कार्य नहिंकरसकेहे एसें जतायवेके लिये आप प्रथम नमनकरिवेकी अज्ञाकरत हे. " तद्गुणानां विभेदकान् " एसे

मूलके वाक्यके दोचार अर्थ होयसकेहे; जेसें प्रभुनके जो सर्वसमत्वादि गुण विनके मिटायवेवारे भाव हे इतने जो भक्त भावकूं बढायकें भक्ति करे तो प्रभु आपको सर्वसमत्वरूप जो गुणहे ताकूं छोडिकें वाजीवके उपर पूर्ण कृपा करेहें सो बात श्रीगीताजीमें "में सर्वप्राणीनकूं समान हूं मेरे कोउ शत्रु ओर मित्र यद्यपि नहि हे तो हू जो मेरोहि भजन करे हे सो मेरेमें हें ओर विनमें मै हूँ" एसी आज्ञा स्पष्ट करीहे. अथवा जीवके जो धर्म वामें विलक्षणताकरिवेवारे अथवा प्रभुके जो गुण विनको आकर्षण करिकें जीवमें दिखायवेवारे सब भाव हे. एसें यावाक्यके अनेकप्रकारके अर्थ श्रीकल्याणरायजीप्रभृति-बालकनने किये हे. भावशब्दक यद्यपि अनेक अर्थ होय हे तो हू यहां तो स्नेह ओर ताहूं होयवेवारी अवस्था हि भावशब्दसूं जाननी; क्यों जो नाटयाचार्य-भरतमुनि-प्रभृतीनने भावको अर्थ स्नेहरूपहि कियो हे सो "रतिर्देवादिविषया भाव इत्यभिधीयते" (देवादिकनमें जो रति (प्रीति) हे ताकूं भाव कहे हें.) यावाक्यसूं कह्योहे. गुणके भेदकरिकें वे भाव वीसप्रकारके हें. जब प्रभुमें भाव बढे तब आपहि सर्व संदेह नष्ट होयजाय हे ताहूं मूलमें 'सर्वसंदेहवारकान्' एसें कह्योहें ॥१॥

वेदमेंतैत्तरीय-श्रुतिमें "कुप्याभ्यः स्वाहा" यहांसूं लेयकें सर्वाभ्यः स्वाहा" यहांतांई जलके भेदको निरूपण हे ता प्रमाण गुणहू भेदकूं प्राप्तहोय हें सो कहत हें.

श्लोकः—गुणभेदास्तु तावन्तो यावन्तो हि जले मताः।

टीका—जितने जलके भेद तैत्तरीय श्रुतिमें प्रतिपादित हैं तितने हि भेदहैं. जेसें जलमें तापनिवर्त्तकपनो, शुद्धिकरिवेपनो, ओर पुष्टिकरिवेको गुण हे एसे गुण भावमें हू हैं एसें जतायवेके लिये जलको दृष्टान्त हे.॥

प्रभुकूं गायन विशेष प्रिय होयवेसूं प्रथम गायकके भावको निरूपण करत हैं.

श्लोकः—गायकाः कूपसङ्काशागंधर्वा इति विश्रुताः।
कूपभेदास्तु यावन्तस्तावन्तस्तेऽपि सम्मताः ॥२॥

टीका—प्रसिद्धगानकरिवेवारे गायक गंधर्वके नामसूं प्रसिद्ध हैं वे गायकें कूपजेसें हैं; इतने कूपके जलकीनांई विनगायकनको भावहे कूपको जल शीतकालमें उष्ण ओर उष्णकालमें शीतलहे, तापकूं दूर करे हे ओर व्ययकरिवेसूं आछो होयहें एसें गायकको भाव जडपुरुषकी जडताकूं मिटावे हैं, संसारके तापसूं तप्तभये-पुरुषनके तापकूं निवृत्तकरेहें ओर गानकरवेसूं बढे हे तथा आछो होयहे. रज्जु (रस्सा) करिकें कूवाको जल ग्रहणकियोजाय हे एसें गानकरिकें हि गायकके भावको ग्रहणकरिवेको अभिप्राय यहां दीखेहे. वे सब गायकें तुल्य नहिं हैं किंतु जितने कूवाके भेद हैं तितने हि गायकनके भेद हैं; इतने जेसें कोउकूवाको जल खारो होय, कोउको फिको होय,

कोउको तिक्त जल होय, कोउ परिणाममें सुखदेवेवारे होय ओर कोउ परिणाममें दुःखदेवेवारे-जलयुक्त होयहें तेसें गायकहू पुरुषोत्तम, विनकी विभूति, गुणावतार, ओर अंशादिनकी लीलाके भेदकरिके गान करे हें. तेसें सत्त्वादिक-गुणनके भेदकरिकें कोउ अकाम, कोउ मोक्षकाम, कोउ स्वर्गकाम ओर कोउ लौकिककामनावारे हैं; तासूंविनको भाव कूपके जलकी तुल्य हे या भावकी हकीकत कपिलदेवजीने देवहूतीजीकूं श्रीभागवत-तृतीयस्कंधमें कही हे; तासूंहि (भावके भेदसूं हि) भक्तिके हू ८२ प्रकार होय हे सो श्रीप्रभुचरणनने भक्तिहंसादिकमें निरूपण किये हें.

श्रवणादिनवक हू अधिकारिके भेदसूं कर्म, ज्ञान, उपासना ओर भक्तिमार्गीयपनके भेदसूं अनेक प्रकारको होय हे. अब यहांसूं द्वितीयभावको निरूपण करत हें.

श्लोकः—कुल्याः पौराणिकाः प्रोक्ताः पारम्पर्ययुता भुवि ॥३॥

टीका-कृत्रिम नदी 'कुल्या' नामसूं प्रसिद्ध हे वाकीनांई पौराणिक हे सो पारंपर्ययुक्त हें; इतने जलाशयसूं लेयकें क्षेत्रपर्यंत कुल्या परंपरागत-जलप्रवाहयुक्त हे. एसें पृथ्वीमें पुराणके अर्थ राखिवेमें पौराणिक परंपरासूं अर्थसंग्रह करिवेवारे हे. सद्गुरूनके पास उपदेश ग्रहणकरिके पुराणके अर्थकूं गुरुकी

पासतूं पढेहे. एसें उपदेश ग्रहणकियेविना ओर गुरूनके पासतूं अर्थ जानेविना श्रीभागवतादिकमें भाषात्रय ओर आसुरव्यामोहादिलीला वर्णित हे ताके अज्ञानतूं जो पुराणको अर्थ समझावे तोहू वासूं कोउ अर्थ सिद्ध न होते हे तासूं गुरूपदेशादिककी पौराणिकनकूं अत्यावश्यकता हे. ताविना कथा करे सो कथा श्रोताकूं फल देयवेवारी नहिं होय हे. जेसें कृत्रिमनदी-(नहेर) प्रतिदिन प्रयत्न करिवेतूं आछीरीतिसूं जलकूं वहे हे तेसें पौराणिककूं हू निरन्तर पुराणके पाठ करिवेतूं भावको उदय होय हे एसें हू यापेसूं जान्योजाय हे ॥ ३ ॥

अब तृतियभावको निरूपण करत हें

श्लोकः—क्षेत्रप्रविष्टास्ते चापि संसारोत्पत्तिहेतवः।

टीका—शरीर ओर स्त्रीको वाचक (क्षेत्र) शब्द हें तासूं वे पोराणिक जो देहनिर्वाह अथवा स्त्रीकुटुंबादिकके लिये पुराण वाचवेको कार्य करे तो वेहू संसारोत्पत्तिके कारणरूप होय हे; इतने जेसें कुल्या को जल क्षेत्रमें जाय तो धान्य उत्पन्नकरिवेमें समर्थ होय हे तेसें पौराणिक हू वृत्तिके लिये पुराण वाचनकरे ओर भीतर भावरहित होय तो संसारकी उत्पत्तिके कारण होय हे जेसें पौराणिक स्त्रीकुटुंबादिकके पोषणार्थहि पुराणको उपयोग करे ओर आप वाप्रमाण चले नहिं तो संसारकी उत्पत्तिके कारण होंय. तेसें पूर्वश्लोकमें कह्ये गायकप्रभृति हू स्त्रीपुत्रादिकके लिये जो गान करे तो वेहू संसारोत्पत्तिके

कारणरूप होय एसें मूलके (अपि) शब्दसूं सूचित होय हे.

अब चतुर्थभावको निरूपण करत हैं.

श्लोकः—वेश्यादिसहिता मत्ता गायका
गर्तसञ्ज्ञिताः ॥४॥

टीका—गायक जो वेश्यादियुक्त होयकें मदमें मत्त होय विनको भाव गर्त्त (खाडा) के जलकी तुल्य हे; इतनें "जेसें वारांगना—स्त्रीके संसर्गकरिवेवारेनके प्रसंगसूं मोह ओर बंध होय हे तेसें याजीवकूं ओरके प्रसंगमें नहिं होय हे" एसें श्रीकपिलदेवजीने आज्ञा करी हे; तासूं वेश्यादिकनको संग महाबाधक हे. स्त्रीके प्रसंग करिकें हू जो प्रभुको भजन करे तो आछो होय परंतु भजन (सेवा) हू वे नहिं करे हे; क्यों जो मत्त हे तासूं विनकूं स्वामिसेवकभावको अनुसंधान नहिं रहे हे. एसे गायक श्रीकृष्णके गुणको गान करे हे सोहू माहात्म्य जानिकें नहिं करे हे किंतु उत्तम स्वर ओर गीतमें वश होयकें कोउबिरियां करे हे; तासूं विनको भाव खाडाके जलकीनांई कलुषित गिन्योजाय हे. ओर जो निर्मत्सर होयकें प्रभुके गुणगान करिवेवारे हैं विनको भाव तो कूपके जलकी तुल्य जाननो. ॥ ४ ॥

अब पञ्चमभावको निरूपण करत हैं.

श्लोकः—जलार्थमेव गर्त्तास्तु नीचा गानोपजीविनः।

टीका—गानकरिकें हि आजीविका करिवेवारे नीच पुरुषहें विनको भाव उच्छिष्ट (जूठ) जलसमान हे; इतनें जूठे वासणप्रभृति खासाकरे तब सब जूठो जल एकखाडामें जमा होय हे. वाखाडाको जल जेसें शुद्धिकरिवेके कार्यमें अयोग्य हे. तेसें गानोपजीविनीचपुरुषनको भावहू सत्पुरुषनकूं आदर-करिवेयोग्य नहिं हे.

छट्ठे भावको निरूपण करत हें.

श्लोकःहृदास्तु पण्डिताः प्रोक्ता भगवच्छास्त्रतत्पराः ॥५॥

टीका—भगवच्छास्त्र जो श्रीभागवत—गीताजी तामें तत्पर एसे जो पंडितलोग हे विनको भाव हृद (दह) के जलकी तुल्य हे. इतने नदीप्रभृतिमें जहां जल बहोत उंडो निरंतर रहे वाकूं हृद कह्योजाय हे वाहृदमें जेसें जल निरंतर शीतल रहेहे ओर पश्वादिकनसूं मिलन नहिं होयसके हे तेसें पंडितनको भावहू सांसारिकतापसूं तप्त नहिं होयहे ओर कुतर्कादिकसूं हू शंशयवारो नहिं होय हे. एसो जतायवेके लिये जलके हृदको दृष्टान्त यहां श्रीमहाप्रभुजीने दीयो हे. ॥ ५ ॥

अब सप्तमभावको निरूपण दृष्टान्तपूर्वक करत हें.

श्लोकः—सन्देहवारकास्तत्र सूदा गम्भीरमानसाः ।

टीका—गंभीर हे मन जिनको इतने अंतर्निष्ठावारे ओर

भगवच्छास्त्रमें संदेहकूं मिटायवेवारे जो पंडित हे विनको भाव आछे जलवारे हृदकी तुल्य हैं; इतनें जेसें बहोत सुंदर जलको इकठो समुदाय देखतखेमहि मनकूं प्रसन्नकरिवेवारो हे तेसें याश्लोकमें कहे एसे पंडितन हू मनके सर्वसंदेहकूं मिटायकें मनकूं प्रसन्नकरिवेवारे हैं एसें समजनो.

अब अष्टमभावको निरूपण करत हैं.

श्लोकः—सरःकमलसम्पूर्णा प्रेमयुक्तास्तथा बुधाः ।६।

टीका—पूर्वश्लोकमें कह्ये एसे अंतर्निष्ठावारे ओर संदेहकूं निवृत्तकरिवेवारे पंडितनहु जो प्रभुमें प्रेमवारे होयँ तो कमलयुक्त—तलावके जलकी तुल्य विनको भाव जाननो; इतनें जामें कमल मफुल्लित होयरह्ये हे एसे तलावको जल दर्शन-मात्रसूं हि सर्वइंद्रयनकूं सुखकरिवेवारो हे वाजलमें सुगंध बहोत होयवेसूं भ्रमरादिक कमलपें आवे हे ओर बहोत सुंदर जल होयवेसूं सारसप्रभृतिपक्षी हू सौंदयकूं बढायवेवारे वहां होय हे तेसें पंडित ओर अंतर्निष्ठावारे ओर सर्वसंदेहकूं मिटायवेवारे ओर प्रभुमें प्रेमवारेको भाव हू वाजलकी तुल्य हे. ॥ ६ ॥

अब नवमभावको निरूपण करत हैं.

श्लोकः—अल्पश्रुताः प्रेमयुक्ताः वेशान्ताः
परिकीर्त्तिताः ॥

टीका—प्रभुके विषे प्रेमवारे ओर शास्त्रकेथोरे अध्ययनवारे

पुरुष वेशंत (छोटेतलाव) जेसे भाववारे हे इतने; छोटे-तलावको जल बहोतपशुप्रभृतिके आक्रमणकरिकें कलुषित होय हे तेसें वे पुरुष यद्यपि प्रेमवारे हे तोहु शास्त्राध्यन बहोत नहिंहोयवेसूं दुःसंगादिक दोष होयजाय तो विनको भाव क्षीण होयजाय हे एसें जतायवेके लिये छोटे-तलावजेसो वाको भाव कह्यो हें.

अब दशमभावको निरूपण करत हें.

श्लोकः—कर्मशुद्धाः पल्वलानि तथाऽल्पश्रुत-
भक्तयः ॥७॥

टीका—कर्मकरिकें शुद्ध परंतु शास्त्राध्ययन तथा भक्ति जाकी कमति हे विनको भाव अति छोटे तलावके जलकी तुल्य जाननो; इतने विशेष छोटे तलावको जल जेसें वे पुरुष हू कर्मकरिकें ईश्वरकूं अर्पण करे तासूं विनको चित्त शुद्ध होयजाय हे परंतु छोटे तलावमें जेसें वराहप्रभृति फिरे तब जल सब कीचयुक्त होयकें पानकरिवेके लायक नहिं रहे हे तेसें विनपुरुषनकूंहू "अग्निहोत्रकूं होमें" "स्वर्गकी कामनावारो अग्निष्टोम यागकरे" इत्यादिश्रुतीनके वाक्यसूं सकामकूं यागको अधिकार हे जामे फलको श्रवण न होय वामेहू विश्वजिन्यासूं फलकी कल्पना होयसके हे तासूं कर्म इश्वरकूं अर्पण करिवेके-लिये करिवेको नहिं हे किंतु फलकेलिये हे और "जाकूं यागकरिवेको अधिकार नहिं हे सोहि भक्तिको अधिकारी हे.'

इत्यादिक कर्मजडकी असद् (खोटी) वार्ताके अभिनिवेशसूं वाको भाव कलुषित (मलिन) होयजायहे. परंतु विनकूं "मेरे-लिये कर्मकरिवेवारोहो" "मेरे लिये कर्म करिवेसूं हि तू सिद्धकूं प्राप्त होयगो" "मेरेमें मनकूं धारणकर" इत्यादि प्रभूनके श्रीमुखके वाक्यके अज्ञानसूं वाको भाव एसो होयजाय हे. पल्वल ओर वेशंत ये दोउ 'पर्याय' शब्दहे तोहु "वेशंते-भ्यःस्वाहा पल्वलेभ्यःस्वाहा" यारीतिसूं वेदमें पृथक् गिनहे तासूं यहां श्रीआचार्यजीने हू पृथक् दृष्टान्तरूप माने हे. तासूं जलके स्वादके भेदसूं यहां विनको भेद समजनो. ॥ ७ ॥

अब ग्यारहमे भावको निरूपण करत हैं.

श्लोकः-योगध्यानादिसंयुक्ता गुणा वर्ष्याः प्रकीर्त्तिताः ।

टीका—योगध्यानादिकरिकें संयुक्त-पुरुषनके भाव वृष्टिके जलसमान गिनेजाय हैं; इतने वृष्टिको जल जब पृथ्वीमें गिरेहे तब सर्वदेशमें व्याप्त होयजाय हे, सर्व स्थलनमें सुलभरीतसूं मिलसके हैं ओर क्षेत्रादिमें पडे तो आछो धान्य उत्पन्न कर-सके हे तेसें योगीनकूं हू योगकरतीबिरियां विनको भाव सफल देह, इंद्रियप्रभृतोनकूं व्याप्त होयजाय हे तेसें सत्पात्रकूं योगाभ्यास करावे तो स्वसमान (आपके भावकी तुल्य) भावकूं उत्पन्न करिसके हे.

अब बारमे भावको प्रतिपादन करत हैं.

श्लोकः-तपोज्ञानादिभावेन स्वेदजास्तु प्रकीर्त्तिताः ॥९॥

टीका—तप इतने पंचाग्निप्रभृतिकूं सहनकरनो ओर ज्ञान इतने जीव ओर ईश्वरके स्वरूपकूं जाननो इत्यादिक भावकरिकें युक्तपुरुषनको भाव पसीनाके जलकी बराबर जाननो; इतने कितनेक लोग तपसूं हि प्रभुकी आराधना करिवेको कहे हे, कितनेक "वाब्रह्मकूं जानिवेवारे मोक्षकूं प्राप्त होय हे" इत्यादि श्रुतीनको साचो अर्थ (भाव) नहिंजानिवेवारे, ज्ञानसूं हि मोक्ष मिलवेकी वातें करत हैं. परंतु श्रीभागवतमें कह्यो "धन, कुल, रूप, शास्त्र, बल, तेज? प्रताप, पुरुषार्थ ओर बुद्धिप्रभृति प्रभुकूं प्रसन्नकरिवारे नहिं हे किंतु गजेंद्रकी भक्ति देखिकेंहि प्रभुने कृपा करी हे तासूं भक्तिकरिकें हि प्रभु प्रसन्न होय हें एसें में जानूं हूं." ओर "श्रेयकूं स्रववेवारी आपकी भक्तिकूं छोडिकें केवल ज्ञानसंपादनमेंहि जो क्लेशकूं धारणकरेहे तिनकूं, तुष (छिलका) कूटवेवारेकूं जेसें चोखा कोउदिन न मिले तेसें वाकूं भगवान् क्लेशहि देवेवारे होयहें" इत्यादिवाक्यनमें विनाभक्तिकेवलज्ञान ओर तप तथा आदिशब्द मूलेमें हे तासूं वर्णाश्रमके धर्म वे सब व्यर्थ प्रयासरूप गिन्ये हे केवल वर्णाश्रमधर्म भगवत्संबंधरहित होय ताकी श्रीभागवतमें निंदा करिहे तासूं मुख्य प्रभुकी भक्तिहे वाकूं छोडिकें तप ओर

ज्ञानमें निष्ठावारे पसीनाके जलकीनाँई केवल क्लेशकूंहि प्राप्त होयहे. पसीनाको जलहू स्नान, आचमनमें, ताप मिटायवेमें ओर अन्यकार्यमें उपयोगमें नहिं आवेंहे किंतु केवलक्लेशकूं देवेवारोहे तेसें विनको भाव समझनों ॥ ९ ॥

अब तेरहमे भावको निरूपण करत हे.

श्लोकः—अलौकिकेन ज्ञानेन ये तु प्रोक्ता हरेर्गुणाः।
कादाचित्काः शब्दगम्याः पतच्छब्दाः प्रकीर्तिताः

टीका—महदनुग्रहपूर्वक प्राप्त कियो जो अलौकिक ज्ञान ताकरिकें कदाचित् प्रतीत होयवेवारे ओर वेदसूं जानिवेमें आयवेवारे प्रभुके गुणकूं जो कहिवेवारे हे विनको भाव कदाचित् प्रतीतिमे आवे ओर शब्दसूं जानिवेमें आयवेवारे पर्वतादिमेसूं पडते धाराजलकी तुल्य हे इतनें धाराको जल निर्मल, सीतल, माधुर्यवारो ओर स्नान, आचमन और पान-करिवेमें मनोहर—ओर तापकूं मिटायवेवारो हे तेसो भगवद्गुण-वर्णनकरिवेवारेनको भाव काव्यादिकके विषे प्रतीत होयहे ॥९॥

अब चौदमे भावको निरूपण करत हें.

श्लोकः—देवाद्युपासनोद्भूताःपृष्वाभूमेरिवोद्गताः ।

टीका—देवादिकनकीउपासना करिकें जन्मलेवेवारे भाव पृथ्वीमेंसूं निकसे—जलबुद्बुद (बुद्बुदा) अथवा हिमकण-समानहेः इतने जो मनुष्य देवादिकके पूजनमेंहि में प्रभुको

भजन करूंहूं एसें मानिवेवारो हे और मूलमें आदिशब्दहे तासूं पितृमातृप्रभृतीनकी सेवाकू हू भगवद्भजनांतःपातिनी गिनवेवारेहे विनको भाव हिमकण अथवा जलपें होयवेवारे—बुद्बुदाजेसो समझनो क्योंजो देवादीनकी उपसनासूं विभूतिको आराधन होय ओर पिताप्रभृतिनकी सेवाको फल स्वर्गादिक हे ओर प्रभुकी भक्तिको फल तो स्वरूपानंदरूप हे तासूं देवादिककी भक्तिमें ओर प्रभु भक्तिमें जो महदंतर हे वाके अज्ञानसूं वे देवादिककी उपासना करे हे. सो विनकी भ्रांति हे ओर जो महापुरुषनको ओर भक्तनको पूजन करिवेकी श्रीभागवतप्रभृति शास्त्रनमें आज्ञा देखिवेमें आवे हे सो तो भगवत्प्रीति ओर शुद्धिप्रभृतिके साधक होयवेसूं पूर्वकह्योभांतिसूं देवादिपूजन तासूं भिन्न हे क्यो जो जेसें भक्तादिपूजनमें पुरुषोत्तमभक्तिको साधकपनो हे तेसें देवादिपूजनमें नहि होयवेसूं वाकूं भ्रांतिकल्पित गिन्यो हे, तासूं पुरुषोत्तमकी प्राप्तिकूं इच्छवेवारेनकूं पुरुषोत्तमको भजन (सेवा) हि मुख्य हे सो वात प्रमाणपुरःसर टीकाग्रंथनमें निरूपित हे सो ग्रंथके विस्तारके भयसूं यहां लिखे नहिं हे. जेसें तुषारकण अथवा जलबुद्बुद स्नानाचमन ओर पानादिमें उपयुक्त नहिं हे तेसें देवादिककूं पूजवेवारेनको भाव हू पुरुषोत्तमप्राप्तिमें अनुपयुक्त होयवेसूं जलबुद्बुदको दार्ष्टांतिक यथार्थ होय हे.

पंचदशम भाषको अर्थ निरूपण करत हें.

श्लोकः—साधनादिप्रकारेण नवधाभक्तिमार्गतः।१०।
प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्यन्दमानाः प्रकीर्तिताः ॥

टीका—साधन हे आदि जामें एसे जो भक्तिके प्रकार ताकरिकें नवप्रकारकी भक्तिरूप मार्गसूं जिनको प्रेम पूर्ण होयवेसूं प्रभुके धर्मकी स्फुर्ती होय एसेनको भाव पर्वतादिपेंसूं गिरते—जलकी तुल्य हे. याको स्पष्टार्थ यह हे जो जाजीवको प्रभुने मर्यादामें अंगीकार कियो होय सो सबकामनाकूं छोडिकें वर्णाश्रमधर्मको आचरण करे तासूं अंतःकरण शुद्ध होय तब प्रभुकी भक्ति होय सो पुरुषार्थरूप हे. एसी जाकी मान्यता हे सो पूर्वोक्तसाधनके विचारसूं हि श्रवणादिमें प्रयास करे हे. एसेनको भाव प्रस्रवणजलकी तुल्य हे; इतनें पर्वतके उपर वृष्टि होयवेसूं अथवा तो तलावप्रभृति जलाशय होयवेसूं तापर्वतपेंसें प्रस्रवणको जल बहोत ओर विनके अभावमें कमती पडे तेसें पूर्वकह्योभाववारेनकूं शुद्धथादिककी अपेक्षासूं भावको वृद्धिह्रास होय हे एसें समजनो. सो वात श्रीप्रभुचरणने भक्तिहंसमें कहिहे जो "प्राथमिक (पहेलो) तो भक्तिके साधनमें प्रवृत्त होयहे क्योंजो वाको मर्यादामेंहि अंगीकार भयोहे सोहू जहांताई प्रभुमें स्नेह उत्पन्न न भयो होय तहांताई मर्यादामें रहिकें सेवा करेहे. प्रभुमें स्नेह भये पीछे तो सब उपचार स्नेहपूर्वक होय तब विधिको अप्रयोजकपनो होयहे" एसें एकादशस्कंधमेंहू

"श्रद्धामृतकथायां" यहांसूं लेयकें "कोन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते" यहांताँईमें निरूपण कियो हे नवधाभक्ति तो श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन सो प्रह्लादजीने दैत्यपुत्रनकों सप्तमस्कंधमें कहिहे.

अब सोलमे भावको निरूपण करत हैं.

श्लोकः—याद्दशास्ताद्दशाप्रोक्ता वृद्धिक्षयवि-
वर्जिताः ॥११॥
स्थावरास्ते समाख्याता मर्यादैकप्रतिष्ठिताः ।

टीका—आगें जो कह्ये त्रिनको प्रेम वृद्धिह्रासयुक्त कह्यो. एसें जिनके प्रेममें वृद्धि ओर क्षय (न्यूनता) नहिंहै ॥११॥ ओर केवल मर्यादामेंहि जिनको अंगीकार हे एसेनको भाव स्थावर (स्थिर) जलतूल्यहे. जेसें स्थिर रह्यो बहोतजल ताप-पडवेसूं सूखे नहिं हे तेसें स्नानादि—सबकार्यमें उपयोगी होयहे तेसें जिनको स्थिर प्रेम हे त्रिनको भावहू संसारताप ओर कुतर्कादिकसूं कमती नहिं होय हे ओर शुद्धयादिकको हेतु हे.

अब सत्तरमे भावकी स्फुट करत हैं.

श्लोकः—अनेकजन्मसंसिद्धा जन्मप्रभृति सर्वदा ।१२
सङ्गादिगुणदोषाभ्यां वृद्धिक्षययुता भुवि ।
निरन्तरोद्गमयुता नद्यस्ते परिकीर्तिताः ।१३।

टीका—अनेकजन्मकरिकें आछीरीतिसूं सिद्ध, ओर

जन्मतेंहूं लेयँकें सत्संग ओर दुःसंगके गुण ओर दोषकरिकें प्रेमकी वृद्धि ओर क्षीणतावारे ओर निरंतर जन्मलेयँवेवारे भाव नदीकी तुल्य हैं. इतने नदीको जल वृष्टि ओर घाम-करिकें बढे ओर घटे हे. भूमि ओर पर्वतादिकके गुण ओर दोषकरिकें जलहू गुणदोषयुक्त होय हे शुद्धि ओर तृप्तिप्रभृतिकूंकरे हे तेसें उपर कह्यें, तिनको भावहू तपध्यान, समाधिकरिकें पापक्षयद्वारा शुद्ध्यादिकको उत्पन्न करेहे. सत्संगकरिकें गुणकूं ओर दुःसंगकरिकें दोहकूं उत्पन्न करेहे ओर बढे हे घटेहें. तासूं नदीप्रमाण गिन्पे हैं ॥ १३ ॥

अब अठारमे भावको निरूपण करत हें.

श्लोकः—एतादृशाः स्वतन्त्राश्चेत् सिन्धवः
परिकीर्तिताः ॥

टीका—पूर्वश्लोकनमें कह्ये भाव जो स्वतंत्र (उपाधिरहित) होय तो वे आपतें हि समुद्रमें जायवेवारी नदीकी तुल्य हे. जेसें महानदीके जलमें प्रविष्ट भये-जलचर समुद्रमें हू जायसके हे तेसें उपर कह्ये निष्काम-प्रेमवारे हू दयाके समुद्ररूप-प्रभुमें प्रवेशकरे हे. महानदीके जलकीनाँई वे भाव सर्वप्रकारकी शुद्धिकूं उत्पन्नकरिवेवारे हें.

अब उन्निसमें भावको प्रतिपादन होय हें.

श्लोकः—पूर्णा भगवदीया ये शेषव्यासा-
ग्निमारुताः ॥ १४ ॥
जडनारदमैत्र्याद्यास्ते समुद्राः प्रकीर्तिताः ।

टीका—शेष, व्यास, अग्नि, हनुमान्, जडभरत, नारदजी ओर मैत्रेयप्रभृति जो पूर्ण भगवदीय हैं वे समुद्र कह्ये हैं; इतने समुद्रके जलकी तुल्य विनसबनको भाव हे. भक्ति जो सेवा ताकरिकें पूर्वनकूं भगवदीय कह्येजाय हैं, इतने जिनकूं प्रभुसेवाव्यतिरिक्त ओर स्वार्थ नहिं हे, जिनकूं प्रभुके लिये हि देहादिककी अपेक्षा हे परंतु देहादिकके लिये प्रभुकी सेवा करिवेकी नहिं हे एसे भगवदीय रत्नाकरके तुल्य हें विनको भाव रत्नाकरके जलकी तुल्य समजनो. इनभगवदीयनकी गणना मूलश्लोकमें करी हे तामे मुख्य शेष हे सो भगवद्-गुणगानमें तत्पर हैं, शय्यादिभावसों प्रभुकी सेवा करे हैं सो विभूतिरूप हैं सो " सर्पनमें अनंत मेरोरूप हे " एसें गीताजीमें आपने श्रीमुखसूं विभूतिरूप गिन्ये हैं, व्यासजी कलावतार हैं सदा भगवद्धर्मके निरूपणमें तत्पर हैं, अग्नि-श्रीकृष्णके मुखारविंदरूप आप श्रीमहाप्रभुजी जो सर्वांशसूं श्रीकृष्णरूपही हैं. हनुमान् श्रीरामचंद्रजीके गुणगानमें तत्पर हैं, जडभरतजी अंतःकरणमें भावपूर्ण होयवेसूं बहारसूं जडजैसे दीखे हैं, नारदजी सदा पुरुषोत्तमगुणगानमेंहि एकतान हैं, पराशरके शिष्य मैत्रेय भगवद्गुणके वक्ता हैं. मूलमें आदिपद

हे तासूं उद्धवादिकको भावहू समुद्रजलतुल्य समजनो. जेसें समुद्रको जल चंद्रकूं देखिकें तरंगित होय हे तेसें पूर्व कह्ये भगवदीय हू प्रभुके मुखचंद्रके दर्शनमें प्रवृद्धभाववारे होयकें सेवाव्यतिरिक्त ओरकूं तुच्छ गिने हे सो श्रीकपिलदेवजीने "सालोक्य, सार्ष्टी सामीप्य, सारूप्य ओर एकत्वकूंहू मेरे भक्त नहिं चाहतहे" एसें आज्ञा करी हे.

स्वरूपभेद ओ३ ज्ञानभेदकरिकें विलक्षण एसे पूर्ण भाववारेनको निरूपण अब करत हें.

श्लोकः—लोकवेदगुणैर्मिश्रभावेनैके हरेर्गुणान् ॥१५॥
वर्णयन्ति समुद्रास्ते क्षाराद्याः षट् प्रकीर्तिताः ॥

टीका—लोकमिश्रभावसूं, वेदमिश्रभावसूं ओर गुणमिश्र-भावसूं कितनेक प्रभुके गुण वर्णन करें हें वे क्षारादिषट्समुद्रतुल्य हें. इतने रामकृष्णादि मनुष्यहें परंतु विनमें बलादि बहोतहे तासूं मनुष्यसूं अधिक मान्येजायहे एसें जानिकें वर्णनकरिवे-वारनको भाव क्षारसमुद्रके जलकी तुल्य समजनो जेसें क्षारजल तृषानिवृत्ति ओर तृप्तियप्रभृति सुखदानमें अनुपयोगिहे तेसें पूर्वोक्तको भाव हू समझनो, कितनेक "सोहाथवारे श्रीकृष्णने वराहरूप धरिकें तुमारो उद्धार कियो हे" इत्यादि—वाक्यार्थके भावकरिकें जगत्कर्त्ता हि विविध शरीरनमें प्रवेश करिकें कार्य करे हें ओर कार्यार्थ धारणकिये शरीरकूं छोडदेयँ हे एसें जानिके हरिके गुणको गान करे हे

उन वाको भाव दधिमंडोदतुल्य हे इतने दधिमंड साररहित होय वेसूं पोषण करिवेमें निरूपयोगी हे तेसें वाको भाव समझनो, मायाके गुणकरिकें हि प्रभुमें कर्त्तापनो हे ताविना नहिं हे तासूं मायाके गुणकरिकेंहि हरि सब करे हैं एसें जानिकें जो भगवद्गुणको वर्णन करे हे ताको भाव सुरोदके जलतुल्य हे जेसें सुराकों स्वरूपविस्मारकपनो और दोषउत्पन्नकरिवेपनो हे तेसें प्रकृतभाववारेनको भाव समझनो, प्रभु सबके ईश्वर और सर्वकार्यकरिवेमें समर्थ हैं एसें जानिकें जो प्रभुको वर्णन करे हे ताको भाव क्षीरोदके जलजेसो हे, दूधके गुणसरिखे वाभाव-वारेके गुण हे, प्रभु महाबलवत्तर हैं तासूं आपने भक्तनकूं हू बलवारे बनाये हे एसें जानिकें वर्णनकरिवेवारेनको भाव घृतोदके जलकी तुल्य हे; इतने विनभाववारेनको भाव घृतके समान गुणवारो हे प्रभु लक्ष्मीजीके पति हैं सेवकनकूं भोगमोक्षदेवेवारे हैं एसे जानिकें वर्णनकरिवेवारेनको भाव इक्षुरसोदत्समुद्रके जलकी तुल्य गुणवारो हे और शरण आये जीव चाहे जेसें होय तो हू श्रीकृष्ण विनको उद्धार करें हि हैं परंतु शरणागतकूं छोडिदेत नहिं हैं एसें जानिकें वर्णनकरिवे-वारेनको भाव शुद्धोदकके जलकी तुल्य गुणवारो जाननो, भगवान् चिद्रूप विज्ञानपूर्ण सर्वसम और मोक्षके लिये सेवनकरिवेयोग्य हैं. एसें जानिके वर्णनकरिवेवारेनको भाव दधिमंडोदतुल्य हे और भगवान् वैराग्यपूर्ण होयवेसूं कोईकी पाससूं कछु ग्रहण

नहिं करे हैं ओर इच्छा हू नांहि करे हैं मनुष्य पवित्र होयवेके लिगे भगवानकूं भजे एसो विधि होयवेसूं लोंक स्वार्थके लिये भजन, स्तुति ओर अर्णणप्रभृति करे हे एसें जानिके वर्णन करिवेवारेनको भाव क्षारोदके जलकी तुल्य अग्राह्यजेसो हे.

अब पूर्णभगवदीयनमेंहू उत्तम हें तिनकी गणनाकरत हें.

श्लोकः—गुणातीततया शुद्धान् सच्चिदानन्द-
रूपिणः ॥ १६ ॥

सर्वानेव गुणान् विष्णोर्वर्णयन्ति विचक्षणाः
तेऽमृतोदाः समाख्यातास्तद्वाक्पानं सुदुर्लभम् ॥१७॥

टीका—गुणतें पर तासूं हि सत्, चित् ओर आनंदरूप एसे प्रभुके सर्व गुण हें एसें जानिकें विचक्षण पुरुष भगवद् गुणवर्णन करिवेवारे हे सो अमृतके समुद्रतुल्य हे तिनके वाणीको पान (श्रवण) अत्यंत दुर्लभ हें इतनें (" ताकी स्तुतिकंरिवेवारे " एसें वेदके, " जासूं क्षरसूं पर ओर अक्षरसूं उत्तम हूं " एसें स्मृतिके, " मेरेमें रह्यो सब निर्गुण " एसें श्रीभागवतके ओर " लोककीं नांई लीला मोक्षरूप हे " एसे व्याससूत्रके वाक्यसूं) श्रुति, स्मृति, पुराण ओर न्यायकरिकें प्रभुके नाम, रूप ओर धर्मनको निर्गुणपनेको निश्चय करिकें, भगवन्नाम सच्चिदानंदात्मक हे, भगवान् अक्षरातीत पुरुषोत्तम हें, ताकी सब सामग्री निर्गुण हे, ताकी लीला हू फलरूपा

हे, स्मरणकरिवेसूं मोक्षदेवेवारी हे, एसें निरूपण करिकें प्रभुके सर्व गुण नवनीतचौर्य, वेणुनाद, गोवर्द्धनोद्धारणादिकनकूं हू- गुणातीतपनेसूं जानिकें (मायासंबंधरहित तासूं सच्चिदानंदरूप जानिकें) वर्णनकरिवेवारेनको भाव अमृतके समुद्रतुल्य हे वे भगवत्कृतचौर्यादिकनके कारणकूं जानिवेवारे हें तासूं मूलमें विचक्षण कह्ये हें तिनको वाक्यान इतने वाणिको मनमें धारण करनोत्तथा ताकी पाससूं उपदेश ग्रहण करनो. ओर जो उपदेश दे वाको आदरपूर्वक श्रवण करनो सो बहोत दुर्लभ हे; तासूं हि नामके स्वरूप जानिवेके लिये एसे गुरून (उपदेशकनके) के शरण जायवेकी वेदादिकमें आज्ञा करीहे. ताविना स्वतः प्राप्तकिये एसे ज्ञानकर्मादिकनकूं व्यर्थ कह्यो हे. गुरूपसत्तिपूर्वक भगवद्उपदेश ग्रहणकरिकें प्रभुमें पुरूषोत्तमपनेको ज्ञान होय तबहि सर्वज्ञता होय सो वात श्रीगीताजोमें आपनेहि कहीहे " जो विचचण मोकूं पुरूषोत्तम जाने हे सो सब जानेवेवारो सर्वभावकरिकें मेरी सेवा करेहे " ताप्रमाण पूर्वोक्त-भक्तहू प्रभुको भजवेवारो होय हे. ॥ १७ ॥

अब वे विचक्षण-भक्तनकी वाणीकी महिमाकूं-कहत हें.

श्लोकः—तादृशानां क्वचिद्वाक्यं दूतानामिव वर्णितम् ।
अजामिलार्कर्णनवत् बिन्दुपानं प्रकीर्तितम् ॥१८॥
रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं यदा ।

तदा लेहनमित्युक्तं स्वानन्दोद्गमकारणम् ॥१९॥

टीका-एसे भगवदीयनकी प्रसन्नतायुक्त जो आज्ञा हे सो दूतकी बरोबर कहीहे इनके वाक्यको श्रवण अमृतबिंदुकी बरोबर हे, जेसें अजामिलने भगवद्दूतनके वाक्यको श्रवण कियो हतो ताकीसीनांई वा वाक्य अमृतबिंदुके पानकी तुल्य हे ओर राग (विषयादिकमें प्रीति) ओर अज्ञानादिकभावको जब नाश होय तब स्वरूपानंदकूं प्रकट करेहे ताको नाम लेहन कह्यो हे; इतने पूर्वश्लोकमें कह्ये पूर्ण-भगवदीय कृपा-करिकें विनाआग्रहूं कहत हैं सो वाक्य प्रभुकोहि समझनो. जेसें राजा चाकरद्वारा हुकम करे हे तेसें प्रभुहू भगवदीयद्वारा उपदेश करतहैं, दूत जेसे राजाके गुणवर्णमें शंकित नहिं होयहें तेसें भगवदीयनकूं हू प्रभुके गुणवर्णनमें शंका नहिं होयहे; तासूं प्रभुकी कृपा ओर भविष्यमें फल मिलवेको योग होय तबहि एसे भगवदीयनको समागम होयहे; तासूं हि तिनके मुखसूं उपदेश लेनो, श्लोकमात्रको श्रवण करनो, शिक्षा सुननी सो अमृतबिंदुके पानरूप ओर अजामिलके श्रवणकी तुल्य हे. जेसें अजामिलने दूतनके मुखसूं भगवद्धर्मके बलको श्रवण कियो तापीछे वाकूं नरकको सबंध छुटिकें भगवद्धर्मके श्रवणतें उत्तमफलकी प्राप्ति भई तेसें बिंदुपान-करिवेवारेनकूंहू उत्तम-फलकी प्राप्ति होयवेको सूचन याद्दष्टान्तसूं होय हे. याबिंदुपानसूं अधिक रसास्वाद हे सो कहतहें जो

राग (गृहादिमें स्नेह) ओर अज्ञान (भगवत्स्वरूपकूं नहि पहेचाननो अथवा अविद्या) सो जिनके आदिहे एसे जो शोकमोहादिक इनसबनको जब नाश होयजाय इतनें जब रागादिककी वासनाहू न रहे, तब रसास्वाद होयहे; इननें पूर्वकह्यो बिंदुपान जब रागादिककी अस्फूर्तिसूं कियोजाय ताकूं लेहन (चाटनो) कह्यो हे. सो जीवकूं भगवदानंदको अनुभव करायवेवागेहे, जब श्रवणादिकमें व्यसन होयेजाय तब जो कथारसको आस्वाद अनुभवमें आवेहे सो अमृतरूप होय हे. तब हि जीवमें जो आनंदको तिरोभाव भयो हे ताको आविर्भाव होय हे ओर प्रभुमें क्रमसूं प्रेम, आसक्ति ओर व्यसन होयवेसूं प्रपंचकी विस्मृति होयकें जीव कृतकृत्य होयहे सो बात श्रीभागवत ११ स्कंधमें "भक्तिलब्धयतः" याश्लोकसूं ओर श्रीमहाप्रभुजीने स्वकृत–भक्तिवर्द्धिनीनामक ग्रंथमें "स्नेहाद्रागविनाशः" याश्लोकसूं कहीहे ताप्रमाण जीवकूं भक्तिको पूर्णफल तब (व्यसन होयवेसूं हि) प्राप्त होय हे. ॥१८॥१९॥

अब वीसमे भावको निरूपण करत हें.

श्लोकः–उद्धृतोदकवत् सर्वं पतितोदकवत्तथा ।
उक्तातिरिक्तवाक्यानि फलं चापि तथात्मनः ॥

टीकाः–पूर्वकह्ये जो अमृतोदतुल्य–भावद्वारे हें विनकूं छोडिकें ओरभाववारेनके भाव विनकी अप्रत्यक्षदशामें उद्धृतोदककी तुल्य फलकूं सिद्धकरेहे ओर विनभाववारेनके वाक्य

उपरसुंगिरे–जलकी बरोबर फलकूं सिद्ध करिवेबारे हैं. जेसें कूपप्रभृतिनमेंसूं ग्रहनकियो जल जास्थानसूं आयो होय वास्थानके गुणके तुल्यगुणवारो होयहे. अमृत तो सर्वदा एकरस हे तासूं वाकूं छोडिकें ओरभावधारेनकी अप्रत्यक्षदशामें वे भाव उद्धृतोदक (कूवादिकनमेंसूं ल्यायोभयो जल) तुल्य गुणवारो होयहे एसें कह्योहें. ॥२०॥

अब ग्रंथकी समाप्ति करे हैं.

श्लोकः–इति जीवेन्द्रियगता नानाभाव गता भुवि।
रूपतः फलतश्चैव गुणा विष्णोर्निरूपिताः॥२०॥

टीका–याप्रकार जीव ओर इंद्रियमें आयके पृथिवीमें अनेकविधभावरूप भये एसे विष्णु (भगवान) के गुण, स्वरूप ओर फलसूं निरूपणकिये हें. एसें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करेहें. सो जलके भेद श्रुतिमें जो कह्ये हें ताप्रमाण गुणके भेदको याग्रंथमें वर्णन होयवेसूं याको जलभेद नाम हे.

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचित-जलभेदग्रंथकी
गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराजविरचित
व्रजभाषामें संक्षिप्त भावार्थटीका समाप्त भई.

श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ पञ्चपद्यनकी व्रजभाषामें सक्षिप्त-टीका।

जलभेदमें २० प्रकारके भिन्नभक्त ओर विनके भाव जलको दृष्टांत देयकें निरूपित किये हे सो जेसें जल शुष्क-वस्तुकूं आर्द्र करे हे तेसें उपरलिख्ये-भक्तनके भावहू श्रवण-करिवेवारे मनुष्यनके हृदयकूं आर्द्र करे हे एसें जतायवेके लिये जलको दृष्टांत देयकें निरूपण कियो हे. शास्त्रमें जो अष्टादश विद्या लिखी हे ताकरिकें प्रतिपादित एसे भगवानके गुण हू अठारेप्रकारके हें तासूं वे भक्त हू अष्टादशविद्याप्रतिपादितगुणमें तत्पर होयवेसूं केवल मर्यादामार्गीय अष्टादशप्रकारके हें ओर पुष्टिमार्गीय शुद्ध तथा मिश्र एसे भेदसूं दोप्रकारके हें इतने अष्टादशप्रकारके मर्यादामार्गीय भक्त ओर दोइप्रकारके पुष्टि-मार्गीय शुद्ध तथा मिलिकें भक्तनके २० प्रकार भये. अथवा सात्विकादिक तीन गुन हे इनके मिश्रीभावसूं ९ भेद होय हें ओर १ निर्गुण मिलिकें १० भेद भये सो मर्यादा ओर पुष्टिके दशदशभेद मिलिकें २० प्रकारके भक्त भये तिनके भावहू विनमेंहि रह्येहे तासूं वीशप्रकारसूं जलभेदमें निरूपित किये हें. अब जलभेदमे कह्ये एसे वीशप्रकारके भक्तनके वाक्यद्वारा विनके भावकूं ग्रहणकरवेवारे श्रोतानको निरूपण करत हें सो

पुष्टि तथा मर्यादाके भेदसूं दोयप्रकारके हे तामे पुष्टिमार्गीय श्रोता उत्तम हे सो एकप्रकारके हे ओर मर्यादामार्गीय मध्यम, अधम ओर उत्तम एसे भेदसूं तीनप्रकारके हैं एसें चारप्रकारके भक्तनको निरूपण करिवेके लिये प्रथम मुख्यपनेसूं पुष्टि-मार्गीयश्रोतानको निरूपम करत हैं.

श्लोकः—श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसारतिवर्जिताः ।
अनिर्वृत्ता लोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः ॥१॥

टीका—श्रीकृष्णको जो भजनानंदरूप रस ताकरिकें जिनको मन विक्षिप्त होयगयो हे ओर ताकरिकें भगवानके चरित्र सुनिवेमें अप्रीतिसूं वर्जित इतने प्रीतिवारे ओर लोक तथा वेदमें जिनकूं आनंद प्राप्त नहिंहोय हैं एसे जो श्रवणमें उत्साहवारे श्रोताजन हैं सो मुख्य हैं; इतने भगवानके चरित्र नहिंसुनिवे-रूप जो अप्रीति हे सो मर्यादा ओर पुष्टि एसें मार्गके भेदसूं दोयप्रकारसूं निवृत्त होय हे; तामें मर्यादामार्गमें जाकूं श्रवण-करिवेकी इच्छा होय ओर श्रद्धायुक्त होय ताकूं महत्पुरुषकी सेवाकरिकें पुण्यतीर्थके सेवनसूं रुचि उत्पन्न होय हैं एसें प्रथम-स्कंधमें कह्यो हैं तारीतिसूं अप्रीति निवृत्त होय हे ओर पुष्टिमार्गमें तो रसके स्वभावसूं हि भ्रमरगीतमें व्रजभक्तनने कह्यो हे जो "विनकी कथाको अर्थ दुस्त्यज हैं" ताहिप्रमाण स्वभावसूं हि भगवत्कथामें रस उत्पन्न होय हे तासूं जो

भगवत्कथामें अरतिकरिकें वर्जित कह्ये हें वे पुष्टिमार्गीय हें एसें समजवेकेलिये ये लक्षम कह्यो हे एसें पुष्टिमार्गीय-श्रोतानकूं भगवच्चरित्रके श्रवणमें अप्रीति नहि हे एसो निरूपण करिवेके लिये लोकवेदमें इनकूं आनंद नहिं होय हे सो कहत हें जो प्रवृत्तिमार्गको बोधकरिवेवारे अथवा भगवानविना ओरको भजन बतायवेवारे लोक ओर वेदमें स्वस्थ नहिं हे सो भगवाननें उद्धवजीकूं व्रजमें संदेश लेयकें पठायें तब कह्यो हे जो "जिनने लोकके धर्म छोडे हें उनको पोषण में करूं हूं" तासूं यहां लोकवेदमें अनिर्वृत एसें समस्तपद कह्यो हे सो त्यागनेमें दोयनकी तुल्यता जतायवेके लिये हे तासूं हि पञ्चाध्यायीमें श्रीगोपीजनने कह्यो हे जो "दुःखकूं देयवेवारे पतिसुतादिकनकरिकें कहा हे ?" और भ्रमरगीतमें कह्यो हे जो "दुःखके समुद्रमें मग्नभये-व्रजको उद्धार करो." इतने दुःखसागरमें निमग्न व्रज हे वाको उद्धार आपहि करें परंतु आपने उद्धृत किये एसे वेदकरिकें हम उद्धारकरिवेयोग्य नहिं हे एसे अभिप्रायसूं प्रार्थना करी हे. एसें पुष्टिमार्गके प्रकारकरिकें अप्रीतिके अभावपूर्वक प्रीतियुक्त हें ते मुख्य हें. अथवा मुख्य-शब्दको दूसरो अभिप्राय कहत हें जो मुखरूप जो पुष्टिमार्गीय भक्ति हे तामें वे भये हें इतने भक्तिरूप जो भगवानको मुखारविंद हे तिनमें संलग्न एसे अलकावलीपनेसूं कहिवेमें आवते एसे पुष्टिमार्गीय जीव केवल भक्तिमात्रको आश्रय करिकें रहत

हे ते मुख्य हैं. तहां संदेह होय जो मूलमें तो लोकवेदमें अनिर्वृत हैं एसें कह्यो ताकरिकें रहित हैं श्रवणादिकमें प्रीतियुक्त हैं एसो अर्थ तो गौणरीतिसूं आवे हे तासूं मुख्यश्रोतापनो केसें ? एसी शंकाकरिकें कहत हैं जो भगवानमें प्रीतिवारे हैं तोहू वियोगमें श्रवणमें हि उत्साहवारे हैं; क्यों जो परोक्षमें विनको संदेशलायवेवारेमें प्रीति दीखवेमें आवत हे तासूं श्रवणमें उत्साह स्पष्ट जान्योजाय हे तासूं हि भ्रमरगीतके अध्यायमें कह्यो हे जो "उद्धवजीकूं देखिकें ये प्रभुके चरणारविंदके आश्रयवारे हे एसें जानिकें सबआडिसूं मिलकें विनकूं घेरलिये;" इतनें श्रोताजन आप भगवानके रसमें मग्न हें. भगवानके रससूं विनको मन विक्षिप्त हे. भगवानके चरित्र सुनिवेमे सहज भावयुक्त हैं, भगवानके विप्रयोगकी आर्तिकरि युक्त हैं ओर भगवानकी वार्त्ताश्रवणमात्रमें हि एकबुद्धिवारे हैं सो पुष्टिमार्गीय श्रोता हैं ॥ १ ॥

एसें पुष्टिमार्गीय भक्तनको निरूपण करिकें मर्यादा मार्गीयनको निरूपण करत हे' तामें उत्तम बहोत दुर्लभ हे तासूं मध्यका निरूपण करत हे'.

श्लोकः—विक्लिन्नमनसो ये तु भगवत्स्मृतिविह्वलाः।
अर्थैकनिष्ठास्ते चापि मध्यमाः श्रवणोत्सुकाः ॥२॥

टीका—विशेषकरिकें जिनको आर्द्र मन हे, भगवानकी स्मृतिकरिकें विह्वल हें ओर अर्थमें मुख्यनिष्ठा हे एसे जो

श्रोताजन हैं सो मध्यम कह्योजाय हे, इतने भगवानमें परायण होयवेसूं जिनको मन कोमल होय सो आर्द्र कह्योजाय हे. जेसें आर्द्र (भीज्यो) वस्त्र होय सो सूकेमे धरिवेसूं सुकेकूं हू आर्द्र करत हैं तेसें जिनको मन अपने संबंधवारे रुक्षकूं हू आर्द्र करत हे सो शुकादिजेसे समजने मूलमें "ये" कह्यो हे तासूं सर्वत्र प्रसिद्ध एसे मर्यादामार्गीय कह्ये हैं ओर "तु" शब्दसूं पुष्टि-मार्गीयनको व्यावर्त्तन किया हे. विक्लिन्नमनपनोतो पुष्टि-मार्गीयनमें हू होय के तासूं पुष्टिमार्गीयनके धर्मसूं भिन्न धर्म जो हे सो कहत हैं जो भगवानकी स्मृतिकरिकें विह्वल हैं; इतनें श्रवणके समयमें ऐश्वर्यादिषड्गुणसंपूर्ण एसें भगवानकी स्मृति जो होय हे ताकरिकें विव्हल हैं सर्वदा विव्हल नहिं हैं किंतु जब स्मृति होय तब हि विव्हल होय हैं. उपर लिखे एसे दोयधर्मकरिकें उत्तमपनो विनमें भाषत हे तासूं स्पष्टरीतिसूं मध्यमपनोबतायवेवारो धर्म कहत हैं जो अर्थमें हि मुख्य निष्ठावारे हैं; इतनें मोक्षादि पुरुषार्थ अथवा अपनी कृतार्थता होय ये हि मुख्य विनकूं प्रयोजन हे वामे निष्ठावारे हैं मुख्य-पनेसूं चरित्रमें निष्ठावारे नहिं हैं; अर्थात् फलकी अपेक्षावारे हैं तासूं मध्यम गिन्ये हैं. एसे श्रोताहि होय नहिं क्यों जो श्रोतानको अर्थमें तात्पर्य होय नहिं एसी आशंका होय तहां कहत हैं जों श्रवणसूं साध्य एसो जो फल तामें इनको तात्पर्य हे तोहू भगवानके चरित्रमें उत्कंठावारे हैं तासूं श्रोतापनेसूं

मध्यमपनो हे. जेसें परीक्षितादिकनकूं दूसरे करतें पूर्णवैराग्य होयवेसूं उत्तमपनो हे तथापि उपाधिसहित प्रवृत्ति होयवेसूं विहुर तथा उद्धवादिककी अपेक्षासूं मध्यमपनो हे; तासूं हि गंगाजीमें परीक्षितने प्रायोपवेश कियो सो तीर्थके कारणसूं कियो हे, जो वाके मनमें तीर्थकी अपेक्षा नहिं हती तो भगवानको चरित्र दूसरे साधनकी अपेक्षा नहिं राखिके जहां बेठकें श्रवणकरे तहां फलकूं सिद्धकरिवेवारो हे; क्यों जो भगवानकूं जेसें तीर्थको अपेक्षा नहिं हे तेसें उनके चरित्रकूं हू नहिं हे ओर विदुरजी तो चरित्र सुनिवेके लिये जहां मैत्रेयजी हते वहां गये हैं; इतनें वक्ताके सन्निधान जायवेकी उद्देश हतो गंगाजीपें जायवेको उद्देश नहिं हतो; तासूं उत्तमपनो हे. परीक्षित् ओर विदुरजीं दोयनकूं मर्यादापनो तो समान हे तथापि मर्यादामार्गमें जितनी शुद्धि होय तितनी फलमें विशेषता होय; तासूं विदुरजीमें तीर्थाटन ओर सत्संगकरिकें श्रवणको अधिकार सिद्ध भयो हे ओर परीक्षितमें तो स्पष्ट हि हे तासूं हि सिद्धांतमुक्तावलीमें मर्यादामार्गीनकूं गंगाजीके तटपें श्री भागवतमें तत्पर होयकें रहीवेकी आज्ञा करी हे. ॥ २ ॥

एसें मध्यम श्रोताको निरूपणकरिकें अधम श्रोतानको निरूपण भिन्नपनेसूं करिवेको प्रयोजन नहिं हे तासूं उत्तमके निरूपणके मध्यमें हि कोउधर्मकरिकें अधमनको निरूपण करिवेके लिये उत्तमनको हि

प्रथम निरूपण करत हें.

श्लोकः—निःसंदिग्धं कृष्णतत्त्वं सर्वभावेन ये विदुः ।
तत्त्वावेशात्तु विकला निरोधाद्वा न चान्यथा ॥३॥
पूर्णभावेन पूर्णार्थाः कदाचिन्न तु सर्वदा ।
अन्यासक्तास्तु ये केचिदधमाः परिकीर्त्तिताः ॥४॥

टीका—संदेहरहित जो श्रीकृष्णरूप तत्त्व ताकूं सर्वभावकरिकें जो जानिवेवारे हें वे आवेशसूं अथवा निरोधसूं हि विमल होय हें ओरप्रकारसूं नहिं होय हें ओर कोउवखतपें हि पूर्णभावकरिकें पूर्णअर्थवारे होय परंतु सर्वदा न होय ओर अन्यमें आसक्तिवारे हें वे अधम कह्ये हें, इतनें सदानंद-श्रीकृष्णको तत्त्व जो वास्तवरूप रसात्मककरपादादियुक्त साकार ओर मायाकूं दूरकरिकें प्रकट भयों एसो जो स्वरूप ताकूं शास्त्र ओर अनुभवकरिकें संदेहरहित होयकें जेसो हे तेसो जानवेवारे श्रवणके उत्तमाधिकारी हें. यहां शंका होय जो एसे दृढज्ञानवारेनकूं श्रवण करिवेकी अपेक्षा न रहे तासूं उनकूं श्रोतापनो केसें ? एसी शंकाके निराकरणमें कहेहें जो वे ज्ञानवारे हू जब ज्ञानकरिकें हृदयमें भगवदावेश होय तब विकल होयजायहें तब हम जानिनेवारे हें एसी स्फूर्त्ति विनकूं होय नहिं हे तब श्रवण करिवेकी उनकूं योग्यता सिद्ध होय हे, तासूं हि श्रीभागवतके प्रथमस्कंधमें कह्योहे जो " सतत

भगवद्भक्त जिनकूं प्रियहें ओर प्रभुके गुणननें जिनकी मतिको आकर्षण कियोहे एसे श्रीशुकदेवजी श्रीभागवतरूप आख्यान पढे " एसें पूर्णज्ञानवारेनकूं श्रवणकी योग्यता कहीहे. मूलमें तु शब्द कह्यो हे तासूं रसावेशवारेनकूं उपरकह्येप्रमाण मति-विक्षेप न होय एसें कह्यो हे; क्यों जो उनकूं तो निरंतर रसावेश रहिवेसूं ज्ञान कबहू न होय हे; क्यों जो ज्ञान हे सो रसके उदयको प्रतिबंधकहे तासूं हि सर्वव्यापक ओर अपने हृदयमें बिराजवेवारे-प्रभूनको शोध करिवेकी प्रवृत्ति होयहे सोहि बात सिद्धज्ञानवारे-श्रीशुकदेवजीनें श्रीभागवतदशम-स्कंधमें फलप्रकरणमें कही हे; तासूं हि श्रीटिप्पणीजीमें श्रीगुसाँइजीनें आज्ञा करी हे जो बहिर्मुखनकूं आकाशकीसीनांई सर्वत्र व्याप्त हें एसो प्रभुको ज्ञान होय हे ओर भक्तनकूं तो बाहिर प्रकटप्रभुको हि आनंद अपेक्षित हें; तासूं एकादश-स्कंधमें श्रीभगवाननें आज्ञा करी हे जो " ज्ञान, वैराग्य बहोतकरिकें भक्तके श्रेयःसाधक नहिंहे " यहां शंका होय जो भगवदावेशमें तो भगवानकीनांई सर्वज्ञपनो होनो योग्य हे तब उनकूं विकलता केसें होय ? जासूं श्रवणादिकमें प्रवृत्ति होय हें एसी शंका करिकें कहे हें जो उनकूं प्रभुके गुणकरिकें निरोध होय हे. प्रपंचके विस्मरणपूर्वक प्रभुमें जो आसक्ति वाकूं निरोध कहत हें सो केवल गुणश्रवणसूं हि होय हें तासूं निरोधकरिकें वैकल्य होयजाय हे ओररीतिसूं नहिं होय हे.

एसें श्रोतापनेको उपपादन करिकें उनकूं कदाचित् मोक्षादिक-अर्थमें निष्ठा होय तब अर्थमें निष्ठा होय सो तो मध्यममें गिन्येजाय तासूं मध्यमपनेकी निवृत्तिके लिये अब कहत हैं जो सर्वत्र पूर्ण एसो जो भगवद्भाव (भगवदावेश ओर निरोधसूं भयो भगवानको ज्ञान) इतने सर्वत्र भगवानकी स्फूर्त्ति ताकरिकें हि जाके सब अर्थ समाप्त भये हैं तासूं ओर स्वार्थ उनकूं नहिं हे; तासूं हि (स्वार्थनिष्ठाके अभावसूं हि) उनकों मध्यमपनो नहिं हे किं तु उत्तमपनो हि हैं; क्यों जो एक भगवानमें हि निष्ठावारे हैं. जब एसें भयो तो पुष्टिमार्गीयनसूं वामें जूदाई न भई क्यों जो पुष्टिमार्गीय जेसें प्रभुमें हि निष्ठावारे हैं एसें वे हू हैं एसी शंका होय तहां कहत हैं जो उनकों एसो भाव सर्वदा नहिं रहे हे किंतु कांउवखत रहेहैं; इतनें जब भगवद्गुणको श्रवण करे तब हि निरोध होयकें प्रभुनिष्ठ होय जाय हैं ओर पुष्टिमार्गीय तो सदाहि भगवन्निष्ठ होयवेसूं सबनसूं न्यारे हि हैं; तासूं हि शुकादिकनकूं सर्वदा लीलानुसंधान नहिं हे जो होय तो " मथुराजीसूं व्रजप्रति गये " एसें तटस्थ रहिकें कथन असंगत होय. पुष्टिमार्गीयनके भावको सार्वदिकपनो तो एकादशस्कंधमें प्रभुने हि कह्यो हे जो " मेरे विषे हि जिनकी अनुषंगकरिकें बुद्धि बंधाई हे एसे श्रीगोपीजननें अपनो आत्मा, यह जगत् ओर परलोग उनसबनकूं न जाने, समाधिमें मुनिजन ओर

समुद्रके जलमें जेसें नदीयें अपनो नामरूप छोडिकें प्रवेश करे हैं तेसें " यहां नदीके दृष्टांतकरिकें समुद्रमें प्रवेश करिवेवारी नदी पूर्वरूपकूं कभी प्राप्त नहिं होय हे ओर स्वरूपसूं रहे हे तो हू भेदसूं कथन नहिं होय हैं; तासूं हि पुष्टिमार्गीयनके विषे भगवदितर स्फूर्त्तिके अभाववारो भाव, भगवदीयपनो आर भगवानमें ओतप्रोत होयकें रहनो हे ओर मर्यादामार्गमें तो श्रवणादिकसूं भगवदीयपनो हे तासूं पुष्टिमार्गीय ओर मर्यादामार्गीयमें बहोत भेद हे; तासूं विशेष कहा कहनो ? एसें बहिः संवेदनके अभावकी दशामें मर्यादामार्गीय-उत्तमनको निरूपण करिकें बहिःसंवेदनापन्नको निरूपण करिवेकेलिये बहिःसंवेदनके प्रसंगसूं अधमनको निरूपण करत हें जो कितनेक अन्यासक्त इतनें ब्राह्मणत्वक्षत्रियत्वादिकरिकें उत्कर्षापकर्षयुक्त ओर गृहादिकमें आसक्त इतनें वृत्तिसंपादनके लिये अथवा लोकनकूं सुनायवेके लिये श्रवणकरिवेवारे जलभेदमें " क्षेत्र-प्रविष्टास्तेचापिसंसारोत्पत्तिहेतवः " याश्लोकमें कह्ये-भाववारे अधम कह्ये हें. मूलमें तु शब्द कहेवेको यह अभिप्राय हे जो प्रभुके सेवाकरिवेकेलियें जो घरमें आसक्त होय सो अधम नहिं हे. उनकोंतो पुष्टिमार्गीय-मोक्षरूपपनोकरिकें उत्तमपनो हे. ॥ ३ ॥ ४ ॥

एसें मध्यमें अधमनको निरूपणकरिकें अब बहिःसंवेदनद-शाकेविषेहू जिनको अन्यत्र मन नहिं हे एसे उत्तमनको

निरूपण करत हैं.

श्लोकः—अनन्यमनसो मर्त्या उत्तमाः श्रवणादिषु ।
देशकालद्रव्यकर्तृमंत्रकर्मप्रकारतः ॥ ५ ॥

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितानि पञ्चपद्यानि समाप्तानि.

टीका-देश, काल, द्रव्य, कर्तृ ओर कर्मके प्रकारसूं जो अनन्य मनवारे हैं सो श्रवणादिकमें उत्तमहैं; इतनें सर्वत्र बहारके पदार्थनको ज्ञान होय तब हू प्रभुसिवाय अन्यत्र जिनको मन न होय वे अनन्य कह्येजाय हैं. तहां शंका होय जो प्रभुसिवाय अन्यत्र जिनको मन नहिं हे तिनकूं अंतःसंवेदनमें विशेष कहा ? एसी आशंका करिकें अनन्यचित्तपनेमें प्रकारभेद कहत हैं जो देश, काल, द्रव्य, कर्त्ता, मंत्र ओर कर्म इतनेप्रकारसूं अनन्यमनवारे चहियें; इतने अंतःसंवेदनमें भगवद्रूपसूं हि देशादिकनकी स्फूर्त्ति होय हे देशादिकपनेसूं नहिं होय हे; क्यों जो केवल भगवदाकार अंतःकरण भयो तब सर्वत्र आवरणको नाश होयजाय हे ओर बाहिरके पदार्थको ज्ञान होय तब तो ये देशादिक सब भगवद्रूप हे एसी स्फूर्त्ति होय हे तामें देशादिकनमें भावनामात्रकरिकें भगवद्बुद्धि होय हे; अर्थात् अंतःसंवेदनमें देशादिकनको स्फूर्त्ति हि नहिं होय हे ओर बहि.संवेदनमें देशादिकनकी स्फूर्त्तिके संग भगद्बुद्धि होय इतनो अंतःसंवेदनमें विशेष हैं. तहां शंका होय जो अंतः

संवेदनमें प्रभुपनेसूं देशादिकनमें स्फूर्त्ति होय ओर बहिः संवेदनमें देशादिकनकी स्फूर्त्तिमें भावनामात्रकी बुद्धि रहे इतनो तारतम्य क्यों रहे ? अंतःसंवेदन ओर बहिःसंवेदनमें अंतःकरणको स्वरूप तो एक हि एसी शंकाकरिकें कहत हें जो ये मर्त्य हें तासूं अंतःसंवेदनमें भावनाकरिकें भगवद्रूप हि होयजायवेसूं अन्यस्फूर्त्ति नहि रहे हे ओर बहिःसंवेदनमें तो मर्त्यपनेसूं देशादिकनकी स्फूर्त्ति रहिवेसूं शास्त्रकरिकें उनमें भगवद्बुद्धि रहे हे. एसे जो होय सो मर्यादामार्गमें ओर कीर्तन प्रभृतीनमें उत्तम हें ॥ ५ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचित पञ्चपद्यनको
गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराज-
कृता ब्रजभाषाटीका समाप्ता.

श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीसन्न्यासनिर्णयकी संक्षिप्त-भाषाटीकाको प्रारंभः।

अथ श्रीआचार्यचरण सन्न्यासनिर्णयग्रंथको प्रारंभ करत हैं.

श्लोकः—पश्चात्तापनिवृत्यर्थं परित्यागो विचार्यते ॥

टीका—पश्चात्तापकी निवृत्तिके लिये परित्यागको विचार कियोजाय हे. यहां भक्तिमार्गीय जो परित्याग हे तासूं दूसरे सर्वपदार्थनको विचार करिकें त्याग करनो एसो विचार किये-विना परित्याग कियो होय तासूं जो पश्चात्ताप होय ताकी निवृत्तिके लिये भक्तिमार्गीय—परित्यागके विचारको प्रारंभ करत हैं एसें कोउ कहत हैं. दूसरे एसें कहत हैं जो कर्म-मार्गीयनकूं वृद्धपनो होय तो हू संसारसूं वैराग्य होयवेको संभव होय नहिं हे तासूं एसे—कर्ममार्गीयनके संगकरिकें कदाचित् भगवदीय हू एसे न होय ताके सुखरूप जाको उपाय हें एसे—सन्यासके निरूपणकी प्रतिज्ञा हे. एसें कहिकें शरीर अशक्त होय तब पूर्वदशाको स्मरण करिकें वाके मनमें एसो विचार होय जो मेनें प्रथमतें हि भगवानके लिये क्यों

यत्न न कियो ? एसो जो भगवदीयनकूं ताप होय सो हि यहां ' पश्चात्ताप ' शब्दसूं कह्योजाय हे, कितनेक एसें कहें हे जो भक्तिमार्गमें ओर ज्ञानमार्गमें साधनदशामें ओर सिद्धदशामें कर्तव्यपनेसूं परित्याग कह्यो हे तामें साधनदशामें पूर्व वैराग्य नहिं होयवेसूं आछी भांति परित्यागको संभव नहिं हे तासूं पाषंडिपनेके प्रसंग करिकें पश्चातापके लिये हि यह परित्याग होय एसो तारतम्य नहिं जानते होय एसे भगवदीय हू प्रथम परित्याग करिकें पीछे तापयुक्त होय, तेसें एसे तत्भगवदीयनकूं देखिकें श्रीआचार्यचरण पश्चात्तापकूं प्राप्त होय एसें दोउ प्रकारको पश्चात्ताप नहिं होयवेके लिये यह प्रतिज्ञा हे, कितनेक एसें कहत हैं जो निबंधमें आचार्यचरणननें त्रिदंड धारणकरिवेकी आज्ञा करी हे सो वांचिके पुष्टिमार्गीय जीव हू संन्यासाश्रमपनेसूं त्रिदंडको ग्रहण करिकें पश्चात्तापकूं प्राप्त होय ताकी निवृत्तिके लिये पुष्टिमार्गीय सन्न्यासके विचारको आरंभ करत हैं. कितनेक तो एसें कहत हैं जो श्रुतिप्रभृति-प्रमाणकरिकें सिद्ध एसे रसात्मक जो भगवान् ताको विरहात्मक-भावको जो अनुभव सो, सर्वात्मभावकरिकें शरणागति होय तब हि प्राप्त होय सो सर्वपरित्याग विना होय नहिं एसो त्यागको स्वरूप नहिं जानिवेवारे जो पुष्टिमार्गीय जीव हैं तिनकूं ज्ञानादिकमार्गनमें हू परित्याग कह्यो हे तासूं संदेहयुक्त होय इनकूं विनाविचारसूं परित्याग भयो होय सो

प्रश्चात्तापके लिये हि होय ताके अभावके लिये विचारको आरंभ हे एसें कहत हें, ओर श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजने तो एसो अभिप्राय कह्यो हे जो अंतःकरणप्रबोधमें जो पश्चात्ताप ओर परित्याग पदको लेख हे सो जा अभिप्रायसूं हे सो हि अभिप्राय यहां लेनो चाहियें एसे अभिप्रायसूं लिख्यो हे जो प्रभूननें देह ओर देशके परित्यागविषयक श्रीआचार्यचरणनकूं आज्ञा करी ताप्रमाण उपरदीखवेमें आवते-विचार-करिकें श्रीआचार्यचरणननें जब कर्यो नहिं तब आपने सेवकपनेको स्वीकार कियो हे तासूं पश्चात्ताप भयो तब लोकत्यागविषयक तीसरी आज्ञा भई तासमय आप विचार करत हें जो भगवान् मेरी उपर प्रसन्न हें किंवा अप्रसन्न हें ? जो अप्रसन्न होय तो मेरी उपेक्षा हि करें परंतु आज्ञा नहिं करें ओर यहां तो तीसरी आज्ञा भई तासूं प्रसन्न हें एसो तो निश्चय होय हे परंतु प्रथम दोय आज्ञाको उल्लंघन कियेसूं हू प्रसन्न रहिवेको कहा कारण होयगो ? एसो विचार करिवे लगे तब श्रीभागवतकी सूक्ष्म-टीकाकी निवृत्ति भई तासूं दानरूप-देशत्याग ओर माधवभट्ट-काश्मीरीकी देहनिवृत्तिसूं वृद्धिरूप-देहत्याग प्रभूननेहि करवायो हे तासूं प्रथमकी दोउ आज्ञा प्रभूननेहि सिद्ध करी हे. तेसें तीसरी आज्ञाको अभिप्रायहू जानिवेमें नहिं आवत हे एसो निश्चयकरिकें यद्यपि दोय आज्ञा सिद्धभई हे तथापि प्रभूनने सिद्ध करी हे कछु आपने नहिं करी तासूं जो पश्चाताप भयो

हे ताकी निवृत्ति केसें होय ? एसो विचार करिकें तीसरी आज्ञा कहा विषयकी हे ? एसे विचारसूं हि प्रथमकी दोय आज्ञा नहिं करिवेको पश्चात्ताप भगवान् निवृत्तकरेंगे एसो निश्चय करिकें अपनी अवस्थाके सूचनपूर्वक परित्यागके निरूपणकी प्रतिज्ञा करत हें जो पश्चात्तापकी निवृत्तिके लिये जो परित्याग हे ताको विचार कियोजाय हें. यहां विचारको लिख्यो हे तासूं विधिनिषेध नहिं हे जो विधानकी आज्ञा करतें तो विधिशेषपनेसूं सबनकूं कर्तव्यपनो आवतो तासूं विधानकी आज्ञा नहिं करकें विचारकी आज्ञा करी हे.

स्वरूपसूं साधनसूं, ओर फलसूं ताके विचारमें सामान्य-परित्यागको स्वरूप जानिवेमें आवे तो अन्यमार्गीय त्यागको तथा यहां जाको विचार होय हे ताको तारतम्य जान्योजाय ताके लिये अन्यमार्गीय-त्यागकूं कहत हैं.

श्लोकः-स मार्गद्वितये प्रोक्तो भक्तौ ज्ञाने विशेषतः ।१।

टीका-सो त्याग भक्तिमार्गमें ओर ज्ञानमार्गमें विशेष-करिकें एसें दोयमार्गमें कह्यो हे. विशेषसूं त्याग, पुष्टिमार्गमें रासमंडलमंडनभूत जो व्रजभक्त हें विननेंहि कयों हे; तासूं "सबविषयनकूं छोडिकें हम आपके चरणारविंदके मूलप्रति प्राप्त भये हें" एसें फलप्रकरणके प्रथमाध्यायमें कह्यो हे ओर विनकी लीलामें हि चतुर्थाध्यायमें व्रजभक्तनप्रति प्रभूनने कह्यो हें जो

"मेरे लिये हि लोक, वेद ओर संबंधीनको तुमने त्याग कियो हे" यहां विशेषसूं त्याग कह्यो हे. तेसें ज्ञानमार्गमें हू परित्याग विशेषसूं कह्यो हे; तामें एक विविदिषासन्न्यास ओर एक विद्वत्सन्न्यास एसे भेदसूं ज्ञानमार्गके शास्त्रमें निरूपण कियो हे तासूं 'विशेषतः' एसें कह्यो हे. ॥ १ ॥

ज्ञान, कर्म ओर भक्ति एसें तीनमार्ग एकादशस्कंधमें भगवाननें कल्याणकरिवेवारे कह्ये हें तामें कर्ममार्ग हू गिन्यो हे तासूं कर्ममार्गमें हू परित्यागकी प्राप्ति होय हे एसी आशंका करिकें ताको निषेध करत हें.

श्लोकः-कर्ममार्गे न कर्त्तव्य सुतरां कलिकालतः
अतः आदौ भक्तिमार्गे कर्त्तव्यत्वाद् विचारणा ।२।

टीका-कर्ममार्गमें परित्याग कर्त्तव्य नहिं हे तामे हू कलिकालसूं तो कर्ममार्गमें कर्त्तव्य हें नहिं. अब दोयमार्ग रहे तामें प्रथम भक्तिमार्गमें कर्त्तव्यपनो होयवेसूं ताको विचार होय हे; इतनें कर्ममार्गमें यावज्जीव अग्निहोत्र करिवेको विधि होयवेसूं संन्यास ग्रहणकरिवेको समय नहिं आवत हे. 'यद्यपि आयुष्यको चतुर्थभाग संन्यासाश्रमकरिकें व्यतीत करनो' एसें कोउस्थलमें कह्यो हे तथापि कलिदोषकरिकें मनुष्यनको अल्पसामर्थ्य होयवेसूं ओर चतुर्थभाग आयुष्यको अतिजराव्याप्त होयवेसूं आश्रमधर्मकों अतिकष्टसूं हु सिद्धकरिसकें नहिं तासूं

विपरीतफलसाधकपनो होय. एसें ज्ञानमार्गमें कर्त्तव्यता ओर कर्ममार्गमे अकर्त्तव्यता जतायकें भक्तिमार्गमें कर्त्तव्यप्रकारको विचार करतहें जो भक्ति ओर ज्ञान एसें दोयमार्गमें कर्त्तव्यता कही हे तामें प्रथमश्लोकमें प्रथम भक्तिमार्गमें कर्त्तव्यता कही हे तासूं ताको विचार करत हैं; इतने कब करनो ? केसें करनो ! ओर क्यों करनो ? याको विचार करत हैं ॥ २ ॥

भक्तिमार्गमें श्रवणादि-साधनकी सिद्धिके लिये
कर्त्तव्यके पक्षको निराकरण करत हैं.

श्लोकाः-श्रवणादिप्रवृत्यर्थम् कर्त्तव्यश्चेत् स नेष्यते।
सहायसंगसाध्यत्वात् साधनानां च रक्षणात् ॥३॥
अभिमानान्नियोगाच्च तद्धर्मैश्च विरोधतः।
गृहादेर्बाधकत्वेन साधनार्थं तथा यदि ॥ ४ ॥
अग्रेऽपि तादृशैरेव संगो भवति नान्यथा।
स्वयं च विषयाक्रान्तः पाषण्डी स्यात् तु कालतः५

टीकाः—श्रवणादिकनकी प्रवृत्तिके लिये त्याग करनो एसो पक्ष होय तो सो पक्ष योग्य नहिं हे; क्यों जो श्रवणादिनकी सिद्धि सहाय ओर संगसूं हे ओर त्याग (संन्यास) में तो वाके साधन राखने चहियें तासूं श्रवणादिकनके साधन होयसके नहिं, आश्रमकी उत्तमताको अभिमान होय ओर संन्यासके धर्मनकरिकें भक्तिमार्गके श्रवणके धर्मको विरोध हे

तासूं श्रवणादिक होयसके नहिं ओर गृहादिकके बाधकपनेसूं साधनके लिये परित्याग करनो एसें जो होय तो त्याग किये पीछें हू एसेनको हि संग होय दूसरेनको होय नहि ओर आप कालसूं पाषंडी होय; इतनें जो त्यागी होय सो अकेलो निःसंग शान्त होयकें फिरे एसो लेखहे ओर श्रवणादिककरिवेमें सहाय तथा संग अवश्य चहियें तब श्रवणादिक होय ओर त्यागकरिवेमें संग मिले सो अपने मार्गके अनुसारको श्रवण बतावे पुष्टिमार्गीय-श्रवणकूं बतावे नहिं. जेसें मायावादी सगरेजगतकूं कल्पित मानिवेवारे होयवेसूं जगतमें रह्ये एसे वेदनकूं हू कल्पित मानत हें ओर वेदनमें ब्रह्मके जो प्रतिपादित हे सो हू व्यवहारोपयोगी हे परमार्थमें नहिं हे तासूं भक्तिमार्गसूं विरुद्ध हें, नैयायिकनके मतमें तो जगतके कर्त्तापनेंसूं ईश्वरकी सिद्धि हे तथापि ज्ञान, इच्छा ओर प्रयत्नादिसिवाय दूसरे धर्म नहिं हे एसें मानत हें तासूं भक्तिमार्गसूं विरुद्ध हें. मीमांसक मंत्रमयी देवता मानत हें फलदेवेवारो दूसरो ईश्वर हे इनकूं नहिं मानत हें. तासूं वामें तो श्रवणादिक हे हि नहिं. एसें भिन्नभिन्नमतवारेनको संग होयवेसूं भक्तिमार्गीय श्रवण सिद्ध होय नहिं. तासूं आश्रमधर्म राखने चहियें तामें हि सर्वकाल व्यतीत होयजाय इतनें श्रवणादिक करिवेको समय हि मिले नहिं. तेसें सन्न्यासाश्रम सबनकूं आदरणीय हे ताके लिये अपनेमे श्रेष्टताको अभिमान होय सो हू भक्तिमार्गसूं

विरोधी हे, तेसें सन्न्यासाश्रम शास्त्रकी आज्ञाके आधीन हे ओर सन्न्यासके धर्म तथा भक्तिमार्गीय श्रवणके धर्मनमें परस्पर विरोध हे तासूं श्रवणादिकनकी सिद्धिके लिये सन्न्यास करनो यह पक्ष योग्य नहिं हे. कदाचित् भक्तिमार्गीय-श्रवणादिकके स्वरूपकूं जो जानतो होय ताकूं गृहस्थितिमें व्यासंग-करिकें श्रवणादिक होय नहिं हे एसें त्याग करे तो वाकूं हू साधनदशामें जेसो पूर्णभाव भक्तिमार्गमे चहियें तेसो नाहिं-होयवेसूं निरंतर श्रवणादिक होयसके नहिं ओर चितकी चंचलतासूं एतन्मार्गसूं जो विजातीय होय विनसूं हि संग होय ओर जिनकूं भगवद्भाव न होय ताको चित्त विषयाक्रांत होयवेसूं एसेनको संग अल्पसमय होय तोहू प्रथमके भावको नाश-करिकें अपनकूंहू विषयाक्रांत करिवेको संभव होय; इतनें प्रथमके भावको निर्वाह नहिंहोयवेसूं त्याग कियो सोहू मुख्य-फलकूं सिद्धकरिवेवारो भयो नहिं तासूं भक्तिमार्गके विचारमें त्यागकरिवेवारो कालक्रमसूं पाषंडी होय, ॥३॥४॥५॥

यद्यपि भावकी स्थितिमें दुःसंग बाधक हे तथापि भावकी स्थितिके लिये हि त्यागको उपक्रम कियो हे तासूं दुःसंग होयगो तो हू भाव रहेगो एसो पक्ष कोउ कहे तो ताके निराकरणके लिये अब कहत हैं.

श्लोकः—विषयाक्रांतदेहानां नावेशः सर्वदा हरेः ॥
अतोऽत्र साधने भक्तौ नैव त्यागः सुखावहः ॥६॥

टीकाः—विषयकरिकें जिनका देह आक्रांत हे तिनकूं सर्वदा हरिको आवेश न रहे. मूलमें सर्वथा पाठ होय तो हरिको निश्चय आवेश न रहे एसो अर्थ समजनो; तासूं साधन-रूप—भक्तिमार्गमें अथवा भक्तिमार्गमें साधन दशामें त्याग सुखकूं देवेवारो नहिं होय हे; इतने नेत्रप्रभृति—सर्वइन्द्रियनके रूपप्रभृति सब विषय हें तिनकरिकें जिनको देह व्याप्त हे तिनकूं (विषयको आवेश हृदयमे होयवेसूं) सर्वदा हरिको आवेश नहिं होय हे; क्यों जो इंद्रियनके विषयमें आसक्ति होय सो प्रभुके आवेशमें बाधक हे तासूं श्रवणादिक जो साधनरूप भक्ति हे तामें त्याग करे सो पुरुषार्थकूं सिद्धकरिवेवारो न होय. मूलमें एवकार हे तासूं सर्वथा पुरुषार्थको असाधकपनो कह्यो हे ॥ ६ ॥

तब भक्तिमार्गमें त्याग कहवेको प्रयोजन नहिं होयवेसूं त्यागकी व्यर्थता होय हे. एसी शंका होय तहां कहत हें

श्लोकः—विरहानुभवार्थं तु परित्यागः प्रशस्यते ।
स्वीयबन्धनिवृत्त्यर्थं वेषः सोऽत्र न चान्यथा ॥७॥

टीकाः—भगवानके विरहके अनुभवके लिये तो त्याग उत्तम कह्यो हे ओर त्यागमें कापायवस्त्रादिक वेष हे सो अपने संबंधीनहे बंधकी निवृत्तिके लिये हे अन्यथा नहि हे; इतनें पुष्टिमार्गीय—परित्याग संपूर्ण भगवद्भाव भये पीछे होय; क्यों

जो भगवानके विरहको अनुभव करनो सो संयोगसुखको अनुभव भयो होय तब वियोगमें विरह होय तासूं प्रथम भावपूर्वक भगवानके श्रीमुखको दर्शन करतो होय ओर श्रीअंगकी सेवा करतो होय तामें जो आनंद प्राप्त होतो होय सो वियोगमें दर्शन तथा सेवाको सुख नहिंमिलवेसूं विरह होय ताको अनुभव करिवेकेलिये गृहादिकको त्याग करे सो उत्तम हे. एसे त्यागमें शुद्ध-पुष्टिमार्गीय-भाववारो होय सो हि अधिकारी हे. एसो पूर्णभाववारो जो होय ताकूं सर्वात्मभाववारे जो भक्त हें तिनके संबंधवारी जो रासादिकलीला हे ताको विचार अवश्य होय ताकरिकें ओर येलीला परमफलरूप हे ताकरिकें पूर्व कह्ये एसे भक्तकूं हू एतन्मार्गीयपनो होयवेसूं एसो फल मिलवेकी अत्यंत अभिलाषा होय परंतु यासमयमें वाकी अभिलाषा पूर्ण होय नहिं ओर पूर्ण करिवेवारको दर्शन हू होय नहिं तासूं विरह अवश्य होय ओर गृहमें जो मनुष्य रहें होय सो विजातीयभाववारे होयवेसूं तिनको संग याके भावकूं नाशकरिवेवारो होय ताकरिकें विरहको अनुभव होय नहिं तासूं गृहको त्याग करनो आवश्यक हे. ओर वाको त्याग जतायवेकेलिये काषायादिक त्यागके वेषकी कल्पना हे; इतनें जो सन्यासको वेष न होय तो स्त्रीपुत्रादिक आयकें प्रतिबंध करें ओर वेष कियो होय तो स्त्रीपुत्रादिक देखिकें यह सन्यासी होयगयो हे एसें जानिकें दूर रहे तो प्रतिबंध करिसके नहिं

तासूं सन्यासीनको वेष हे ओर कछु प्रयोजन नहिं हे. ॥७॥

मर्यादामार्गमें तथा पुष्टिमार्गमें गृहको त्याग समान
हे तथापि मार्गके भेदको निरूपण करिवेके
लिये त्यागको निमित्त तथा त्यागके वेष-
करिवेको निमित्त भिन्न बतायकें गुरु
ओर साधनको निरूपण करत हें.

श्लोकः—कौंडिन्यो गोपिकाः प्राक्तागुरवः
साधनं च तत् ।
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते ।८।

टीका—कौण्डिन्यऋषि ओर श्रीगोपीजन त्यागके गुरु कह्ये हें ओर साधन हू यह हे जो भावनाकरिकें भाव सिद्ध होय सोहिं साधन हे ओरसाधन इच्छित नहिं हे; इतनें कौण्डिन्यऋषि अनंतव्रतके प्रस्तावमें निरूपित हे ओर श्रीगोपीजन प्रसिद्ध हें तासूं विशेष प्रकार नहिं कह्यो हे. यद्यपि कौण्डिन्यऋषि मर्यादामार्गीय होयवेसूं वाकूं एतन्मार्गको ज्ञान नहिं होयवेसूं उपदेष्टृपतो नहिं हे तासूं गुरुपनो संभवे नहिं तथापि दत्तात्रेयकीनांई अपने वैराग्यमें उपयोगी एसे विनके धर्म शिखवेसूं जेसें दत्तात्रेयनें पृथ्वीप्रभृतीनको गुरुपनेमें अंगीकार कियोहे तेसें कौण्डिन्यकूं अनंतके गुणको श्रवणकरिकें विनकूं मिलवेके लिये आर्त्ति भई तासूं विप्रयोग-भाव भयो ताकरिक विक्लवता होयवेसूं प्रश्नकरिवेकूं अयोग्य

एसे वृक्षादिनकूंहू प्रश्न करिवे लगे. एसें कौण्डिन्यको त्याग ओर एतन्मार्गीय-त्याग समान हैं तासूं कौण्डिन्यमें गुरुपनो कह्यो हे. ओर श्रीगोपीजनन हू उपदेशकरिवेवारे नहिं हैं तथापि विनको मार्ग प्रकट करिकें ओर विनके भावके अनुकूल आचरण करिकें ओर पंचाध्यायीमें दोहप्रभृतीनको विरहसूं त्याग करिकें प्रभूनकी पास गये हैं एसो त्याग यहां अभीष्ट होयवेसूं हू विनगोपीजननको गुरुपनो कह्यो हे. ओर अपनेमें श्रीगोपीजननके भावके अनुरूप भावना करिकें सिद्ध भयो जो भाव ताको साधनपनो उचित हे. दूसरे (दानव्रतादिक)को साधनपनो ईच्छित नहिं हैं. ॥ ९ ॥

पसो भाव उत्पन्न भये पिछें जो अवस्था होयवेवारी हे जो बुद्धिकूं फिराईदेय तब दुःखके कारणरूप होय ताकरिकें प्राकृतपनो होयजाय. पसी आशंकाको परिहार विनके भावके स्वरूपको निरूपण करिकें करत हैं.

श्लोकः—विकलत्वं तथाऽस्वास्थ्यं प्रकृतिः
प्राकृतं न हि ॥
ज्ञानं गुणाश्च तस्यैवं वर्तमानस्य बाधकाः ॥९॥

टीका—विकलपनो तथा अस्वस्थपनो विकलभावकी प्रकृति हे प्राकृतपनो नहिं हे. ओर एसें भावमें जो रह्यो हे

ताकूं ज्ञान विकलता होय ओर काउस्थलमें स्वस्थता न रहे सो हू स्वाभाविक धर्म हे लौकिक नहिं हे. सो अर्थ युक्त हे एसें जतायवेके लिये ' हि ' अव्यय लिख्यो हे; क्यों जो एकादशस्कंधमें ज्ञानके निरूपणके प्रस्तावमें हू कैवल्यादिक-ज्ञानकूं हू सगुणपनो हे एसें निरूपण करिके " मेरेमें जो ज्ञान रह्यो हे सो निर्गुण हे " एसें कहिकें स्वविषयक-ज्ञानको निर्गुणपनो कह्यो हे. जहां मर्यादामार्गमें हू भगवानके संबंधिपनेसूं वस्तुकों निर्गुणपनो हे तहां साक्षात् सबनसूं अधिक एसे भक्तिमार्गसंबंधिभगवद्भावसूं जो धर्म होय हे तिनकूं निर्गुणपनो होय तामें कहा कहेनो ? एसो अभिप्राय ' हि ' अव्ययसूं सूचित होय हे. तहां शंका होय जो भगवानके संबंधसूं निर्गुणपनो भलें होय तो हू विप्रयोगभावकों दुःखा-त्मकपनो होयवेसूं सबनसूं उत्कृष्टपनो क्यों ? एसी शंका होय ताको समाधान एसें करनो जो पुरुषोत्तमको स्वरूप हे. ओर रस संयोग तथा विप्रयोग एसें दोयप्रकारको होयवेसूं विप्र-योगकूं हू रसपनो हि हे तासूं जेसें शोकसूं अश्रु आवे ताकूं दुःखरूपपनो ओर आनंदसूं अश्रु आवे ताकूं सुखरूपपनो हे

" तामें अश्रुपनो समान हे तथापि फल समान नाहि हे तेसे विप्रयोगकूं दुःखरूपपनो नहिं हे. एसो विकल अवस्थामें रह्यो एसो जो विप्रयोगभावनावारो हे ताकूं सर्वजगत् भगवानको शरीर हे एसो ज्ञान ओर श्रवण, कीर्त्तन तथा ज्ञानके विषयरुप

भगवानके गुण बाधक हैं; इतनें अंतःकरणमें विप्रयोग भाव रह्यो होय सो सर्वजगत् भगवानको शरीर हे ओर सर्वत्र भगवान् विराजे हे एसे ज्ञानसूं जातरहे तेसें श्रवणकीर्त्तनादिकके विषयरूप जो भगवानके गुण तासूं भगवानके विरह करिके जो विह्वलता भइ होय सो जातरहे एसें ज्ञान ओर गुणको बाधकपनो हे तेसे लौकिक ज्ञान ओर मनकी स्वस्थाके कारण-रूप गुण हू विप्रयोगरसके अनुभव तथा फलमें प्रतिबंधक हें. ॥९॥

ज्ञानमार्गमें ओर भक्तिमार्गमें घरको त्याग तो समान हे तब ज्ञान तथा मनकी स्वस्थताकूं ज्ञानमार्गमें साधकपनो हे तब भक्तिमार्गमें बाधकपनो केसें ? एसी शंकाके समाधानके लिये फलभेदकरिकें समाधान करत हें.

श्लोकः—सत्यलोके स्थितिर्ज्ञानात् संन्यासेन विशेषितात् ।
भावना साधनं यत्र फलं चापि तथा भवेत् ।१०।

टीका—संन्यासकरिकें विशेष भयो एसो जो ज्ञान तासूं सत्यलोकमें स्थिति होय; इतनें सर्वत्र ब्रह्म व्यापक हे एसो ज्ञान होय ओर वाके संग सन्न्यास होय तब ब्रह्मलोकमें स्थिति होय. वाविषयमें तैतरीयश्रुतिमें कह्यो हे जो "वेदान्तमें विज्ञानसूं जिनने आछी रीतसूं अर्थको निश्चय कियो हे ओर

सन्न्यासयोगसूं जिनको अंतःकरण शुद्ध भयो हे एसे जो सन्न्यासिलोक हैं वे ब्रह्मलोकमें जाय ओर ब्रह्माजीकी मुक्तिके संग मुक्त होय हैं" एसें कह्यो हे ओर छांदोग्य-श्रुतिमें तो " यालोकमें जेसे यज्ञवालो पुरुष होय हे तेसो हि मरणानंतर होय हे " एसो कह्यो हे तामें तैतरीय श्रुतिमें ब्रह्माकी मुक्तिके समयमें मुक्ति होयवेकों लिख्यो हे ओर छांदोग्यश्रुतिमें तो मरणानंतर भावनानुसार पारलौकिकफल होयवेको कह्यो हे तासूं जोपुरुषमें भावना साधन हे वहां एसो फल होय. अर्थात् ज्ञानयुक्त जो संन्यासी हैं वाकूं हि ब्रह्म-लोकमें स्थिति होयकें ब्रह्माके संग उनको मोक्ष होय हे तासूं ब्रह्मलोकमें जायवेमें ज्ञानकीहि मुख्यता हैं ओर स्वास्थ्य न होय तो ज्ञान स्थिर होय नहिं तासूं मनकी स्वस्थता सिद्ध-करिवेवारो ज्ञानहि हे ओर भक्तिमार्गमें साक्षात् पुरुषोत्तमके संबंधकूं हि फलपनो हे ओर पुरुषोत्तम रसात्मक हैं एसो हि श्रुतिमें कह्यो हे तासूं इनके संबंधमें विप्रयोगरसात्मक भावकूं हि साधनपनो हे ज्ञान ओर मनकी स्वस्थताप्रभृतीनकूं तो भावको नाशकपनो हैं; तासूं जहां भावनारूप साधन हे वहां फल हू तेसो होय. एसो अभिप्राय छांदोग्यश्रुतिको हे ॥१०॥

एसें दोउमार्गमें प्रकारके भेदकरिकें साधन ओर फलको निरूपण करिकें ज्ञानमार्गमें फल-प्राप्तिमें विलंब नहिं होय हे ताको कारण कहत हैं.

श्लोकः—तादृशाः सत्यलोकादौ तिष्ठंत्येव न संशय ।
बहिश्चेत् प्रकटः स्वात्मा वह्निवत् प्रविशेद् यदि
॥११॥
तदैव सकलो बंधो नाशमेति न चान्यथा ।

टीका-सन्न्यासयुक्त जो ज्ञानी हे सो सत्यलोकादिकमें हि रहे हैं वामें संशय नहिं हे तासूं ज्ञानमार्गमें मुक्ति होयवेमें विलंब होय हैं ओर भक्तिमार्गमें तो जेसें सबकाष्टनमें अग्नि व्याप्त होय कें रह्यो हे तथापि काष्टकों दहन करिवेमें समर्थ नहिं हे तासूं बाहिरको अग्नि भीतर प्रविष्ट होयकें भीतरके अग्निकूं मिले तब काष्टकूं दहनकरिकें अग्निरूप करिदेय हे एसें सर्वत्र व्याप्त जो ब्रह्मको स्वरूप हे सो मुक्ति करिवेमें समर्थ नहिं हे परंतु बाहिर प्रकट भयो एसो जो आत्मस्वरूप हें सो भीतर प्रविष्ट होयकें भीतरके स्वरूपके संग मिले हे तबहि समग्रबंधकूं नाशकरिके मुक्त करिदेत हे तासिवाइ मुक्त नहिं होय हे; इतनें संन्यासयुक्त ज्ञानीनकी स्थितिसत्यलोकमें होय हे तामें हू जो निष्काम होय सो तो सत्यलोकमें रहे जो सकाम होय सो तो दूसरे लोकमें हू जाय हैं एसें जतायवेके लिये मूलमें 'आदि' शब्द कह्यो हे. ओर सत्यलोकमें जितने रहत हैं तिनसबनकी मुक्ति ब्रह्माजीके संग होय हे तासूं दोयपरार्द्धताई ब्रह्माजी रहे तबताई उनकूं मुक्ति होयवेमें विलंब

होय हे ओर भक्तिमार्गमें तो अग्निको दृष्टांत दियो हे तासूं एसें जतायो हे जो जेसें काष्टमें विद्यमान-अग्निकूं काष्टको दाह करिवेमें योग्यता नहिं हे; परंतु मथनकरिकें वामेंसूं हि अग्निप्रकट होयके भीतरके अग्निकूं जब मिले तब वाको काष्ट-पनो निवृत्त होयकें अग्निपनो सिद्ध होय हे तेसें भक्तनके हृदयमें भगवान् विराजत हैं तथापि विनको भगवद्रूपपनो करिवेमें योग्य नहिं हैं परंतु विगाढ भावकरिकें बाहिर प्रकट होयके जब भीतरके स्वरूपकूं मिले तब हि ताके प्रतिबंधकूं दूरकरिकें वाकोभगवद्रूपपनो संपादन करे हैं एसोफल सिद्ध करिवेमें दूसरो प्रकार नहिं हे ॥ ११ ॥

तहां शंका होयजो विगाढ भावकूं साक्षात्संगके
अभावकें कारणपनेसूं संगके लिये स्वरूपके
अनुसंधानको हू आवश्यकपनो हे तासूं
गुणगानकरिकें स्वास्थ्य क्यों न
होय ? एसी शंका होय
तहां कहत हैं.

श्लोक :-गुणास्तु संगराहित्याज्जीवनार्थं भवन्ति हि ॥१२॥

टीका-संगरहितपनो हे तासूं गुण तो जीवनके लिये होय हैं; इतने जीव जबसूं भगवानसूं विच्छुर्योहे तबसूं वाकूं भगवा-नको संग नहिं हे परंतु जबताई भगवानके वियोगकी स्फूर्त्ति

नहिं भई हे तबताई वाकूं वियोगको दुःख नहिं हे ओर जब वियोगकी स्फूर्ति होय तब वाकूं वियोगको दुःख होय तासमयमें वाकी स्वस्थता रहिवेमें भगवानके गुणसिवाइ दूसरो कोउ साधन नहिं हे; क्यों जो भगवान् परमानंद हें विनको विरह होय तब जीवन रहे नहिं तासमयमें परमानंदके गुणहि जीवनकूं संपादन करिसकत हें. सोहि बात श्रीगोपीजननें गोपिकागीतमें कही हे जो " आपकी कथारूप अमृत हे सो तसको जीवन हे " और अक्रूरजीके संग भगवान् मथुराजी पधारे तब भगवानके रथकी ध्वजा ओर रथकी रज देखिवेमें आई तबताई तो चित्रकोसीनाई सब गोपीजन ठाडे रहें ओर पीछे भगवान् पाछे फिरेंगें एसी आशा निवृत्त भई तब विनको गुणगान करिकें शोकरहित होयकें दिन व्यतीत करतभये एसें कह्यो हे तहां हू गुणगानकों ही जीवनसंपादननों कह्यों हे; तासूं जीवनके लियें गुणगान होय हे परंतु वासूं स्वस्थता नहिं रहे हे. ॥१२॥

तहां शंका होयजो विप्रयोगभावमें जो रह्यो है
ताकूं भगवानके गुण हू भावके बाधक हें तब
जिनकी भावना होय हे सो भगवान् हू
विलंबकूं संपादनकरिवेवारे होयवेसूं
बाधक केसे नहिं ? असी शंका
होय तहां कहत हें.

श्लोकः—भगवान् फलरूपत्वान्नात्र बाधक ईष्यते ।
स्वास्थ्यवाक्यं न कर्त्तव्यं दयालुर्न विरुद्धयते ।१३।

टीका—भगवान् फलरूप हैं तासूं यहां बाधक नहिं हे और स्वस्थताको वाक्य भगवानकूं कर्त्तव्य नहिं हैं क्यों जो भगवान् दयालु हैं तासूं विरुद्ध नहिं होय हे; अथवा विरोध नहिं होय हे; इतनें यामार्गमें भगवान् हि फलरूप हैं और विनकी प्राप्तिमें विप्रयोगभावको हि साधकपनो हे सो न होय तो फलकी प्राप्ति होय नहिं तासूं भगवान् जो प्रतिबंधक होय तो फलपनो हि सिद्ध नहिं होय तासूं भगवान् बाधक नहिं हैं. तहां शंका होय जो भगवानकूं फलात्मकपनो हे और फलदेयवेकी उनकी इच्छा हि हे तासूं कदाचित् स्वरूप-करिकें विप्रयोगके दुःखकूं निवृत्त नहिं करें तो भले परंतु कछुक—वाक्यकहिकें स्वस्थता क्यों न करत हैं ? इतनें जेसें नारदजीकूं दर्शन देयकें प्रभु तिरोहित भये तब फिर दर्शनके लिये नारदजी यत्न करत हते ताकूं जेसें आकाशवाणीसूं आज्ञा-करी जो " निंदित—यालोककूं छोडिकें मेरे जनपनेकूं तुं प्राप्त होयगो " एसें स्वस्थताको वाक्य कह्यो हे तेसें यहां विप्रयोग-भावकरिकें तप्त एसें भगवानकूं स्वस्थता क्यों नहिं करत हैं ? एसी शंका होय ताकी निवृत्तिके लिये कहत हे जो स्वस्थता होय एसो वाक्य भगवानकूं कर्त्तव्य नहिं हे क्यों जो भगवान्

दयालु हैं तासूं विरुद्ध न होय इतनें नारदजीके कषाय पक्व नहिं भये हते परंतु शुद्धभाववारे हते तासूं स्वस्थता होयवेके लिये तिरोहित होयकें हि वाक्य कहिकें स्वस्थ किये हैं. ओर यहां तो अंतर्गृहगताकीनाई विनको प्रतिबंध हे सो तत्काल निवृत्त करनो हे सो प्रतिबंध, विरहके तापके दुःखसूं ओर भीतर आविर्भाव भयेके आलिंगनके सुखसूं हि निवृत्त करनो हे क्यों जो विनको भाव उत्कट हे तासूं एसे भक्तनकूं वाक्य कहिकें स्वस्थता करे तो अंतर्गृहगतानकों जेसें फल मिल्यो तेसें शीघ्र फल नहिं मिले तो दयालुपनामें विरोध आवे तासूं स्वस्थताको वाक्य भगवानकूं कर्तव्य नहिं हे ॥ १३ ॥

एसें भक्तमार्गीय-सन्न्यासके स्वरूपको साधन ओर फलके प्रकारको विचारकरिकें उपसंहार करत हें.

श्लोकः—दुर्लभोऽयं परित्यागः प्रेम्णा सिद्ध्यति नान्यथा ।
ज्ञानमार्गे तु सन्न्यासो द्विविधोऽपि विचारितः ॥१४॥

टीका—एसे भक्तिमार्गीय यह परित्याग हुलभ हे सो प्रेमकरिकें सिद्ध होय अन्यथा नहिं होय ओर ज्ञानमार्गमें तो विविदिषा ओर विद्वत् एसे दोयप्रकारको सन्न्यास हे; इतनें

भक्तिमार्गीय सन्न्यास हे सो व्रत, दान, ओर तप आदि साधनसूं हू सिद्ध होय एसो नहिं हे क्यों जो एसे त्यागकों सिद्ध करिवेको साधन कोउशास्त्रमें कह्यो नहिं हे केवल प्रेम-करिकें हि सिद्ध होय हे भगवानमें प्रेम नहिं होय तो भक्ति-मार्गीय त्याग सिद्ध न होय ओर ज्ञानमार्गमें विविदिषा ओर विद्वत्सन्न्यास एसे भेदसूं दोयप्रकारके सन्न्यास कह्या हैं. ॥१४॥

अब दोयप्रकारके सन्न्यासको भेद बतावत हैं.

श्लोकः—ज्ञानार्थमुत्तरांगं च सिद्धिर्जन्मशतैःपरम् ।
ज्ञानं च साधनापेक्षं यज्ञादिश्रवणान्मतम् ॥१५॥

टीका—ज्ञानके लिये ओर उत्तरांग जेसें सिद्ध होय तेसें दोय प्रकारको सन्न्यास ज्ञानमार्गमें विचारित हे. ओर यज्ञादिकको श्रवण हे तासूं ज्ञान साधनकी अपेक्षा राखे हे; इतनें ज्ञानरूप फलकी सिद्धिके लिये विविदिषा सन्न्यास होय हे ताकी साक्षात्काररूप सिद्धि सेंकडेन वर्षनसूं होय हे सो गीताजीमें कह्यो हे जो " ज्ञानवान् हे सो बहोत जन्मनके अंतमें यह सर्व वासुदेव हैं एसें जानिकें मेरी शरण आवत हे सो महात्मा अत्यंत दुर्लभ हे " एसें कह्यो हे तामें सब वासु-देवरूप हे एसी शरणागति ज्ञानवानकूं बहोत जन्मके अंतमें होयवेको कह्यो हे ओर ज्ञान हे सो कर्म, ज्ञान तथा भक्तिरूप

साधननकी अपेक्षा राखत हे तामें प्रमाण कहत हैं जो ज्ञानकी उत्पत्तिमें सब साधननकी अपेक्षा हैं जेसें कोउ दूर देशमें प्राप्त होयवेमें अश्वादिककी अपेक्षा हे एसें ज्ञानकी प्राप्तिमें सब साधनकी अपेक्षा हे " क्यों जो निष्कामकूं हू यज्ञादि करिवेको श्रुतिमें कह्यो हे. तासूं केवल शमदमादिक करिकें ज्ञान प्राप्त नहिं होय हे किन्तु आश्रमके अनुसार कर्म हू संग हाय तब ज्ञान प्राप्त होयवेको व्याससूत्रमें कह्यो हे. एसें विविदिषासन्न्यासकी हकीकत कहीकें विद्वत्सन्न्यासकी हकीकत कहत हैं जो " ज्ञानसूं हि मोक्ष होय हे " एसें वाक्यसूं ज्ञानकी सिद्धिपीछे मुक्तिरूपफल सिद्ध होय हे तासूं विद्वत्सन्न्यासकूं मुक्तिको अंगपनो हे. यद्यपि विद्वत्सन्न्यासकूं मुक्तिके अंगपनो हे तथापि गीताजीके वाक्यमें ज्ञानवारेकूं बहोत जन्मकी अंतमें शरणागति होयवेको लिख्यो हे ओर शरणागतिकूं भक्तिपनो हे तासूं भक्तिविना केवल ज्ञान मुक्तिको साधक नहिं हे ओर यज्ञ चित्तकी शुद्धिको कारण हे सो निष्काम कियो होय तब हि चित्तकी शुद्धि करे हे एसो निष्काम यज्ञ करे तब हि चित्त शुद्ध होयकें ज्ञान प्राप्त होय हे ॥ १५ ॥

अब कलियुगमें सन्न्याससूं कछु फल सिद्ध
नहि होय हे सो कहत हैं.

श्लोकः—अतःकलौ स सन्न्यासः पश्चात्तापाय नान्यथा ।

पाषण्डित्वं भवेच्चापि तस्माज्ज्ञाने न सन्न्यसेत् १६

सुतरां कलिदोषाणां प्रबलत्वादिति स्थितम् ।

टीका—तासूं ज्ञानमार्गीय सन्न्यास कलियुगमें पश्चात्तपके लिये हि होय हे अन्यथा नहिं ओर पाषंडिपनो हू होय हे; तासूं ज्ञानमार्गमें सन्न्यास ग्रहण न करे क्यों जो कलिके दोषनकों अतिशय प्रबल पनो हे. तासूं ज्ञानमार्गमें सन्न्यासको अकर्त्तव्यपनो निश्चित हि हे; इतनें ज्ञानमार्गमें विविदिषा-सन्न्यासमें साधननकी अपेक्षा बहोत रहत हे तासिवाय ज्ञानको उदय न होय ओर सन्न्यास ग्रहण करे तो पश्चात्तागके लिये हि होय हे इतनो हि नहिं परंतु पाषंडिपनो हू होय हे क्यों जो शमदमादिक कछु सिद्ध न भये होय ओर सन्न्यास ग्रहण करे तब भिक्षादिककी शुद्धि होय नहिं तासूं अंतःकरणमें अन्नदोषकी सहायतासूं अंतःकरणकी मलिनता विशेष होयवेसूं कामक्रोधादिक होयकें धर्मसूं पात होय हे ओर विद्वत्सन्न्यासकों तो कलियुगमें संभव हि नहिं होय हे तासूं कलियुगमें सन्न्यासको निषेध करनहारे शास्त्रकारननें हि एसो निषेध कियो हे जो कलियुगमें सन्न्यास नहिं करनो क्यों जो सन्न्यासमें इतनो प्रयत्न हे एसें जानिके

हि अपनी प्रतिष्ठाकी वृद्धिके लिये सन्न्यास ग्रहण करे तो सन्न्यासाश्रमके धर्म निभिसके नहिं इतनें वेषमात्रमें सन्न्यासको पर्यवसान होयवेसूं पाषण्डिपनो होय तासूं ज्ञानमार्गनें सन्न्यास ग्रहण न करे. एसें ज्ञानमार्गमें सन्न्यास ग्रहण करिवेमें बाधक हे तथापि आग्रहको सन्न्यास ग्रहण करे तो कलिके दोषनको अतिशय प्रबलपनो होयवेसूं वाको पात हि होय एसें शास्त्रकारनने निर्णय कियो हे; इतने श्रीगीताजी तथा श्रीभागवत ११ स्कंदमें भगवाननें सन्न्यासग्रहणकीं आज्ञा करी हे तामें ११ स्कंधमें विस्तारसूं विवेचन कियो हे ताकी कर्त्तव्यताके विचारमें इतनो सिद्ध भयो जो कर्ममार्गमें जैमिनिके मतमें परित्यागकी अकर्त्तव्यता हे. ज्ञानमार्गमें चतुर्थाश्रमके पक्षकरिकें कर्त्तव्यपनो हे तो हू कलिकालसूं आश्रमधर्म न निभसके तासूं अकर्त्तव्यता हे ओर भक्तिमार्गमें कर्त्तव्यपनेसूं कह्यो हे तो हू सन्न्यासके स्वरूप तथा धर्मसूं विरोध होयवेसूं श्रवणादिककी सिद्धिकेलिये सन्न्यासमे स्वरूपसूं त्याग करिवेकी अकर्त्तव्यता हे तेसें प्रभूनमें स्नेह सिद्धकरिवेके लिये त्यागकरिवेमें हू सन्न्यासके स्वरूप तथा धर्मसूं विरोध हे तासूं सन्न्यासकी अकर्त्तव्यता हे ओर प्रभूनमें प्रेम भये पीछे तो स्वतः हि त्याग सिद्ध होय हे तासूं सन्न्यासकी अपेक्षा नहिं हे तब प्रेमकी आरंभदशामें परित्याग करनों के नहिं ? ताकों विचार प्रश्नकी रीतिसूं करत हें.

श्लोकः-भक्तिमार्गेऽपि चेद्दोषस्तदा किं कार्यमुच्यते ॥ १७ ॥

अत्रारंभे न नाशः स्यात् दृष्टान्तस्याप्यभावतः ।
स्वास्थ्यहेतोः परित्यागाद् बाधः केनान्य संभवेत् ॥ १८ ॥

टीका-भक्तिमार्गमें हू कलिदोष आयजाय तब कहा करनो ? एसी शंका होय तहां कहत हैं जो भक्तिमार्गमें नाश न होय क्यों जों भक्तिमार्गमें जो प्रवृत्त भयो ताको नाश होय एसो दृष्टांत नहि मिलेहे ओर स्वस्थताके हेतुको गरि-त्याग हे तासूं वाको बाध कोनकरिकें संभवे ? नहिं संभवे; इतनें दोष ज्ञानमार्गमें कह्यो सो हि दोष भक्तिमार्गमें आवे तब कहा करनो ? इसी शंका होय तहां कहत हैं जो भक्तिमार्गमें त्यागके आरंभमें नाश नहिं हे क्यो ज्ञानमार्गमें आरंभ करिवेवारेकूं दुःसंग ओर सहायादिक करिकें नाशको संभव हे ओर भक्तिमार्गमें तो त्यागको आरंभ करिवेवारो अलौकिक-भगवद्भावकरिकें पूर्ण हे तासूं दुःसंगकी संभावना हू नहिं हे ओर दुःसंग जेसो नाशक हे तेसो नाशक दूसरो कोउ नहिं हे तासूं वाको नाश नहिं होय हे. तहां शंका होय जो दुःसंग नहिं होयवेसूं दुःसंगसूं जो नाश होयवेवारो

हे ताकी तो संभावना नहि हे परंतु काल, कर्म ओर स्वभाव-करिकें नाश होय तो कहा करनो ? एसी शंकाकी निवृत्तिके लिये कहत हें जो मर्यादामार्गीय त्यागकरिवेवारे आग्नीध्र ओर भरतादिकनको कालादिककरिकें नाश भयो हे सो जेसें दिखवेमें आयो हे तेसें शुद्धपुष्टिमार्गीयनको नाश भयो होय एसो कबहू सुनिवेमें आवे नहि हे; क्यों जो कोउको नाश भयो नहि हे ओर भक्तिमार्गको त्याग भगवद्धर्म हे सो निमिराजाने श्रीभागवत ११ स्कंधके द्वितीयाध्यायमें (भगवद्धर्म कहो एसो) प्रश्नकयों ताके उत्तरमें कवियोगेश्वरनें कह्यो हे जो " भगवानने आपकी प्राप्तिके लिये उपाय नहि जानिवेवारेनकूं श्रमविना हि आपकी प्राप्ति होय एसे उपाय जो कहे हें ते भगवद्धर्म हे एसें जानो " एसें कहिकें फिर कह्यो हे जो " जिनधर्मनमें रहिकें काहु बिरियां जीव प्रमादयुक्त नहि होय हे. नेत्र मुंदिके दोडतो होय तोहू वाकूं ठोकर न लगे ओर वा गिरे हू नाहिं " यहांसूं आरंभिके " लज्जारहित होयकें भगवद्गुणनके गान करत करत असंग होयकें फिरे " यहां ताईं भगवद्धर्म कह्यो हें. तहां त्यागकोहू बोधन तासूं भगवद्धर्मके आरंभमें हू नाश नहि हे. तहां शंका होय जो भगवद्धर्मके आरंभमें भलें नाश न होय तथापि देहरक्षाके लिये भिक्षादिककी आवश्यकता होयवेसूं फलमें विलंब होय एलो बाध होयगो सो केसें निवृत्त होयगो ।

एसी शंकाको निवृत्तिके लिये कहत हैं जो त्याग करिवेवारेकूं स्वस्थताके कारणरूप चार्योवर्णनमें भिक्षाकोहूं त्याग हे ओर मालाचंदन इत्यादिकनको हू त्याग हे तासूं बाध काहेसूं होय ! नहिं होय; क्यों जो भगवानके विप्रयोगके तापसूं भक्तिमार्गीय त्याग होय हे सो तापकी बाह्य पदार्थसूं निवृत्तिहू नहिं होय हे तासूं काहूसूं हू वाको बाध न होय ॥ १७ ॥ १८ ॥

एसें दृष्ट ओर अदृष्ट उपायसूं वाको नाशक कोउ नहिं हें एसें कहिकें भगवानहू वाको बाध नहिं करिसकतहें सो कहतहें.

श्लोकः—हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे ॥
अन्यथा मातरो बालान् न स्तन्यैः पुपुषुः
क्वचित् ॥ १९ ॥

टीका—यामार्गमें हरि बाध करिवेमें समर्थ नहिं हें तो दूसरो केसेंकरसके ? ओर जो हरि बाधा करें तो माता हू स्तन्यकरिकें बालकनको पोषण न करें; इतनें हरि सर्वदुःख-हर्त्ताहिं सो हू यामार्गमें ईश्वरपनेसूं बाधाकरिवेकूं समर्थ नहिं होय हें क्यों जो जाको जेसो स्वरूप हे ताको तेसो ज्ञान इश्वरकूं हि हे तासूं याभावके नाशमें कारणको अभाव हे एसें हू प्रभु जानत हें ओर आप भक्तनके भावके आधीन हें

सो हू जानत हैं तासूं आपको अशक्तपनो जानिकें बाधकरिवेमें प्रवृत्त हू नहिं होय हैं. जहां भगवानसूं हू बाध न होय तहां ओरसूं तो बाध केसें होय शके ? तहां दृष्टान्त देत हैं जो भगवान् बाधकरे तो माता हू स्तन्यकरिकें बालकनको पोषण न करे अर्थात् स्वधर्मकूं उत्पन्न करिवेवारे तथा वाकीरक्षा-करिवेवारें प्रभुहि जब बाधा करे तब बालकनकूं उत्पन्न करिवेवारी तथा विनकी रक्षाकरिवेवारी माता हू स्तनके दूधसूं पोषण न करे. यासूं एसें सिद्ध भयो जो काहूसूं वाको नाश न होय. ॥ १९ ॥

तहां शंका होय जो काहूसूं वाको नाश तो न होय
परंतु मोहके कार्यमें नियुक्तभईमाया तो
वाकूं मोह करेगी ? एसी शंकाकी
निवृत्तिकेलिये कहतहें.

श्लोकः-ज्ञानिनामपिवाक्येन न भक्तं मोहयिष्यति ।
आत्मप्रदः प्रियश्चापि किमर्थं मोहयिष्यति ।२०।

टीका-ज्ञानीनकूं माया मोह करे हे एसो मार्कंडेय-पुराणमें कह्यो हे तासूं भक्तकूं मोह नहिं करेंगे; क्यों जो प्रभु भक्तनकूं अपने आत्माकूं देयवेवारे ओर प्रिय हू हैं सो काहेके लिये मोह करेंगे ? इतनें मार्कंडेयपुराणमें कह्यो हे जो " ज्ञानीनके चित्तकों हू समर्थ एसी देवी बलसूं खेंचकें मोहमें

डारिदेत हैं " एसो वाक्य हे तासूं भक्तकूं मोह नहिं करेंगें; क्यों जो वावाक्यमें ज्ञानीनके चित्तकूं मोह करिवेकों लिख्यो हे. भक्तनकूं मोह करिवेको लिख्यो नहि हे. ओर भगवान् स्वरूपानंदके देयवेवारे तथा प्रिय हैं सो काहेके लिये मोह करेंगे ? इतनें जो जाकों प्रिय होय सो वाके कार्यमें विलंब होय ताकूं सहन करे तब प्रियपनो हि होय नहि ओर जहां स्वरूपानंद देववेकी इच्छा होय वहां हि ज्ञानीनकूं मोह करिवेवारी मायासूं रक्षा करत हैं, जहां स्वरूपानंद देयवेकी इच्छानहिं हे तहां इच्छा नहि करत हैं. जेसें द्विजपत्नीनको प्रभूनकी पास जायकें विनकी सेवा करेंगे एसी बुद्धिसूं सर्वसामग्रीसंपादनपूर्वक पतिप्रभृति सर्वबन्धूनको त्याग करिकें आगमन भयो हतो तथापि विनकूं स्वरूपानंद देयवेकी इच्छा नहिं होयवेसूं भगवाननें कह्यो जो " यहां मनुष्यकूं अंगसंग प्रीति ओर स्नेहके लिये नहिं हे तासूं मेरेमें मन लगायवेवारे तुमसब थोरे समयमें मोकूं प्राप्त होयगें. " एसो वाक्य कहिकें ज्ञानमार्गजेसो उपदेश दियो. ओर व्रजभक्तनकूं स्वरूपानंद देयवेकी इच्छा विशेष होयवेसूं घरप्रति पाछे जायवेके वचन वेसेंहि कह्ये तथापि विनमें रात्रिघोररूप हे, एसें कहिकें रात्रिमें स्त्रीयनसूं पाछो गयो न जाय एसें, चंद्रमाके किरणसूं रंजित एसो वन तुमने देख्यो एसें कहिकें उद्दीपनविभावकूं बतायके रहिवेको ओर " लोककी इच्छावारी स्त्रीनकूं चाहे

जेसो पति होय तो हू छोडनो नहिं, बाके बंधूनको शुश्रूषण, तथा प्रजाको पोषण करनो. " एसें कहिकें लोकिक इच्छा-वारेनके धर्म बतायकें अपनी इच्छावारीनकूं पृथक् सूचित किये; तासूं हि द्विजपत्नीनकूं मोह भयो सो वे चलिगई ओर व्रजभक्तनकूं मोह न भयो तासूं विननें प्रत्येकवाक्यनको भगवानकूं उत्तर दियो. तेसे हि उद्धवजीके संदेशके प्रश्नमें हू भगवाननें ज्ञानमार्गीयजेसो संदेश पठायो तथापि व्रजभक्तनकूं मोह न भयो. तब उद्धवजीनें श्रीगोपीजननकी श्रीकृष्णके आवेशवारे आत्माकि विकलवता देखी तब अपने जो संदेश-द्वारा उपदेश कह्यो हतो ताकी निष्फलता ओर विप्रयोगके तापकी अति प्रबलता देखिकें विनमें सबनसूं अधिक ओर अनिर्वचनीय उत्कर्ष देख्यो ओर अपनमें हीनताकी स्फूर्ति भई विनके साक्षात् चरणनके स्पर्श करिकें नमन करिनेकी अपनी अयोग्यता जानिकें विनके चरणरेणुको वंदन कियो. तामें हू बहोतरेणूनकूं वंदन करिवेमें अपनो अधिकार नहिं जानिकें एक रेणुकूं हि वंदन कियो हे तासूं जहां स्वरूपानन्द देयवेकी प्रभूनकी इच्छा होय वहां ज्ञानमार्गीयवाक्यनसूं मोह नहिं होय हे. ॥ २० ॥

एसें सन्न्यासनिर्णयको प्रतिपादन करिकें वाको
उपसंहार करत हें.

श्लोकः-तस्मादुक्तप्रकारेण परित्यागो विधीयताम् ।
अन्यथा भ्रश्यते स्वार्थादिति मे निश्चिता मतिः २१
इति कृष्णप्रसादेन वल्लभेन विनश्चितम् ॥
सन्न्यासवरणं भक्तावन्यथा पतिता भवेत् ॥२२॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितः सन्न्यासनिर्णयः
समाप्तः ।

टीका-भक्तिमार्गीय-सन्न्यासको प्रकार एसो हे तासूं प्रभूनके विरहको अनुभवकरिवेके लिये उपर कह्ये प्रकारसूं त्याग करनो. जो एसें नहिं करेगें तो स्वार्थसूं भ्रष्ट होयगें एसी मेरी निश्चित मति हे. एसें श्रीकृष्णके प्रसादकरिकें श्रीवल्लभाचार्यजीनें भक्तिमार्गमें संन्यासको वरण निश्चित कियो हे. वारीति विना दूसरी रीतिसूं सन्न्यास करिवेवारो पतित होय; इतनें सन्न्यासके दूसरे सब प्रकार दोषसहित ओर असंभवित हैं तासूं ये हि प्रकार सन्न्यासको हे जो भगवाननें उद्धवजी प्रति कह्या हे वाहि प्रकारसूं सन्न्यास करनो. ओर जो एसो अधिकार न होय तो हू त्यागकरे तो स्वार्थसूं भ्रष्ट होयजाय एसे निश्चयवारी मेरी बुदि हे, क्यों जो एसो त्याग उद्धवजीने कियो हे सो तृतीयस्कंधके चतुर्थाध्यायमें निरूपित

हे जो भगवानके विरहकरिकें जाको आत्मा आतुरहे एसोमें यहां आयोहूं सो में भगवानके दर्शनको आल्हाद ओर वियोगकी आर्ति करीकें युक्तहूं " एसें विदुरजीप्रति उद्धवजीके वाक्यसूं उपर त्यागको स्वरूप श्रीकृष्णके प्रसादसूं हि जान्यो जाय एसो बतायवेकेलिये मूलमें श्रीकृष्णके प्रसादसूं कहिवेकी श्रीमहाप्रभूननें आज्ञा करीहे; तासूं भक्तिमार्गमें सन्न्यास भगवानको वरणरूप हि हे ओर जो भक्तिविना त्यागकरे तो पतित होय. यापेंसूं इतनो सिद्ध भयोजो ग्रंथके प्रारंभमें परित्यागको विचार कियोजाय हे एसें कह्यो हे ओर समाप्तिमें उक्तप्रकारसूं परित्यागकरिवेको कह्यो हे. तापीछें श्रीकृष्णके प्रसादकरिकें सन्न्यासको निश्चय करिवेको कह्यो हे तासूं एसो सूचित होय हे जो श्रीआचार्यचरणनकूं देहदेशपरित्याग विषयक दोय आज्ञा भगवानकी भई हती ताप्रामाण नहिं करिवेको खेद हतो तहां जब लोकपरित्यागविषयक तीसरी आज्ञा भई तब याकेवाक्यार्थको विचार करतें जाप्रमाण आज्ञा भई याहीप्रकार करिकें श्रीआचार्यजीने कियो तब भगवान् विशेष प्रसन्न होयकें श्रीआचार्यजीके मनमें सन्नयासके स्वरूपकी स्फूर्ति करी वाको हि बोध छेल्ले श्लोकमें हे. ताको

अभिप्राय एसो हे जो पूर्वोक्तप्रकारसूं जो परित्यागको विचार कियो ताकरिकें भगवानकों प्रिय एसो जो में वानें भक्ति-मार्गमें उद्धवकीसीनाई सन्न्यासको अंगीकार निश्चित कियो हे. ओर उद्धवजीकूं " सब छोडिकें मेरेमें मन प्रविष्टकरिकें पृथ्वीमें फिर. " एसी भगवानकी आज्ञा भई हतो. ताप्रमाण आज्ञा न होय ओर सन्नयास ग्रहणकरे तो पतित होय; क्यों जो भक्तिमार्गके ओर सन्न्यासके धर्म परस्पर विरुद्ध होयवेसूं भगवानकी आज्ञासीवाइ ओर अंतकरणमें भगवानके विप्रयोगको भाव न भयो होय तो हू सन्न्यास ग्रहण करे तो भक्तिमार्गसूं च्युत होय. ॥ २१ ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीकृत सन्न्यासनिर्णय।
की गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजी
महाराजविरचित संक्षिप्तभाषा
टीका समाप्त भई ॥

श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोजनवल्लभाय नमः ॥

॥ श्री निरोधलक्षणग्रंथकी व्रजभाषा-टीकाको प्रारंभः ॥

अब निरोधलक्षणमें प्रथम निरोधके स्वरुपको विचार कर्तव्य हे तामें ज्ञानमार्गमें तो वैराग्यसूं, इंद्रियनको निग्रह कियेसूं साधन करिकें ओर यमनियमादिकनसूं जब विज्ञान होय तब निरोधको फल मिले हे. भक्तिमार्गमें यमनियमादि-साधनके अभावसूं निरोधकी सिद्धि केसें होय ? एसी शंकाके समाधानपूर्वक निरोधके स्वरूपसाधनादि ओर निःसाधनरूप अपने मार्गमें निरोधको फल केसें सिद्ध होय ? सो श्रीमहा-प्रभुजी आज्ञा करतहें; तामें श्रीभागवतदशमस्कंधका निरूपण करतीबिरियां " निरोधोऽस्यानुशयनं प्रपञ्चे क्रीडनं हरेः" इतने याप्रपंचमें प्रभुकी जो क्रीडा वाको निरोध कह्यो हे सो निरोध तो लीलासृष्टिमें स्थित जो भक्त उनकूं प्रपंचविस्मरण-पूर्वक सकलेंद्रियनको प्रभुमें निवेश भयो हतो तेसें होय तब होय हे एसें दशमस्कंधमें, भक्तनके चित्तवृत्तिको निरोध हि, भक्तिमार्गीय निरोध कह्यो हे; तामें प्राकट्यदशामें जिनको साक्षात् अंगीकार भयोहे, पुष्टिमार्गीयभावको अंकुर जिनके

हृदयमें वर्द्धमान हे, परमभाग्यवारे ओर व्रजके संबंधवारेनको तो स्वरूपसूंहि प्रभुने निरोध कियो; अब प्रकटितदशा नहिं होयवेसूं आजकाल आपने अंगीकार किये पुष्टीमार्गीय–भक्त, निरोधसाधनके अज्ञानसूं कदाचित् ज्ञानमार्गीयनिरोधमें प्रवृत्त होय, ताकी निवृत्तिके लिये स्वमार्गीयनिरोधमें जाकी अपेक्षा हे एसो जो मूळकारण ताको श्री आचार्यजी निरूपण करत हैं

श्लोकः—यच्च दुखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले।
गोपिकानां च यद्दुःख तद्दुःखं स्यान्ममक्वचित्॥१

टीका—श्री गोकुळमें श्रीयशोदाजीकूं नंदादिकनकूं ओर श्री गोपीजननकूं जो दुःख भयो सो मोकूं कबहू होयगो !!! श्रीगोकुल तो नानाप्रकारके विहारकी इच्छासूं उत्पन्न भयो एसी कृपाकरिकेंहि साक्षात् प्रभूनने पुष्टिमार्गमें अंगीकृत कियो हे तासूं पुष्टिमार्गीगोकाररूप भावांकुर वामें हतो ताभावके स्वभावकरिकें दुःख हू वामें रह्यो हे जादुःखरुप कारणसूं प्रभुको प्राकटय भयो हे. आगें मुखादिक हू भयो हे अब हू एसो निरोध ढुंढिवेवारे स्वमार्गीयनकूं एसो हि दुःख संभावनीय हें जो दुःख निरोधकूं सिद्ध करिकें प्रभुके प्राकटयको साधक हे; तासूं वादुःखकी सर्वदा संभावना करिकें श्रीमहाप्रभुजी स्वमार्गीयनकूं लक्षणावृत्तिसूं सूचना करत हें. दुःख ब्रह्मानंदकूं

तुच्छकरिवेवारो होयवेसूं सर्वोत्कृष्ट हे ओर अतिदुर्लभ होयवेसूं वाकी संभावनामात्र करी हे परंतु प्रार्थना कीनी नहिं तामें हू सर्वदा नहिं किंतु कदाचित् जो होय तो फेर कहा कहेनो ? एसें तर्वथा उत्कंठा हि करनी एसें सूचन कियो हे. श्रीमातृचरण ओर श्रीनंदादिकनकूं पुत्रोत्पत्ति ओर तापीछें विनके लालन, क्रीडन, अवलोकन प्रभृति नानाप्रकारके मनोरथरूप, और श्रीस्वामिनीजीप्रभृतिकूं प्रभु प्रकट होयवेकी आशासूं तातामनोरथरूप, आप प्रकटभये तापीछे हू पूतनादिकनकी क्रूरदृष्टिपतनरूप, क्रीडामें आसक्तिसूं भोजनादिमें विलंबकरिकें भयो एसो दुःख यत्शब्दसूं लेयवेको अभिप्राय हे. एसें बहोत दुःख कह्ये हे सो विस्तारके भयसूं यहां नहिं लिखसके हैं. ॥ १ ॥

एसें इनके दुःखकी संभावना करिकें तापीछें उत्पन्न भये अनिर्वचनीयसुखकी हू संभावना द्वितीयश्लोकसूं करत हैं.

श्लोकः—गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां
व्रजवासिनाम्
यत्सुखं समभूत्तन्मे भगवान् किं विधास्यति ? ।२।

टीका—श्रीगोकुलमें श्रीगोपीजनकूं ओर सबव्रजवासीनकूं जा आछिभांतिसूं सुख भयो सो वासुखको दान प्रभु मोकूं

करेगें ? पूर्वश्लोकमें वर्णित दुःख प्रभुके प्राकट्यमें कारण हे. कारणरूप दुःख पहिलें भये पीछें प्रभु प्रकटे हें तापीछें सब सुखरूप होय हें सो सुख बालभावसूं लेयकें प्रेंखपर्यंकमें आंदोलन, रिंगण, दधिदुग्धादिचौर्यादिकेलि, वत्सगोचारणादि, वेणुगीत, गोवर्द्धनोद्धरणादि सबलीला भक्तमनोरथ पूर्णकरिवेकेलिये होयवेसूं सुखरूप हे तापीछें विप्रयोग भयेपीछें हू प्रभुकी लीलाको स्मरण करिवेसूं तादात्म्य भयेसूं दुःखको भान नहिं रह्यो तासूं सर्वसूं विलक्षण विप्रयोगात्मक सुख. श्रीस्वामिनीजीप्रभृतीनकूं ओर सब व्रजवासीनकूं श्रीगोकुलमें आछीभांति मिल्यो हतो वाहिसुखकी याश्लोकमें आपश्री स्वसंबंधमें संभावना करत हें. याश्लोकमें वर्णित सुख अतिदुर्लभ हें तथापि सर्वसामर्थ्यवान् प्रभूनने आगें जेसें आपतेहिं भक्तनकूं दियो एसें अबहू आपके सामर्थ्यसूं सो सुख देयगें एसें जतायवेके लिये मूलमें भगवत्पदको ग्रहण कियो हे ॥२॥

एसें निरुद्धनके दुःख ओर सुखके अभिलाषकी अपनमें संभावना करिकें जब एसो सुख भये पीछें विप्रयोगजन्य दुःखमें विलक्षण सुख उत्पन्नकरिवेवारो काहूप्रकारको उत्सव होय हे जाकी तृतीयश्लोकमें संभावना करत हें.

श्लोकः—उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा ॥
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित्? ।३।

टीका-उद्धवजीके आगमनसूं वृंदावन ओर श्रीगोकुलमें जेसें महान् उत्सव भयो एसो मेरे मनमें कबहूं होयगो ? जेसें पति विदेश गयो होय सो वहांसूं अपने सेवककूं घर भेजे तब वाकी माताप्रभृतिकूं ओर विशेष करिकें वाकी स्त्रीके मनमें अपने स्वामिके स्मरणसूं उत्पन्नभये–औत्सुक्यविशेषसूं उत्सव होयवेकी लोकमें रीति हे. यहां प्रस्तुतमें हू भगवद्भाववारे ओर प्रभुके संदेश लेयकें आयवेवारे उद्धवजी उत्सवरूप हें विनके आगमनसूं बडो उत्सव भयो. ये भगवदीयको आगमन ओर प्रभुको संदेश यह सब अलौकिक होयवेसूं अनिर्वचनीय उत्सव भयो एसें मूलके महत्शब्दसूं जान्योजाय हे. तामें श्रीवृंदावनमें श्रीस्वामिनीनको उत्सव भयो ओर श्रीगोकुलमें मातृचरणादीनकूं उत्सव भयेको समजलेनो. उत्सव मानसधर्म होयवेसूं मनमें होयवेकी अभिलाषा राखिवेकी आज्ञा मूलश्लोकमें करी हे. भगवदीयकूं प्रभुके संबंधवारे (भक्त) के समागममें साक्षात् प्रभु पधारे एसो उत्साह सर्वप्रकारसूं राखनो चहियें. एसें न मानिवेसूं भगवदीयत्व न रहे एसो सिद्धान्त हे. श्रीगोकुलवासि सब तथा श्रीस्वामिनीजीप्रभृति तो सर्वथा प्रपन्न हतें इनकूं उत्सवरूप उद्धवजीके आगमनसूं प्रथम यह भगवद्वेषधारी कोन हे ? एसे विस्मयसूं उत्कंठारूप उत्सव भयो, तापीछें जब विनकूं भगवदीयपनेसूं जाने तब हमारे घर आये तामें हू परम भक्त हें ओर निरंतर

पास रहिवेवारे हैं एसें जान्यो तब तो हमारे भाग्य जो यह प्रभुके समाचार लेयकें आये ओर प्रभुनें हिं पठाये होयगें एसें न होय तो सेवक स्वामिके चरणकूं न छोडे तासूं प्रभुकी हू हमारी उपर कृपा हे क्यो जो कृपा न होय तो भगवदीयको आगमन न होय. ओर भगवद्भक्त जामें न आवे सो घरहि न बाजे जाघरमें भक्त आवे वामें भक्तके स्नेहसूं प्रभु हू पधारे हें, उद्धवजीकूं जब भगवदीय जाने तब विनको सत्कार करिवेको उत्साह भयो. आधुनिक-निरोधमार्गीयनकूं हू भगवदीयके संगके अभावको दुःख मनमें राखिवेकी श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करत हें. एसें करतें सर्वप्रकारसूं चित्तको निरोध भयो तो प्रभु प्रकट होयकें सुखको हू दानकरेंगें एसो भावको यासूं ज्ञान होय हे ॥ ३ ॥

यहा शंका करे हें जो ज्ञानमार्गमें तो चित्तको जब
निरोध होय तब ध्यानादिकरिकें आत्मसुख
होय हे ओर याभक्तिमार्गमें तो दुःखकरिकें
चित्तको निरोध होय तो हू दुःखहि
रहे हे वामें कोनसो उत्कर्ष हे ?
एसी शंकाको समाधान
अब करत हैं.

श्लोकः-महतां कृपया यावद् भगवान् दययिष्यति ।
तावदानन्दसन्दोहः कीर्त्यमानः सुखाय हि ॥४॥

टीका—बडेनकी कृपाकरिकें जबताईं प्रभु दया करेंगे तबलों आनंदके निधि प्रभु कीर्त्यमान (कीर्तनकरातें) होय तो सुखके लिये हि हैं. भगवदीयके दर्शनमात्रसूं जिनकूं बडो उत्सव होय हे ओर सर्वदा भगवदावेशसूं आपहि उत्सवरूप हे अंतरंग भक्त महान् कह्येजाय हैं उनकी कृपातें प्रभु दया करें हैं तब प्रकट होयकें स्वरूपानंद देय हैं. तब प्रकटित बहोतभाव-वारे भगवदीयके संग जिनको कीर्त्तन कियोजाय हे एसे प्रभु साक्षात् उनके अंतःकरणमें प्रकट होयकें सकल इंद्रियनकी आसक्ति आपके स्वरूपमें करायकें सुखको दान करत हैं. एसें कीर्त्तनकरिवेसूं हू आनंद देत हैं तासूं गुनगानहि करनो. एसें याश्लोकसूं जतायो हे. याश्लोकमें प्रभुकी दया होयवेमें कारणपनेसूं बडेनकी कृपा कही हे. महत्शब्दसूं श्रीस्वामिनीजी कह्ये हे एसें समजनो. अथवा एसे भावात्मक स्वरूप आप (श्री आचार्यजी) को सूचन करे हे तासूं श्रीमहाप्रभुजीकी कृपा भयेसूं हि प्रभु आनंदको दान करे अन्यथा न करे एसो हू सूचन महत्पदसूं होय हे तासूं कीर्त्तनद्वारा हू प्रभूनके गुण ताप्रकारके आनंदकूं देवेवारे हैं तासूं गुणगानहि करनो. ॥४॥

प्रभुके गुणको गान तो सब कोउ करत हे तासूं सबनकूं सुख होय हे तो फिर निरोधवारेनकूं कहा विशेष हे ? एसी शंकाको समाधान अबके श्लोकसूं करत हैं.

श्लोकः—महतां कृपया यद्वत् कीर्त्तनं सुखदं सदा ।
न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत् ॥५॥

टीका—बडेनकी कृपाद्वारा कीर्त्तन जेसें सदा सुखकूं देवेवारो हे एसें संसारासक्तलौकिको कीर्त्तन सुख नहिं हे जेसें स्निग्धभोजन शरीरमें सकलेन्द्रियनको पोषण करे हे एसो रूक्षसूं नहिं होय हे. प्रथमश्लोकमें कह्यो जो महान्, उनकी अपनो भाव समर्पवेवारी कृपाकरिकें निरोधमार्गीयन, परस्पर गुणगानमें भाव वोहोत वढ़िवेसूं सकलइंद्रियनको स्वरूपमें निरोध भयेसूं प्रपंचकी विस्मृतिपूर्वक भगवदानंदमें मग्न होयजाय हें. लौकिकप्रमाणधर्ममें निष्टावारे भक्त ओर ज्ञानीनकूं उपर कह्यो निरोधभार्गीयनके भावको अभाव होयवेसूं कीर्त्तनप्रभृति सुख देवेवारो नहिं होय हे. लौकिक ओर अलौकिकमें जितनो तारतम्य हे इतनो निरोधमार्गीय ओर ज्ञानिप्रभृतिमें तारतम्य हे तासूं निरूद्धनके कीर्त्तनमें बहोत विशेष हे ॥ ५ ॥

यहां शंका होय जो कीर्त्तन सुखदेयवेवारो हे तो हू दुःख तो सदा मिटत नहिं तब गुणगानमें कहा उत्कर्ष हे ? यासूं तो ज्ञानीनकूं सकलइंद्रियप्रभृतिको आत्मामें लयभयेसूं अत्यंत दुःखाभावरूप सुख होय सो उत्कर्ष प्रमाणसिद्ध दीखे हे. याको समाधान अब करत हें.

श्लोकः—गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविंदस्य प्रजायते ।
यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुताऽन्यतः ॥६॥

टीका—गोविंदके गुणगानमें निरुद्धभक्तनकूं जेसो सुख होय हे एसो आत्मानंदमें शुकादीनकूंभी नहिं होय हे तो भक्ति-रहितकूं तो कहांते होय ? यद्यपि शुकदेवजीने ये लीला गाई हे ओर भक्तिरससूं पूर्ण हे तो हू यह आनंद उनकूं प्राप्त न भयो एसें कहिवेके लिये मूलश्लोकमें श्रीशुकदेवजीको नाम ग्रहण कीयो हें तासूं यह जान्योजाय हे जो यह आनंद प्रभुकी कृपाकरिकेंहि प्राप्त होय हे ओरतरहसूं नहि होय हे तामें दुःखहि साधक हे तासूं दुःखहि परमपुरुषार्थरूप हे ओर नहि हे. जहां आत्मसुखकी अपेक्षा यह दुःख सर्वोत्कृष्ट हे तब यह दुःखसाध्य—आनंदकी उत्कृष्टतामें तो कहा कहेनो ! एसें कैमुतिकन्यायसूं आनंदको सर्वोत्कृष्टपनो सिद्ध होय हे. अथवा शुकादिकनकूं गोविंदके गुणगानमें जेसी सुखप्राप्ति होय हें तेसी आत्मामेंहू नहिं होय हे तो ओरसूं तो कहांसूं होय ? तासूं शुकदेवजीने कह्यो हे जो " मैं यद्यपि निर्गुनमें निष्ठावारोहूं तथापि उत्तमश्लोक (भगवान्)की लीलाकरिकें मेरो चित्त गृहीत भयो हे तासूं श्रीभागवतरूप बडो आख्यान पढ्योहूं. " यापेसूं एसें सूचित भयो जो आत्मसुखसूंहू भगवद्गुणगानमें अधिक आनंद हे. ॥ ६ ॥

दुःख परमपुरुषार्थरूप होयवेसूं सर्वदा प्रभु निरोध-

मार्गीयनकूं दुःखहि स्थिर राखे हे वा कोइ समय सुखको दान करें हें ? पसी शंकाको समाधान अब आगेके श्लोकसों करत हें.

श्लोकः—क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।
तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥७॥

टीका—जब अपने शरणागतनकूं अत्यंत क्लेशयुक्त देखिकें प्रभु कृपायुक्त होय तब सदा आनंदरूप प्रभु हृदयमें विराजवेवारे आपको स्वरूप बहार प्रकटकरें हें; इतनें साक्षात् स्वरूपको संबंध होयवेकी अभिलाषासूं उत्पन्नभई बहोत आर्त्ति (विरह) करिकें क्षणक्षणमें जागरणादि अवस्थाके भेदकरिकें क्लेशकूं अनुभविवेवारे अपने जननकूं देखिकें प्रभु कृपा करत हें तब भक्तनकी ताताइंद्रियनमें सर्वांशकरिकें आनंदकूं पोषण करिवेके लिये भावात्मकताकरिकें सर्वांशपूर्ण सदानंदरूप प्रभुको स्वरूप भक्तके हृदयमें विराजे हें. सो प्रभु बहार प्रकट करत हें सो बहार आनंददानदेयवेकेलिये हृदयतें बहार पधारे हें एसें यह आनंद एककृपासूंहि सिद्ध होयवेवारो हे तासूं अत्यंत दुर्लभ हे. ॥ ७ ॥

श्लोकः—सर्वानंदमयस्यापि कृपानन्दः सुदुर्लभः ॥
हृद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान् ॥८॥

टीका—सर्वानंदमयको कृपानंद अत्यंत दुर्लभ हे हृदयमें विराजिवेवारे प्रभु अपने गुणको श्रवणकरिकें पूर्ण होयकें अपने जननकूं स्वानंदनिमग्न करत हैं. मुक्तिप्रभृतिमें मिलवेवारको आनंद हू याकोहि अंश हे परंतु वह साधनकरिकें लभ्य हे ओर यह आनंद तो एक कृपाकरिकें प्राप्य होयवेसूं प्रभु दान करें तब हि मिले तासूं मूलश्लोकमें सुदुर्लभ कह्यो हे अथवा दुःखकरिकें जाको लाभ होय सो दुर्लभ कह्योजाय इतनें ससाधननकूं नहि मिलवेवारो किंतु कृपावारेनकूं हि सुलभ हे एसो अर्थ हू होय हे ओर एसे प्रभुके संबंधकी अभिलाषाजनित-दुःखसूं भये-तापसूं जो. भक्त परस्पर गुनगान करे ताश्रवणकरिकें हृदयमें विराजवेवारे प्रभु पूर्णकृपाकरिकें बहार प्रकट होयकें अपनेनकूं वारसके समुद्रके तरंगमें तरण करावत हैं. जेसेंजेस जाजाइंद्रियनमें दुःख भयो होय तातांइंद्रियनमें तेसेंतेसें आनंदपूर्णता करत हैं ॥ ८ ॥

अब ये सब बात कहिवेको प्रयोजन कहत हैं,

श्लोकः—अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः ।
निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते ॥९॥

टीका—मैं निरुद्धनके मार्गमें अंगीकृत हूं ओर सकलेंद्रियनके रोधकरिकें निरोधकी पदवी इतने फलदानकूं प्राप्तभयो हूं तासूं आधुनिक-निरोधमार्गीयनकूं निरोधसिद्धहोयवेकेलिये तेरे अर्थ निरोधको वर्णन करुं हूं; इतनें साक्षात् प्रभूननें मेरो

निरोधमार्गमें अंगीकार कियो हें तापिछें रोधकरिकें गुणगान-द्वारा सकलेंद्रियनके निरोधके फलकूं प्राप्त भयो हूं तासूं विनप्रभूनकी आज्ञासूं आधुनिकनकूं निरोधहोयवेकेलिवे यह तोकूं कहूहूं तासूं मेरे कह्येप्रमाणकरिवेसूं सर्वथासिद्धिहोयगी एसें श्रीमहाप्रभुजी याश्लोकसूं सूचन करतहें. कोउ भाग्यवानको उद्देश करिकें आज्ञाकरेहें जो तेरे अर्थ वर्णन करुंहूं, क्यों जो साक्षात् प्रभूननें मेरो निरोधमें अंगीकारकियेसंहि में यहवर्णन करिसकूंहूं ओरको यह वर्णन करिवेको सामर्थ्य नहिंहे एसोहू सूचन होय हे.

एसें निरोधके स्वरूपको वर्णन करिकें सर्वप्रकारसूं कर्त्तव्यताको निरूपण करत हें.

श्लोकः—तस्मात् सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः ।
सदानन्दपरैर्गेया: सच्चिदानन्दता ततः ॥१०॥

टीका—तासूं सर्वको परित्यागकरिकें सदानंदश्रीकृष्णमें निष्ठावारे सत्पुरुषनके संग निरंतर गुनगान करनों. एस करिवेसूं सच्चिदानंदपनो होय हे; इतनें सर्वसूं उत्कृष्टकृपानंद मिल्यो हे तासूं ओर सबबातको त्यागकरिकें (इतनेवासना-युक्तसब—अहंताममताको त्याग करिकें) उद्भटभावसूं निरंतर गुणगान करनो यह हि सेवकको सहजधर्म हे तासूं भगवदानन्द-के अभिलाषीनकूं यह हि निरंतर करनों. अब गुणगान करिवेकी आज्ञाकरी परंतु गुण, लीलाके भेदकरिकें अनेक

प्रकारके होयवेसूं केसे गुणको गान करिवेको हे ? एसी शंकाकी निवृत्तिके लिये कहत हें जो साक्षात् रसात्मक जो श्री पुरुषोत्तम तामें पर एसे रसात्मकरासादिलीलारूप-गुण हि गानकरिवेयोग्य हें. रसात्मक-प्रभुमें निष्ठावारे-भगवदीयनके हि संग गुनगान करनें एसो हूयापदको अर्थ होयसके हे. तासूं भगवानमें निष्टा न होय एसेंनके संग भगवद्वार्त्ता हू नहिंकरिवेको सूचन होय हे. एसें दुःसंगीनके संग वार्त्तादिक करिवेसूं हानि हि होय हे. एक क्षण हू अन्यथाभाव नहिं होयवेके लिये सर्वदा पद धर्यो हे; तासूं एकक्षणहूं भगवद्गुणगान नहिं छोडनो. एसें करिवेसूं सच्चिदानंदता होय; इतनें अंतःकरणमें साक्षात्पुरुषोत्तमाविर्भावकी योग्यता होय जहां ज्ञानमार्गीय-परंफल हू गुणगानको आनुषंगिक फल हे वहां परमफलकी तो कया बात करनी ? ॥११॥

यहां शंका करे हें जो निरुद्धनकूं हि सर्वपरित्यागपूर्वक गुणगाग करिवेकी आज्ञा करी परंतु साधनमें निष्ठाधारेनकूं न करी ताको अबके श्लोकसूं करत हें.

श्लोकः—हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्न भवसागरे।
ये निरुद्धास्तएवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम् ॥११॥

टीका—प्रभूनने जिनकों छोडदिये हे वे संसारसागरमें मग्न भये हें और जिनकों निरोध (पुष्टि) मार्गमें अंगीकृत किये हें

वे हि निरंतर (प्रभुके आनंदकूं पायकें) हर्षकूं प्राप्तहोय हैं. प्रभु सर्वके दुःखकों हरे हैं तासूं इनको नाम हरि हे इनहरिननें (स्वानंददान देयँकें दुःख मिटायवेकी इच्छा नहिं होयवेसूं) त्याग किये वे सब भवसागरमें डूबे; इतने बहोत अन्यसाधनमें प्रवृत्त रह्ये तो हू यह आनंद प्राप्त नहिंभयेसूं भवसागरमें डूबगये. और स्वानंदको दान देयवेकी इच्छासूं जिनजीवनको पुष्टिमार्गमें अंगीकार कियो हे और जिनकों स्वरूपनिष्ठामें भावरूपहि एक साधन हे एसे अपने जन प्रभुकृपासूं हि हर्षकूं प्राप्तहोय हैं; इतने बहार ओर भीतर रसमें पूर्ण होय आनंदसमुद्रमें मग्न रहे हे. सो हू अमुकक्षणमें नहिं परंतु रात्रिदिनमें क्षणमात्र हू आनंदविच्छेद नहिं होय हे; तासूं यह सिद्ध होय हे जो निरोधमार्गीयनकूं हि यह आनंद होय हे साधनमें निष्ठा वारेनकूं नहिं होय हे ॥११॥

अब कहे हैं जो निरोधमार्गीयनकूंहु पूर्व रह्यो संसार विद्यमान होयवेसूं ताता-विषयनमें आशक्त-ईंद्रियनकूं विषयको विस्मरण होनो अशक्यजेसो दीखे हे, जब विषयविस्मरण न भयो तब तो गुनगानमें हू प्रवृत्ति अशक्य होय हैं ऐसी शंकाके समाधानपूर्वक कहत हैं.

श्लोकः—संसारावेशदुष्टानामिंद्रियाणां हिताय वै ।
कृष्णस्य सर्ववस्तूनिभूम्न ईशस्य योजयेत् ॥१२॥

टीप-संसारके आवेशसूं दुष्टमये-इंद्रियनके हितके लिये

सर्व (इंद्रियनसहित ऐहिक, पारलौकिक) वस्तु सुखरूप ओर सर्वके नियंता एसे श्रीकृष्णको संबंध करायकें विनमें लगावे निरोधको सुख देयवेकी इच्छासूं जिनको पुष्टिमार्गमें अंगिकार भयो हे एसे जीवनकूं अन्यसाधनमें प्रवृत्ति होय नहिं; क्यों जो अंगीकारके स्वभावसूं हि जेसो स्वरूपमें स्नेह होय एसो विषयादिकनमें न होय तो हू संबंधदोषको निवारण करिवेकेलिये आप श्री (श्रीमहाप्रभुजी) आज्ञा करे हैं जो संसारावेश इतने विषयभोगादिकनमें अहंताममतात्मक आवेश ताकरिकें दुष्टभये ओर अहंताममतासूं उत्पन्नभये-बंधनके दुःखके अज्ञानसूं वाकी निवृत्तिकरिवेमें विमुखतावारी-इंद्रियनके हितार्थ इनसबनकूं संसारके अन्यधर्ममेंतें छुडायकें श्रीकृष्णमें हि लगावें. ओर वहहि इन्द्रियनकी सार्थकता हे. इन्द्रियनकी (प्रभुमें विनियोग होय तब हि) कृतार्थता होयवेको श्रीभागवतमें 'अक्षण्वतां फलमिदं' इत्यादिश्लोकनसूं कह्यो हे, एसें इन्द्रियादिकनकूं संसारधर्मतें छुडवायकें प्रभुमें योजवेकी आधुनिकनकूं शिक्षा हू याश्लोकसूं करी हे, एसें प्रभुमें विनियोग भयेपीछें जहांतांई प्रभुको साक्षात्कार न होय तहांतांई गुणगानमें हि आसक्त रहें एसें करत करत जब विनमेंहि आसक्त होय तब भगवदावेश होय ओररीतिसूं न होय. ॥१२॥

एसें सबपदार्थनको प्रभूनमें विनियोग कियेसूं हू

पूर्वके संसाराध्याससूं विषयनमें कछुक अहंताममता-
रूप संसार तो रहे हि और वाविषयको त्याग
कियेसूं कछुक मनमेंहु तज्जनित क्लेश
रहे तो गुनगानमें सुखहि होयवेको
केसें कह्यो है ? एसी शंका
होय तहां कहत हैं.

श्लोकः—गुणेष्वाविष्टचित्तानां सर्वदा मुरवैरिणः ।
संसारविरहक्लेशौ न स्यातां हरिवत् सुखम् ।१३।

टीका- निरंतर मुरवैरि (प्रभु) के गुनगानमें आविष्टाचित्त वारेनकूं संसार और विरहको क्लेश न होय किंतु हरिकी-नाँई सुख होय हे; इतनें आसक्तिकरिकें गुणगान करे तब वामें चित्त आविष्ट होयजाय तब उनकूं पूर्वोक्तसंसारत्याग ओर तासूं भये क्लेश नहिं होय हे; क्यों जो विनकूं तो प्रपंचके तिरोभावपूर्वक गुणगानमें चित्तको आवेश होय हे तब विषयादिकके अध्यासकी संभावना हू नहिं होयसके हे तो वाके त्यागसूं भयो क्लेश तो कहांते संभवे ? यह सब बात, वेणुगीतके श्रीसुबोधिनीजीमें हे " जागृत ओर स्वप्नावस्थामें हू श्रीप्रभुजीकी क्रीडाकों देखते हैं " एसें विवरणमें आपश्रीने वर्णन कियो हे तहां हे. यहां शंका करे हे जो आसक्तिजन्य सुख हू विषयजन्य-सुखकी तुल्य हि होयगो एसी शंकाको निराश करे हैं जो विषयसुख तो भोगमें आसक्तिबढायवेवारो होयवेसूं वह संसारजनक सुख हे और प्रभुमें आसक्ति तो

जेसें प्रभु सकलके दुःख दूरीकरिवेवारे हैं, नित्य. लौकिक-संसार-निवर्त्तक हैं तेसें वामें आसक्तिजन्य-सुख हू संसार-निवर्त्तक हे तासूं पूर्वोक्त संसारासक्ति ओर भगवदासक्तिके सुखमें बहोत वैलक्षण्य होयवेसूं तुल्यताकी संभावना हू नहिं होयसकत हे; तासूं हरिवत् सुखम्' एसें सुखमें हरिको दृष्टांत दियो हे ॥ १३ ॥

एसें सबनकों विषयवासनारहित भगवदासक्ति जब दृढ होय तब जो होय सो अब कहत हैं.

श्लोकः—तदा भवेत् दयालुत्वमन्यथा क्रूरता मता ।
बाधशङ्काऽपि नास्त्यत्र तद्ध्यासोऽपि सिद्ध्यति ।१४।

टीका—(जब गुणगान सिद्ध होय) तब प्रभुकी दया होय एसें न होय तो क्रूरता मानिजाय. यामें बाधकी शंका हू नहिं हे एसें अत्यंत विरहजतापरूप आसक्तिकरिकें सकल इंद्रियें प्रपंचके अध्यासरहित होय. जब पूर्ण निरोध स्वरूपात्मक सिद्ध होय तब प्रभुको दयालुपनो सिद्ध होय ओर प्रचुरतापात्मक भावकी आसक्ति होय तब प्रभु नारदजीकीसीनाईं आसक्ति-करिकें तापमें प्रतिबंधक होय तब तो प्रभुकी क्रूरता मानिजाय. यहां क्रूरतापदको दूसरो यह अभिप्राय हे जो साक्षात् अपनो करिकें जाको अंगीकार कियो हे एसो पुरुष प्रभूकूं आछो लगे एसो स्वधर्मरूप कृत्य जबलांई न करे तबतांई प्रभूकोहू क्रोध वा जीवपें रहेहें एसो. 'क्रूरता' यहपदसूं जान्योजाय

हे. अब शंकाकरे हैं जो सर्वत्यागकरिकें गुणगानमें प्रवृत्ति करे तब तो कालकर्मादिकको बाध आवे ? याके समाधानमें कहत हैं जो गुणगानमें बाधकी शंका हू नहिं होय हे तो बाध तो कहांते होय. सकलईंद्रियनमें प्रभुकी अविशिष्टिपनेसूं स्थिति होयवेसूं कोनसूं बाध होयसके? स्वयं प्रभु हू बाध न करसके तो ओरकी तो कहा बात ? यह सबबात सन्न्यास-निर्णयग्रंथमें अत्रारंभे यहांसूं लयेकें 'हरिरत्रनशक्नोति ' यहां-पर्यंतमें कही हे. यहां अत्र' (यहां) पदसूं ज्ञानमार्गमें बहोत विघ्न होयवेको सूचन होय हे. यहां शंका करहें जो स्वरूपकूं मिलवेके अभिलाषको विद्यमानपनो हे तासूं प्रभूके संग भेदज्ञान तो रहेहिहे. सो ताके (देहादिकके) अभिमानसूं होयहे तब सर्व बाधहिभयो एसी शंका होय—'तहां कहत हैं जो ज्ञानमें जेसें 'सोऽहं' एसी स्फूर्ति होय तेसी अपने (देहादि) नमें प्रभूको हि अध्यासरूपपनेसों भान सिद्धहोय हे परंतु अपनो भिन्नत्व नहिं स्फुरे हे. जेसें संसारमें रह्येनकूं ताको अध्यास होय एसो या अवस्थामें साक्षात् पुरुषोत्तमको अध्यास होय हे. पूर्वस्वभाव हि पलट जाय हे एसो सिद्धयति' पदसु जान्यो-जाय हे. यह बात श्रीभागवतमें ''तन्मनस्कास्तदालापाः'' यहश्लोकके विवरणमें सविस्तरहे तासुं विशेषजिज्ञासूकूं वापेसुं जानलेनों. ॥१४॥

यहां शंका करे हे जो वैराग्य नहिं होयवेसूं पूर्वोक्त

प्राकृत-विषयको अध्यास केसें निवृत्त होय? याको समाधान करत हें.

श्लोकः—भगवद्धर्मसामर्थ्यात् विरागो विषये स्थिरः।
गुणैर्हरेः सुखस्पर्शान्न दुखं भाति कर्हिचित् ॥१५॥

टीका—भगवद्धर्म वलसो विषयमें दृढ वैराग्य होय हे प्रभुके गुणकरिकें सुखरूप-स्पर्शसों दुःखको कदाचिदपि भान नहिं होय हे सकलऐश्वर्यादिकगुणयुक्त—प्रभुके धर्म गुणगान-द्वारा अंतःकरणमें प्रवेश करे हें तिनके सामर्थ्यसों प्राकृत-विषयमें ओर प्राकृतपनेसूं प्रभुमें हू एसें धर्मविशिष्ट-पुरुषकूं विराग रह्योहि हे; इतने विषयपनेसूं तो सर्वत्र वैराग्यहि हे परंतु तिनकूं पराकाष्ठापन्न अलौकिकानंदरूप साक्षात् प्रभुमें निरूपधि स्नेहकरिकें केवल तदीयपनेकी हि बुद्धि होय हे सो रासपंचाध्यायीमें व्रजभक्तनने प्रभूनप्रति कह्यो हे जो "आप हमकूं घर जायवेकी आज्ञा करत हें सो कछु लौकिक—विषया-दिककी इच्छासूं हम आये हें एसी संभावना करिकें करत हें परंतु हम तो सर्वविषयनकूं छोडिकें आपके चरणमूलकी शरण आये हें" इत्यादिक निरूपणसूं जान्योजाय हे. तासूं हि प्रभुहू आप कृपा करिकें प्रथम कह्यो एसो आनंद अनुभवावे हें. यहां शंका करे हें जो प्रभु आनंदको अनुभव करावे हे. तब दुःख केसें रहे हें? याके समाधानमें कहत हें जो प्रभुके गुणगान (रूप—साधन) सूं सुखको स्पर्श होयवेसूं पूर्ण भये एसे

उन (निर धमार्गीयन) कूं सर्वदा तादात्म्य (अेकता) सूं दुःखस्वरूपको भान हि न होय हे तो दुःखकी संभावना तो केसें होयसके ? ओर जो तापरूपता दीखवेमें आवे हे ताकूं सुखरूपता होयवेसूं सुखरूप हि हे ॥१५॥

अब उपसंहार करत हें.

श्लोकः—एवं ज्ञात्वा ज्ञानमार्गादुत्कर्षो गुणवर्णने ।
अमत्सरैरलुब्धैश्च वर्णनीयाः सदा गुणाः ॥१६॥

टीका—एसें ज्ञानमार्गतें गुणगानमें उत्कर्ष जानिकें मत्सर ओर लोभरहित होयकें निरंतर गुणको हि वर्णन करनो. साक्षात् भगवदानंदको सर्व इन्द्रियनसूं स्वाद लियोजाय हे ओर ताके साधनरूप गुणगानको हू सुखरूपपनो होयवेसूं कष्टसाध्य—ज्ञान-मार्गीय—साधन ओर अक्षरपर्यवसायि ज्ञानके फलसूं ज्ञानमार्गसूं गुणगानको बहोत उत्कर्ष जानिकें निरोधमार्गीय भगवद्भावके अंगीकारसूं लेयकें गुणकोहि वर्णन करे ओर कछु साधन न करे. गुणगान करतें करतें दृढासक्ति होय तब तो आपहितें गुणगान होय हे परंतु आजकाल स्वतःप्रवृत्ति न होयवेसूं गुणगान करिवेको विधि कियो जाय हे. तामें प्रतिबंधक-दोषद्वयको निवारण करिवेकी आज्ञा करतहें जो परको उत्कर्ष सहन न होय सके ताकूं मात्सर्य कहे हे सो मात्सर्य ओर लोभ इनकूं छोडिकें गुणगान करनो. सो काहेसूं छोडने ? जाकी

प्रतिबंधकताको निरूपण करत हैं जो भगवद्भक्तमें मात्सर्य होय तो वामें सौहार्द (मैत्री) न होय तब प्रभुको गुणगानहू न होयसके तासूं मात्सर्यको त्याग करनो ओर लोभमें तो अर्थसंचयकोहि ज्ञान रहे तो भगवदावेश कहांतें होय ? भगवदावेश न होय इतनोहि नहिं किंतु भगवद्भक्तकूं तो तासूं सर्वस्वकी हानि होय तासूं ताको त्याग करनो ॥ १६ ॥

यहां कहेहे जो सिद्धांत तो यह हे जो प्रभुके मुख-
दर्शनादिकरिवेसूं भावकी वृद्धि होय हे तापेंसूं
स्वरूपसेवा करिवेको निश्चय होयहे ओर
प्रकृतमें तो मुख्यपनेसूं गुणगानहि कह्यो-
जाय हे सो कैसें ? एसी शंका-
होय तहां कहतहें.

श्लोकः—हरिमूर्तिः सदा ध्येया संकल्पादपि तत्र हि ।
दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा ॥१७॥
श्रवणं कीर्त्तनं स्पष्टं पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः ।

टीका—संकल्पसों हू प्रभुके स्वरूपको सदा ध्यान करनो एसें दर्शन ओर स्पर्शन स्पष्ट हे तेसें कृति ओर गति सदा करनी. यहां एसो दीखे हे जो प्रभु उद्धार के लिये साधन-मर्यादासूं सबनको अंगीकार करे हैं उनकूं मानसी सेवा फलरूप हे ताके साधनरूप मार्गमें निष्ठासुक्त सेवा हे सो करनेकी आवश्यक हे ओर जिनको पुष्टिमार्गमें निःसाधनपनेसूं अंगी-

कार भयो हे तिनकों तो अंगीकारतेंहि प्रभुमें अत्यंत स्नेहभाव होयवेसूं स्वरूपको अभिलाष होय हे ताकरिकें प्रभुके संग संलापादिरूप भावना होय हे सो भावना मनके धर्मरूप हे तासूं ता करत करत मनहि भगवत्पर होयजाय तब मानसी सेवा सिद्धहोय हे उनकूं अब सेवाको प्रयोजकपनो नहिं होयवेसूं ताकी दृढताके लिये गुनगान मुख्य हे तासूं गुनगान करिवेकी आगें आज्ञा करी हे; तासूं हि भगवद्वरणपीछें हि जिनको बहोत भाव वढ्यो हे एसें कुमारिका पूजादि सब छोडिकें गुनगान करनलगे. यह सविस्तर बात "भूयान्नंदसुतः पतिः" या श्लोकके श्रीसुबोधिनीजीमें कही हे. साधनमार्गमें शरण आये भक्तनहू साधनरूप सेवा करे, तापीछें स्नेह होय, स्नेहानंतर ओर भाव उत्पन्न होय, तब गुणगानद्वारा ताभावकी दृढताके लिये त्याग करे. एसेकूंहू गृहस्थिति भावनाशकहे तासूं ताको त्यागकरिकें प्रभूमेंहि मन राखिकें भावकी वृद्धिको यत्न करे एसें भक्तिवर्द्धिनीमें 'तादृशस्यापि' यहांतेंलयकें 'त्यागं कृत्वा' पर्यंत श्लोकमें श्रीमहाप्रभुजीने आज्ञा करी हे. ओर पूर्व कही साधनरूपसेवा ताकियेसूं स्नेहभाव होय तासूं विरहतापरूप दुःख होय सोविरहके दुःखकी निवृत्ति गुनगानतें हि होय तासों गुणगानकूं मुख्य कह्यो हे. अब कहत हें जो ताप्रकार पुष्टिमार्गमें अंगीकार भयो हे ताके स्वभावसूंहि उत्पन्न भये भावांकुर, ताकरिकें उत्पन्न भये नानाप्रकारके मनोरथ-

करिकें प्रभूके स्वरूपको ध्यान करनो सो स्वरूपहि भावकरायवेवारो हे तासूं नानाप्रकारके मनोरथजनित तापकी निवृत्तिके अर्थ ओर भाव के दाढर्थार्थ गुणगानहि करनें. यहां शंका करे हे जो अपने मार्गमें भूके स्वरूपको ध्यान करनो ओर ज्ञानमार्गमें हू ध्यान करनो तो अपने मार्गमें ध्यान होय तामें कहा विशेष ? तहां कहत हैं जो पूर्वकह्येप्रकारसूं नानामनोरथकरिकें स्वरूपमें भावना करनी एसें करत भावात्मक प्रभू बाहिभावनामें प्रकट होयकें दर्शन देय हैं; स्पर्श करावे हैं, सो सबनको भक्तकों अनुभव होय हे तेसें सब क्रिया, ओर प्रभूकी निकट गमन, तेसें प्रभूके शब्दको श्रवण, कीर्त्तन, प्रभूकी संग संलाप इत्यादि सबनको अनुभव भक्तिमार्गीय भावनामें हि होय हे ज्ञानमार्गमें काहूप्रकारको अनुभव नहिं होय हे. ओर गानमें तो संकल्पमात्रसूं स्पष्ट अनुभव होय हे एसें अपि शब्दसूं सूचित होय हे. एसें भावनामें प्रकट होयकें सब दुःख मिटावे हे एसें 'हरिमूर्त्ति' यह पदसूं सूचित होय हे. यहां शंका करे हे जो भगवदंगीकारपूर्वक कृपा होय तब यह सब बने एसें " कृपायुक्त जब होय " यहश्लोकमें कह्यो परंतु ताप्रभूकी कृपा तो जब महत्पुरुषनकी कृपा होय तब होय सो "बडेनकी कृपासूं जब प्रभु कपा करें' याश्लोकमें कह्यो हे; तासूं बडेनकी कृपा संपादन किये बिना प्रभुकी प्राप्ति केसें होय? याको खुलासा करत हैं जो पूर्व कह्ये भक्त

तो पराकाष्टापन्न (श्रीपुरुषोत्तम) के रसके भोक्ता ओर मात्स-र्यादिरहित हैं प्रभुके कृपापात्रमें अत्यंत स्नेहवारे होय हैं तासूं उनकूं श्रीकृष्ण जाकूं प्रिय हे अथवा फल देवेमें तत्पर एसे श्रीकृष्णकूं जो प्रिय हे एसे भक्तमें पुत्रतुल्य प्रीति होय हे तासूं वे कृपाकरिकें भावको दान करत हैं. ओर जब विनने भावकों दान कियो तब विनकों दानगुरुपनो सिद्ध भयो इतनें जाकूं भाव दियो ताकूं पुत्रपनो सिद्ध भयो तासूं पुत्ररूपपनो कह्या हे—ओर अपने मार्गमें तो भाव देवेवारे श्रीगोपीजननहि हैं तासूं इनको गुरुपनो तो सन्न्यासनिर्णयग्रंथमे 'कौंडिन्यों गोपिकाः प्रोक्ताः' याश्लोकमें स्फुट कह्यो हे. ओर जेसें पुत्रकूं काहूप्रकारको दुःख देखिकें ताके उपर प्रेम होयवेसूं ताकी निवृत्तिको उपचार करे हे तेसें यहां हूं एसी आर्त्ति देखिकें वात्सल्यसूं ताआर्त्तिकी निवृत्तिपूर्वक भावको दान करत हैं. तेसें पुत्रके विषे नानाप्रकारके ताके अपराध होय तो हू वाको विचार नहिं करतें वात्सल्य हि राखे हे तेसें तादृशभक्तनमें हू प्रीति हि राखे हैं सो उनकी प्रीति हू भावात्मिकाहि हे एसें तादृशभक्तनकों भगवदीयके विषे पुत्रभावहे तेसें पुत्रनकूंहू भगवदीयपितामाताके विषे पितृमातृभावराखनो एसो यहां

सूचित होयहे ओर यहां गूढ अभिप्राय अनुमानसूं जान्योजाय हे. श्रीकृष्णसूं प्रिय तो बहोत हि हे परंतु 'स्फुरत्कृष्णप्रेमामृत' यह श्लोकमें कह्योआनंदरसरूप श्रीकृष्णको प्रियपनो तो जेसो श्रीमहाप्रभुजीके विषे विलासपामतहे ओरके विषे नहिं हे ता-प्रीतिको हेतुरूप श्रीस्वामिनीजीको प्रियपनोहु श्रीमहाप्रभूनके उपर हि हे ओरनके विषे नहिं हे; क्यों जो श्रीमदाचार्यनकूं हि विनके भावात्मकपनो ओर विनके भावके मध्यपातिपनो सबनसूं उत्कृष्ट हे तासूं श्रीआचार्यजीको अभिप्राय एसो हें जो श्रीप्रभुनकूं में प्रिय हूं ओर पुत्रकी उपर जेसी प्रीति होय तेसी मेरी उपर विनकी (व्रजभक्तनकी) प्रीति हे तासूं मेरो अंगी-कृत जो एसो होयगो तो ताकी उपरहू एसी प्रीति होयगी. अथवा श्रीकृष्णकूं प्रिय एसो जो में ताकी उपर प्रीति हे एसें कहिवेसूं आपकूं विनके भावात्मकपनो ओर विनके अंतर्गतपनो होयवेसूं आधुनिकजीवनकूं आपकी कृपातें हि प्रियपनो होयगो ऐसें हू सूचित कियो हे. एसें श्रीआचार्यनकी कृपाकरिकें रतिरूप जो भाव भयो हे सो समग्रप्राकृतांशकूं छोडायकें क्रम-करिकें अलौकिक साक्षात् भगवदात्मक ताताविषनकूं इन्द्रियनमें जोडाईदेत हें सो दृष्टांतसहित निरूपण करत हें.

श्लोकः-पायोर्मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत् ।१८।

टीका-पायुइन्द्रियको जो मलांशत्यागकरिवेको धर्म हे सो छोडिकें शेषभाग शरीरकों हि हे एसें समजनो; इतनें मलांशको त्यागकरिकें शरीकूं शुद्धकरिवेवारी वा हि इन्द्रियहे एसें समझिवेमूं पायुइन्द्रियको शरीरशुद्धिमें उपयोग भयो ओर 'वायुर्मलांशत्यागेन शेषभावं तनो नयेत्' एसो हू पाठ कोउटीकामें अभिप्रेत हे ताको अभिप्राय एसो हे जो सर्वदेह तथा इन्द्रियनमें व्याप्त होयकें वायु रहत हे सो भुक्तभई सकलवस्तूनके मलांशकूं वहार निकासिकें शेष जो सारांश होय ताकूं नाडीद्वारा शरीरमें जेसें लेयँजात हें तेसें निरोधवारो भक्तहू सब इन्द्रियनको भाव प्रभुनमें लेयजाय एसें पूर्ण निरोधसिद्ध होयहे. ॥१८॥

सब इंद्रियनको जो जो भाव हे ताके स्वभावसूं हि
सो सो कार्य आपसूं हि होय हे तेसें होयगो
तामें इंद्रियनको भाव प्रभुनमें योजवेकी
आज्ञा क्यों करत हें ! एसी जिज्ञासा
होय तहां कहत हें.

श्लोकः—यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते ।
तदा विनिग्रहस्तस्य कर्त्तव्य इति निश्चयः ॥१९॥

टीका—जाजाइन्द्रियको भगवत्कार्य स्पष्ट दीखवेमें नहिं आवे तताइन्द्रियको निग्रह करनो एसो निश्चय राखनो; इतनें यद्यपि एसो भक्त हे ताकी इन्द्रियन तो ताके भावके स्वभावसूंहि एसी होय हैं तथापि लौकिकमनुष्यनके अनुसरिवेसूं जाइन्द्रियको भगवत्कार्य स्पष्ट दीखवेमें जब नहिं आवे तब लौकिकसबनको त्याग करिकें भगवदीयनके संग गुणगान करिकें ताइन्द्रियको निग्रह करनो; अर्थात् इन्द्रियनकूं लौकिकमेंसूं फिरायकें भगवत्संबंधमें लगायवेके लिये हि उपर कर्त्तव्यको विधि कह्यो हे ॥१९॥

अेसें पूर्णनिरोधस्वरूपकों निरूपणकरिकें गुणगान
निरोधकूं सिद्धकरिवेवारो होयवेसूं यहधिको सर्वोत्कृष्टपनो निरूपणकरत हें.

श्लोकः—नातः परतरो मंत्रो नातः परतरस्तवः ।
नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात परम् ।२०।

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचितं
निरोधलक्षणं समाप्तम् ॥

टीका—यासूंपर मंत्र, स्तोत्र, विद्या ओर तीर्थ कोउ नहिं हे; इतने मंत्रस्तोत्रादि हें सो लोकवेदमें कह्ये फलकूं प्राप्त करिवेवारे हे तासूं लोक तथा वेदमें जो कामनावारे हें इनकूं

मंत्रादिकनकी बडाई भलें हो परंतु जाकूं लोकवेदमें कही एसी कामना नहिं हे केवल प्रभुस्वरूपमें हि आसक्तिहे वाकूं मंत्रादिकनकी बडाई नहिं हे; क्यों जो प्रभूनको गुणगान हे सो लोकवेदसूं विलक्षण फल देयवेवारो हे ओर लोकवेदसूं अतीत (लोकवेद जहां न पहोंचिसके एसों, उत्कृष्ट हे सो यह जतायवेकेलिये फलकी स्तुति करी हे. यद्यपि मंत्रादिद्वारा चित्तशुद्धि होयवेसूं चित्तको निरोध होय हे तथापि वामें क्लेश बहोत ओर फल अत्यंत अल्प हे ओर गुणगानद्वारा चित्तको निग्रह हू सुखसूं होय तथा फल सबनसूं उत्कृष्ट होय हे तासूं गुणगान हि सबनसूं उत्तम हे एसें जाननो. ॥२०॥

इति श्रीमद्गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराजविरचित
निरोधलक्षणको व्रजभाषाटीका समाप्त भई.

॥ श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीसेवाफलकी व्रजभाषामें संक्षिप्त टीकाको प्रारंभः ॥

अपने मार्गमें स्वतंत्र-पुरुषार्थपनेसूं हि सेवा कीनीजाय हे ताके फलके निरूपणको यह ग्रंथ हे. तहां शंका होय जो अपनें सेवा करे हें सो स्वतंत्र-पुरुषार्थपनेसूं हि करेहें ताकों दूसरो फल होय एसी अपेक्षासूं नहिं करे हें तब सेवाके फलको निरूपण केसें ? एसी शंका होय ताको समाधान एसें समजनो जो जीवितपर्यंत एसी सेवा जाजीवने करी होय ताकों देहावसानमें (अंतमें) जो गति होय सो यहां फलपदसूं कह्यो हे; इतने यहां सेवाको फल होयवेको कह्यो हे सो अंतमें गति होयवेको समजनो सो फल आजके समयमें जो सेवारूप-भजन होय हे तामें अनुस्यूत जो सर्वात्मभाव रहेहे ताकरिकें प्राप्तहोयवेवारो जो विशेष भजनानंद हे ताहिरूप हे; तासूं विशेष भजनानंद-रूप जो फल हे ताकूं सेवासूं अतिरिक्त (दूसरे) पनो नहि आवे हे; इतने श्रीगीताजीमें श्रीकृष्णनें अर्जुनप्रति कह्यो हे जो " अंतमें जाजा भावको स्मरण करतो २ शरीरकूं छोडे हे तातभावकूं प्राप्त होय हे. " ओर " अंतमें जो मति होय सो गति होय " एसा न्याय हे; तासूं सेवाको फल सेवाहि

हे एसें समजनो; इतने सेवासूं दूसरो फल होयवेकी शंका-करिकें विरोध बतायो सो विरोध नहिं हे. सो फल केसो होय ? एसें जानिवेकी इच्छा होय तहां कहत हैं.

श्लोकः—यादृशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते।
अलौकिकस्य दाने हि चाद्यः सिद्ध्येन्मनोरथः॥१॥
फलं वा ह्यधिकारो वा न कालोऽत्र नियामकः।

टीका—जेसी सेवा (मेनें) कही हे तेसी सेवा सिद्ध होय तब वाको फल होय सो याग्रंथमें कहत हैं. अलौकिकको दान होय तब आद्य (मुख्यफलरूप) मनोरथ सिद्ध होय. फल सिद्ध होय अथवा अधिकार सिद्ध होय तामें काल नियामक नहिं हे; अर्थात् कालकी अपेक्षा नहिं हे. सेवाफलको विवरण श्रीआचार्यचरणननेंहि कियो हे तामें आज्ञा करीहे जो " सेवा यां फलत्रयम्—अलौकिकसामर्थ्य, सायुज्यं, सेवोपयिकदेहो वा वैकुंठादिषु " इतने अलौकिकसामर्थ्य, सायुज्य अथवा वकुंठादिकलोकनमें सेवामें उपयोगी देह मिले, एसें सेवामें तीन फल हें; अर्थात् श्रीआचार्यचरणनें जारीतिसूं स्नेहसहित श्रीव्रजभक्तनके भावपूर्वक सेवा करिवेकी आज्ञा करीहे ताहिरीतिसूं जीवितपर्यंत सेवा करे तो अंतमें फल होय सो कहतहें. सोहि बात भक्तिवर्द्धिनीमें "सेवायां वा कथायां वा" याश्लोकसूं जताई हे; तामें एसो अभिप्राय हे जो ' जीवित-

पर्यंत सेवामें अथवा कथामें जाकी दृढ आसक्ति होय ताको कोऊस्थलमें नाश नहिं हे ' एसें कहिकें जीवितपर्यंत सेवा करिवेसूं फल होयवेकोहि जतायो हे. यहां तीन फल होयवेको विकल्प कियो हे सो भक्तिमार्गमें पुष्टि, मर्यादा ओर प्रवाह एसे भेदकरिकें जीवनमें तीनप्रकारको (भगवानको) अंगीकार हे; तासूं अधिकारिके भेदकरिकें तीन प्रकारकी सेवा होय हे तातें फलहु तीन प्रकारको क्रमकरिकें कह्यो हेः तामें प्रथम पुष्टिसेवाको फल कहत हैं जो अलौकिकसामर्थ्य होय इतने केवल सर्वात्मभावसूं हि प्राप्त होयवेवारो जो भजनानंद हे ताको अनुभव होय सो अलौकिक फलहे सो अपने कियेभये -कोटि साधनसूं प्राप्त होय एसो नहिं हे ताके अनुभवको योग्यताकरिवेवारो जो अधिकार हे सो अलौकिकसामर्थ्य कह्योजाय हे; भगवानके विप्रयोगकूं सहनकरसके सो अलौकिकसामर्थ्य एसोहु कोउ टीकाकारको अभिप्राय हे. एसें दोउप्रकारके अलौकिकसामर्थ्यमें दृष्टांतरूप व्रजभक्तहि हैं. दूसरो फल सायुज्य कह्यो हे सो मर्यादामें जाको अंगीकार ताकूं होय सो श्रीपुरुषोत्तममें सायुज्य होय अक्षरमें नहिं; क्यों जो अक्षरमें सायुज्य तो केवलमर्यादामें ज्ञानादिकनसूं होयहे ताकी अपेक्षासूं ता पुष्टिमें विशेष फल होनोहि चहियें सो श्रीपुरुषोत्तममें सायुज्य होय सोही विशेषता समझनी; क्यों जो श्रीपुरुषोत्तममें सायुज्यवारेभक्तनकूं तो समयपाय बाहिर

प्रकटकरिकें *भगवान् भजनानंदके अनुभवरूप फल देत हैं; तासूं पुष्टिमर्यादामें प्रथम सायुज्य मध्यमें भजनानंदको अनुभव ओर अंतमे फिर वहांहि सायुज्य होय हे. ओर तीसरो फल वैकुंठादिकनमें सेवोपयिक-देहकी प्राप्तिरूप हे सो प्रवाहमें जाको अंगीकार होय ताकूं होय. यहां जो वैकुंठ कह्यो हे सो श्रीलक्ष्मीजीकी प्रार्थनासूं 'रमावैकुंठ' लोक सिद्ध कियो हे सो समजनो एसें कोउ (टीकाकार) कहतहें ओर कोउ (टीकाकार) अक्षरात्मक व्यापिवैकुंठ कहतहें तथापि मर्यादामें जाको अंगीकार होय ताकूं अलौकिकसामर्थ्य देकें फल देवेकी इच्छा प्रभु करें तब आद्य (प्रथम फलरूप) मनोरथ सिद्ध होय. ओर प्रवाहमें जाको अंगीकार होय ताकूं अलौकिक सामर्थ्य-रूप-फल कबहू न मिले यह अभिप्राय तो दोउअर्थमें समानहि हे. आद्य फल सो केवल स्वरूपकरिकेंहि साध्य हे एसो जतायवेकेलिये मूलमें 'हि' अव्यय लिख्यो हे. तहां शंका होय जो आद्यफल होयवेको अधिकार न होय तो प्रभू हू केसें मनोरथ पूर्ण करें ? एसी शंकाकी निवृत्तिकेलिये कहतहें जो फल अथवा अधिकार सिद्ध करें वामें काल नियामक नहिं हे.

---

* जेसें अंतर्गृहगतानकू सायुज्य दियो हे सो जब विनके संग रमण करिवेकी भगवानकी इच्छा होय तब बाहिर प्रकटकरिकें विनके संग प्रभु रमण करत हें ओर रमणद्वारा भजनानंदको दान करिकें फिर सायुज्य करत हें.

अब वामें तीन प्रतिबंधक हे सो कहत हें.

श्लोकः—उद्वेगः प्रतिबंधो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकम् ॥२॥

टीका—उद्वेग, प्रतिबंध ओर भोग ये तीन सेवाफलमें बाधक हें; इतनें मनमें उद्वेग रहे तो सेवामें चित्त हि रहे नहिं तब भगवत्प्रवणचित्तहोयवेरूप जो सेवा हे सो सिद्ध होय नहिं तब फल कहांसूं मिले ? दूसरो बाधक प्रतिबंध हे सो साधारण ओर भगवत्कृत एसे भेदसूं दोयप्रकारको हे ताको विवेचन आगें आवे हे ओर तीसरो प्रतिबंध भोग हे; ईतनें लौकिकभोगमें आसक्ति होय तबताई एकाग्रतासूं सेवा होयसके नहिं, एस तीन प्रतिबन्ध हें ओर भगवत्कृत प्रतिबन्ध हे ताकी तो निवृत्ति होयसके नहिं तासूं उद्वेग लौकिक भोग तथा साधारण प्रतिबन्ध ये तीन्योको त्याग करिवेकी विवरणमें आज्ञा करी हे जो "त्रयाणां साधनपरित्यागः कर्त्तव्यः" इतने तीन्यो प्रतिबन्धनकी उत्पत्तीनके कारणरूप जो होय ताको त्याग करनो.' तहां शंका होय 'जो सेवा होय तासमय लौकिक अथवा वैदिक कार्य आयपडे तब सेवामें प्रतिबन्ध होय सो साधारण प्रतिबंध हे परन्तु यह कार्य लोकवेदसिद्ध हे तासूं वाको त्याग तो होयसके नहि तब केसें करनो ? एसी शंकाकी निवृत्तिके लिये विवरणमें आज्ञा करी हे जो लौकिक भोग छोडदेनो ओर साधारण

प्रतिबन्ध हे सो बुद्धिकरिके छोडनो; इतनें सेवामें प्रतिबन्धक-पनेसूं लौकिकवैदिककार्यरूप साधारण प्रतिबंध आवे तब सेवाके अनोरसमें करिवेको निश्चय करनो; अर्थात् पुत्रविवाहादिक लौकिक आवे अथवा कछू वैदिक कार्य आवे तब प्रथमसूं हि बुद्धि करिकें सेवामें प्रतिबंध न होय एसी रीतिसूं निर्वाह करनो. और प्रथमसूं निश्चय होय सके एसो कोउ आवश्यक लौकिक, वैदिक कार्य आयपड्यो तब शरीरादिकसूं वह कार्य करनो परन्तु बुद्धि भगवत्सेवामें हि राखनी वाकार्यमें राखनी नहिं और अलौकिक भोग तो तीन्यो फलमें जो मध्यम फल हे तामें मुख्य हे ॥२॥

एसें साधारण प्रतिबन्धको निरूपण करिकें
भगवत्कृत प्रतिबन्धको निरूपण करत हैं.

श्लोकः—अकर्त्तव्यं भगवतः सर्वथा चेद्गतिर्न हि।
यथा वा तत्त्वनिर्द्धारो विवेकः साधनं मतम् ॥३॥

टीका—भगवानकूं सर्वथा कर्त्तव्य न होय तब तो गति नहिं हे तब तो जारीतिसूं तत्त्वको निर्धार होय वारीतिसूं विवेक राखनो येहि साधन मान्यो हे; इतनें जाजीवउपर भगवानकी विशेष कृपा होय ताको द्वेषादिक करिवेसूं जो भगवान् सेवामें प्रतिबन्धकरें सो भगवत्कृत प्रतिबन्ध आननो. तब भगवान् हें सो सर्वसामर्थ्ययुक्त हें और स्वतंत्र हें और विनकी इच्छा वाजीवकी पास सेवा करायवेकी न भई तब सर्वथा फलको

अभाव हि हे एसें जाननों. तब मनमें एसो विचार होय जो भगवानने प्रतिबन्ध कियो तो दूसरेकी सेवा करिवेसूं दूसरो फल मिलेगो एसे विचारकी निवृत्तिके लिये विवरणमें आज्ञा करी हे जो भगवत्कृत प्रतिबंध होय तब अन्यकी सेवा हू व्यर्थ हे; क्यों जो व्याससूत्रमें कह्यो हे जो "सब फल भगवानसूं हि मिले हे." इतनें सर्वफल देयवेवारे प्रभू हि हैं ओर दूसरे फल देत हैं सो प्रभूके आधीन हैं तासूं प्रभूकी फल देयवेकी इच्छा न होय तब दूसरे हू फल देयसके नहिं तासूं सर्वथा वाकूं फलको अभाव हि हे. तहां शंका होय जो सर्वथा फल देयवेकी इच्छा प्रभूकूं न होय सो तो आसुरजीवनपें हे दैवीनपें नहिं हे ओर ये तो भगवान्मार्गमें आयो हे सेवा करे हे तासूं दैवी जीव हे ताकूं सर्वथा फलको अभाव केसें कह्यो जाय ? एसी शंकाकी निवृत्तिके लिये विवरणमें आज्ञा करी हे जो "तदा आसुरोऽयं जीव इति निर्द्धारः" इतनें सृष्टिकी आदिमें हू प्रभूकी इच्छासूं हि आसुरजीव भये तेसें जब प्रभूकी इच्छा जीवकूं आसुर करिवेकी होय तब जीव आसुर होय तासूं भक्तको अतिद्वेष करे तब वाजीव दैव भयो होय तो हू वाकूं आसुर करें इतनें सेवादिकसूं दैव दीखवेमें आवतो होय ओर भक्तको द्वेष करतो होय तब तो यह आसुर जीव हे एसें जाननो; तासूं प्रतिबंधके स्वरूपकूं जानिवेवारे जो वैष्णव हे उनकूं तो दुःसंगादिकनमें सावधान हि रहेनो. ओर जाजीवकूं

सेवामें भगवत्कृत प्रतिबंध होय ताकूं पीछें पश्चाताप होयकें सेवा नहि बनिवेको शोक होय तब पूर्वसूं वह भक्तिमार्गीय हे. तासूं शोक न होयवेके लिये तत्त्वनिर्द्धारके उपायभूत विवेकरूप साधन कहत हैं जो जाप्रकारसूं शोकको अभाव होय वाप्रकारको ज्ञान राखनो ये हि साधन हे. तामें उपनिषदके ज्ञानकी अपेक्षा नहिं हे किन्तु सांख्यकरिके योगकरिके अथवा अन्य-उपायकरिकें तत्त्वनिश्चयकरिकें प्रभूननेंहि यह सब किया हे, सर्व जगत् ब्रह्मात्मक हे, मैं कोन हूं, साधन कहा हे फल कहा हे, दाता कोन हे, भोक्ता कोन हे, इत्यादिक तत्त्वको निर्द्धार करनो तासूं शोक निवृत्त होय. येहि अभिप्राय "तदा ज्ञानमार्गेण स्थातव्यं शोकाभावायेति विवेकः" एसी विवरणमें आज्ञाकरिकें जतायो हे. यहां शोकके अभावके लिये ज्ञानमार्गकरिकें रहेनो एसें कह्यो हे ताको अभिप्राय एसो दीखत हे जो ज्ञानमार्गकी स्थितिसूं शोकको अभाव हि फल होय ज्ञानमार्गीय मुक्ति न होय परंतु वाको एसो अभिप्राय हे जो मूलमें जेसो तत्वको निर्द्धार होय एसो विवेक राखनो एसें कह्यो हें तासूं वाआसुरजीवमें हू आवेशी ओर सहज एसे होय भेद हे तामें जो आवेशी हे ताकूं तो आवेश रहे तबताईं भक्तको द्वेषादिक करे ओर आवेश मिटिजाय तब वाकूं भक्तकी उपर द्वेषादिक हू मिटिजाय एसेकूं तो ज्ञानमार्गकरिकें सत्यलोकमें स्थिति अथवा अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति होय ओर सहजासुर

होयगयो होय तासूं सर्वदा भक्त उपर द्वेष राखिकें द्रोह कर्यो-करे वाकूं तो ज्ञानमार्गकी स्थितिसूं हू वामार्गको फल न होय परंतु शोकाभाव रूप फल होय; इतनें शरणआयवेवारो जीवहू सहजासुर होयजायतो हू वाकूं शोकाभावरूप फल तो होय।३।

अब इनबाधनको निरूपण जाके लिये
कियो हे ताको प्रयोजन कहत हें

श्लोकः—बाधकानां परित्यागो भोगेऽप्येकं तथा परम्।
निष्प्रत्यूहं महान् भोगः प्रथमे विशते सदा ॥४॥

टीका—तीन्यो बाधकको परित्याग करनो; तामें भोग जो बाधक लिख्यो हे सो लौकिक भोग बाधक हे ओर अलौकिक भोग फलरूप हे तासूं भोगमें हू एक फल रूप हे ओर एक बाधकरूप हे एसें जाननो ओर निर्विघ्न महान् भोग हे ताको प्रवेश सदा प्रथमफलमें हे, इतनें भोगमें हू अलौकिकभोगरूप-फलमें प्रविष्ट हे तासूं बाहिप्रकारसूं भोग करनो ओर दोउ प्रतिबन्धमें पर नाम भगवत्कृत जो प्रतिबन्ध हे ताको तो त्याग होयसके एसें नहिं हें तासूं वाकूं छोडिकें दूसरो प्रति-बन्ध हे सो बुद्धिकरिकें छोडनो. तहां शंका होय जो लौकिकभोग तथा अलौकिभोगकी तो तुल्यता हे वामें तार-तम्य दीखत नहिं हे ? ताकी निवृत्तिके लिये अलौकिकभोगमें विलक्षणता कहत हें जो अलौकिकसामर्थ्यरूप प्रथमफलमें भग-

वत्स्वरूपानन्दके अनुभवरूप भोग जब कियोजाय हे तब वामें कालादिककरिकें हू अन्तराय नहि होयसकत हे एसें निर्विघ्न अलौकिक भोग सिद्ध होय हे ओर लौकिकभोगमें तों सदा विघ्न आयो हि करे हे तासूं निर्विघ्नताको सर्वथा अभावहि हे एसें लौकिक और अलौकिकभोगमें बहोत भेद हे. तासूं हि सन्न्यासनिर्णयमें आज्ञा करी हे जो "वामें वाधा करिवेकूं हरि हू समर्थ नहिं हे तो दूसरो तो कोन करसके ?" तेसें यह भोग स्वरूपसूं फलसूं ओर साधनसूं बडो हें क्यों जो विषयानंद तथा ब्रह्मानंदकी अपेक्षाकरिकें भजनानन्द बडो हि हे तासूंहि तीन्यो फलनमें अलौकिकसामर्थ्यरूप जो प्रथम फल हे वामें वाको (भजनान्दको) प्रवेश हे. ॥४॥

एसें अलौकिक भोगमें विलक्षणता निरूपणकरिकें लौकिकभोग तथा साधारणप्रतिबन्धकू एक-करिकें वाके धर्मको निरूपणपुरःसर वैल-क्षण्यप्रतिपादन करत हें

श्लोक-सविघ्नोऽल्पो घातकःस्याद् बलादेतौ सदा मतौ॥
द्वितीये सर्वथा चिन्ता त्याज्या संसारनिश्चयात् ॥५॥

टीका—लौकिकभोग विघ्नसहित हे तथा अल्प हे ओर साधारण प्रतिबन्ध बलात्कारसूं घातक हे तासूं ये दोउ प्रति-बन्ध माने हे सो त्यागकरिवेयोग्य हे. ओर दूसरो

(भगवत्कृत) प्रतिबन्ध होय तब तो संसारको हि निश्चय हे ताहूं सर्वथा चिन्ता छोडनी; इतनें लौकिकभोगमें आधिव्याधि-लक्षण विघ्ने बहोत हें तेसें कर्म तथा कालादिकनहूं हू विघ्न होयवेको संभव हे तथा स्वरूपहूं फलहूं और साधनहूं हू अल्प हे ओर साधारण प्रतिबन्ध सेवासमयमें उपरोधवारो होयवेहूं घातक हे. एसें दोय सदा प्रतिबन्धक माने हे. सो त्यागकरि-वेयोग्य हे. एसें अभिप्रायहूं विवरणमें आज्ञा करी हे जो " एतौ सदा प्रतिबन्धकौ " ये दोय सदा प्रतिबन्धक हे. एसें लौकिकभोग तथा साधारण प्रतिबन्ध त्यागकरिवेयोग्य हे एसें जतायकें भगवत्कृतप्रतिबन्धको त्याग होयसके नहिं ओर ज्ञानमार्गकी स्थितिमें अधिकार न होय एसा मंदमति होय तब ताकूं फलकी चिंता करिकें शोक होय ताकी निवृत्तिके लिये कहत हें जो द्वितीय (भगवत्कृत) प्रतिबन्ध होय तब सर्वप्रकारकरिकें अन्यहूं हू सर्वथा फलके संबंधको अभाव हे ताहूं फलविषयिणी चिन्ता छोडनी; क्यों जो अहन्तामतात्मक जो संसार हे सो सर्वथा अनर्थको मूल हे ताको निश्चय हे इतनें भगवत्कृत प्रतिबन्ध होय तब संसारहि फल हे दूसरो फल नहिं हे एसें निश्चय समजनो ॥५॥

एसें प्रतिबन्धको विचार अत्यन्त करिवेयोग्य हे एसें निरूपण करिकें उद्वेगरूप प्रथमप्रतिबन्धकरिकें फलको अभाव होय तब वामें भगवानकी फलदेयवेकी इच्छाको अभाव कारणरूप हे एसें निरूपण करत हैं.

श्लोकः—नन्वाद्ये दातृता नास्ति तृतीये बाधकं गृहम् ॥
अवश्येयं सदा भाव्या सर्वमन्यन् मनोभ्रमः ॥६॥

टीका—आद्य (उद्वेगरूप भगवत्कृत) प्रतिबन्ध होय तब भगवानकूं फलदेयवेकी इच्छा नहिं हे एसें जाननो और तृतीयप्रतिबन्ध जा लौकिक भोग हे तामें गृहबाधक हे तासूं सेवामें तीनप्रकारके फल तथा तीनप्रकारके प्रतिबन्ध अवश्य विचारिवेयोग्य हे ओर वासूं अन्यसर्व हे सो मनको भ्रम हे. इतनें विवरणमें आज्ञा करी हे जो "आद्यप्रतिबन्धकरिकें फलको अभाव होय तब भगवानकी फलदेयवेकी इच्छा नहिं हे तब सेवाको आधिदैविकपनो सिद्ध नहिं होय हे ओर गृहको परित्याग होय तब हि लौकिकभोगको अभाव होय" एसें आज्ञा करी हे ताको अभिप्राय एसो हे जो भगवान् सर्वरीतसूं समर्थ हें ओर अन्तःकरणके सम्बन्धवारे हें तथापि चित्तके

विक्षेपरूप उद्वेग करे तब मानसी सेवा सिद्ध नहिं होयवेसूं सेवाकों आधिदैविकपनो सिद्ध होय नहिं तब भगवानकी फलदेयवेकी इच्छाको अभाव हे. एसें उद्वेगरूप बाधककूं कहिकें भोगरूपबाधकमें विचार करत हें जो लौकिकभोगमें गृह हि बाधक हे; क्यों जो लौकिक भोग हे सो भगवानसूं बहिर्मुखता सम्पादन करे हे सो जबताँई घरमें स्थिति होय तबताँई निवृत्त करो तोहू निवृत्त होयसके नहिं तासूं हि श्रीमदाचार्यचरणनने निबन्धमें आज्ञा करी हे जो "गृह सर्वात्माकरिकें छोडनो सो छुटसके नहिं तो श्रीकृष्णके लिये घर जोडिदेनो; क्यों जो श्रीकृष्ण हे सो अहन्तामममतारूप संसारकूं छोडायवेवारे" हें एसें तीन फल तथा तीन प्रतिबन्धको निरूपण करिकें अपने सेवनकूं विनको रात्रिदिवस विचार कर्त्तव्य हे एसो जतायवेकेलिये आज्ञा करत हें जो ये फलत्रयी तथा प्रतिबन्धत्रयी सदा अवश्य विचारणीय हे विनको जो निरन्तर विचार होय तो भक्ति मार्गमें दूसरो प्रतिबन्ध नहिं होयगो एसो जतायवेके लिये कहत हें जो ये तीन फल तथा तीन प्रतिबन्ध छोडिकें दूसरो सर्व मनको भ्रम हे; अर्थात् दूसरे फलकी ओर दूसरे

प्रतिबन्धकी कल्पना करनी सो मनकी भ्रान्तिहि हे ॥६॥

अब यहां शङ्का होय जो फल तथा प्रतिबन्धको जो उपर निरूपण कियो सो जो आपके आश्रित हैं तिनकूं घटे नहिं क्यों जो तिनके देह तथा इन्द्रियादिक सब प्रभूनकूं समर्पित हे तासूं सबनकूं फल-रूप प्रभुको सम्बन्ध हे तासूं तिनकूं तो फल भयो हि हे तो तिनके लिये फल तथा प्रतिबन्धको निरूपण करनो सो व्यर्थ हि हे एसी आशङ्का होंय तहां कहत हैं.

श्लोकः—तदीयैरपि तत्कार्यं पुष्टौ नैव विलम्बयेत् ।
गुणक्षोभेऽपि द्रष्टव्यमेतदेवेति मे मतिः ॥ ७ ॥

टीका—तदीयनकूं हू फल तथा प्रतिबन्धादिककी भावना करनी. केवलपुष्टिमें अंगीकार होय तब तो फलमें विलम्ब करे नहिं ओर गुणको क्षोभ होय तब हू साधन येहि देखनो एसी मेरी मति हे; इतनें जिननें ब्रह्मसम्बन्ध कियो हे तिनकों हू फल तथा प्रतिबन्धादिकको भावन करनो क्यों जो केवल पुष्टिमें अंगीकार होय तिनकों तो फलदेयवेमें प्रभु

विलम्ब करे नहिं परन्तु आधुनिकजीवनको तो पुष्टिमर्यादामें हि अंगीकार होयवेसूं फलसिद्धिमें विलम्ब होय हे तब प्रोषितभर्तृकाकीसीनांई फलके प्रतिबन्धकी भावना सर्वदा करनी. तेसें सात्विकादिकगुणकरिकें अंतःकरणमें क्षोभ होय तब हू फलके प्रतिबन्धादिककी हि भावना करनी ताकी निवृत्तिके लिये दूसरे साधन नहिं करने एसी मेरी मति हे. यहां मेरी मति हे एसें कहिवेको अभिप्राय यह हे जो याविषयमें विचारकरतें करतें मेरी बुद्धि यहां हि निश्चल होयकें रही हे दूसरो साधन मेरी बुद्धिमें नहिं आवे हे. ॥७॥

यहां शंका होय जो एसें करिवेमें दुषणको आभास होय तब मनमें एसो विचार आवे जो अपनें समर्पणकरिकें तदीय भये तब फल होयवेको संभव हे तासूं प्रतिबन्धादिकको निरूपण कियो सो व्यर्थ हे एसी शंका होय तहां कहत हे.

श्लोकः—कुष्टिरत्र वा काचिदुत्पद्येत स वै भ्रमः ।

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचितं सेवा-फलनिरूपणं समाप्तम्.

टीका–यहां काहुजातको कुसृष्टि उत्पन्न होय हे निश्चय भ्रमरूप होय हे; इतनें जो तदीय हैं विनकूं तो नियम-करिकें फलको संभव हे तासूं सत्वादिकगुणनकरिकें मनमें अन्यथाभाव होय सो भ्रम हे; क्यों जो प्रभु स्वतंत्रइच्छावारे हैं एसो निरूपण कियो हैं तासूं प्रभु फल न देयँगे एसी अनुपपत्ति मनमें आवे ताको परिहार तो प्रथम हि कियो हे ताकी भावना राखनी. ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचितसेवाफलकी
गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराजकृत
व्रजभाषाटीका समाप्त भई.